लक्ष्मीकांत वर्मा का सर्जनात्मक गद्य साहित्य

LAKSHMIKANTH VARMA KA SARJANATMAK GADYA SAHITYA

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the degree of

Doctor of Philosophy

By

V. P. USHA

Head of the Department
Dr. P. V. VIJAYAN

Supervising Teacher
Dr. P. A. SHEMIM ALIYAR

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI 682 022

1993

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Miss V.P. USHA under my supervision for **Ph.D (Doctor of Philosophy)** degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of -
Science and Technology,
KOCHI - 682 022

Dated 17.03.1993

(Dr. P.A. SHEMIM ALIYAR)
SUPERVISING TEACHER

ACKNOWLEDGEMENTS

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi - 682 022 during the tenure of Scholarship awarded to me by the Cochin University of Science and Technology. I sincerely express my gratitude to the University for this help and encouragement.

Department of Hindi,
Cochin University of -
Science & Technology,
KOCHI - 682 022
17 March, 1993

(V.P. U S H A)

विषय - सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
अपनी बात	
पहला अध्याय	
लक्ष्मीकांत वर्मा जीवन और रचना संसार - एक रूपरेखा	
पारिवारिक पृष्ठभूमि - राजनीति से लगाव तथा अलगाव - संपादक के रूप में - रचना संसार - नई चेतना के कवि - आलोचना की नई तलाश - उपन्यासकार - कहानीकार - नाटककार - एकांकीकार	1-26
दूसरा अध्याय	
लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक	
अभिशाप्त देवदासी प्रथा का खुला दस्तावेज - "तिन्दुवुलम" - ज़माने की बेचैनी की अनुशासित अभिव्यक्ति -"रोशनी एक नदी है" - पौराणिक कलेवर में समसामयिक समस्या -"ठहरी हुई ज़िन्दगी" - कथ्य के भिन्न धरातल - पात्र योजना - भाषा - प्रतीक - शैली - मंचीयता - मुखौटे का प्रयोग	27-94

तीसरा अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा के एकांकी

अमानवीय घेरेबन्दी में पिसनेवाले व्यक्ति का विद्रोह - "आदमी का ज़हर" - पारिवारिक संबंधों के ठण्डेपन की तलाश - "उस रात के बाद" - विरूपता में खो जानेवाली आत्मा - "आकाशगंगा की छाया में" - अर्थाभावग्रस्त आदमी के बौने व्यक्तित्व की पहचान - "रबर का बबुआ" - चिरस्थायी प्रेम की दर्दीली दास्तान - "परतों की आवाज़" - महानगरीय परिवेश में मूल्यहीनता का तीखा एहसास - "अपना अपना जूता" - पनाह खोजती नारी की बेपनाह ज़िन्दगी - "तीसरा आदमी - कथ्य की विभिन्न भंगिमायें - शिल्प 95 - 164

चौथा अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास

जमे हुए जीवन की पीडा - "एक कटी हुई ज़िन्दगी: एक कटा हुआ कागज़" - बेफिक्र जीवन की खोयी हुई दिशायें - "कोयला और आकृतियाँ" - मानव की लघु हस्ती का परिचय - "खाली कुर्सी की आत्मा" - कर्तव्य और स्वतंत्रता के बीच छटपटाती नारी मानसिकता - "टेराकोटा" - क्षण के मोह में डूबी नारी की विवशता - "तीसरा प्रसंग" - अनाथ मानसिकता की मर्म गाथा - "सफ़ेद चेहरे" - कथ्य के विभिन्न आयाम - शिल्पगत विशेषताएँ - शैली - चरित्र - प्रतीक - भाषा 165 - 245

पाँचवाँ अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा की कहानियाँ

नई कहानी - एक नई चेतना - शिल्प नई दिशायें - नये पुराने मूल्यों की टकराहट - "परिवर्तन" - मौजूदा व्यवस्था की साजिश की शिकार बनी नारी - "धर्मशाले की एक रात" - रूमानी भावुक परिकल्पना में भटकती नई पीढ़ी - "दो ज़िन्दगी दो राहें" - आर्थिक तंगी की शिकार बनी नारी - "बीते दिन बिसरी बातें" - प्रेम की यादगार - "काला फूल" नारी की लिजलिजी भावुकता - "नीली झील का सपना" - अवचेतन मन में सुप्त पड़ा अभुक्त प्रेम - "एक दर्द भरी आवाज़" - अधूरे अरमानों की दास्तान- "अधूरा वाक्य" - रुग्ण मानसिकता की प्रतिक्रिया - "कामण सेन्स स्टोर" - मौजूदा व्यवस्था का खोखलापन - "आदमी और ऑक्टोपस" - कथ्य के विभिन्न आयाम - शिल्प 246 - 288

छठा अध्याय

उपसंहार 289 - 295

संदर्भ ग्रन्थ सूची 296 - 306

अपनी बात

लक्ष्मीकांत वर्मा हिन्दी साहित्य में अपनी सृजनात्मकता केलिए जाने माने साहित्यकार हैं। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक, एकाँकी - में की गयी सेवाओं से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। लेकिन दौर्भाग्य की बात है कि इतनी व्यापक सर्जनात्मकता के होते हुए भी उनकी रचनाओं विशेषकर गद्य रचनाओं का अध्ययन नहीं हो चुका है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उनकी कविताओं और आलोचनाओं पर शोध करने का थोडा सा प्रयास किया गया है। लेकिन उनके गद्य साहित्य शोध की दृष्टि से अछूते रहते हैं। इसलिए मैं ने अपने शोध प्रबंध के विषय के रूप में "लक्ष्मीकांत वर्मा का सर्जनात्मक गद्य साहित्य" चुन लिया है। मैं ने इस शोध प्रबंध में उनके नाटक, एकाँकी, उपन्यास, कहानी आदि का विशद अध्ययन प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

लक्ष्मीकांत वर्मा की रचनायें संबंधी आलोचनात्मक ग्रन्थ एवं लेख बहुत कम ही उपलब्ध हुए। और उनमें उनकी सारी रचनाओं का विश्लेषण नहीं हुआ है। बहुत कम रचनाओं की चर्चा ही मिलती है। मैंने अपने शोध प्रबंध में इस अभाव की पूर्ति करने की भरसक कोशिश की है। उनकी प्रत्येक सर्जनात्मक गद्य रचना का विशद विश्लेषण करते हुए मैंने मौलिक निष्कर्ष निकाल

दिया है और इस अछूते विषय पर अपनी ओर से नया प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

यह शोध प्रबंध छः अध्यायों में विभक्त किया गया है । पहले अध्याय में लक्ष्मीकांत वर्मा के जीवन और उनके रचना संसार की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है । उनके बचपन, पारिवारिक परिवेश, शिक्षा, राजनीति से उनके लगाव और अलगाव, उनकी व्यापक मित्रमंडली, विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं के साथ उनका संबन्ध, संपादक के रूप में उनका योगदान आदि मैं ने रेखांकित किया है ।

दूसरा अध्याय उनके तीन नाटकों "तिन्दुवुलम", "रोशनी एक नदी है", "ठहरी हुई जिन्दगी" का अध्ययन है ।

तीसरा अध्याय में उनके "अपना अपना जूता" और "आदमी का ज़हर" नामक एकांकी संग्रहों के सात एकांकियों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है

चौथे अध्याय में उनके उपन्यासों - "एक कटी हुई जिन्दगी एक कटा हुआ कागज़", "कोयला और आकृतियाँ", "खाली कुर्सी की आत्मा", तीसरा प्रसंग", "सफेद चेहरे" की चर्चा की गयी है ।

पाँचवाँ अध्याय "मेरी कहानियाँ" और "नीली झील का सपना" नामक उनके दो कहानी संग्रहों की दस कहानियों पर आधारित है ।

छठे अध्याय के "उपसंहार" में उनके सर्जनात्मक गद्य साहित्य पर एक सरसरी दृष्टि डाली गयी है ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय विज्ञान व प्रौद्योगिकी के हिन्दी विभाग के रीडर आदरणीय डा. पी. ए. शमीम अलियार के विद्वतापूर्ण निर्देशन एवं निरन्तर प्रोत्साहन से ही यह शोध कार्य संपन्न हुआ है । उनकी सहायता के बिना इस शोध कार्य की पूर्ति असंभव है । उनसे मेरा हार्दिक आभार है जो शब्दों के परे हैं । प्रारंभ से अंत तक उन्होंने जो निर्देश और उपदेश दिये हैं उन केलिए मैं हमेशा आभारी हूँ, उन्होंने जो प्यार और ममता दिखाये हैं उनकेलिए भी मैं चिर कृतज्ञ रहूँगी ।

विभाग के अध्यक्ष व प्रोफेसर डॉ. पी. वी. विजयन के प्रति मैं सदैव आभारी हूँ जिनके स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन से ही इस शोध कार्य की पूर्ति हुई है । विभाग के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर और डॉ. एन. रामन नायर तथा प्रोफेसर डॉ. रामचन्द्र देव, अन्य सारे अध्यापकों, महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम के अध्यापकों विशेषकर अवकाश प्राप्त अध्यापिका डॉ. टी. के. सरला देवी और मेरे समस्त गुरुजनों के सामने मैं नतमस्तक हूँ जिनके मार्ग निर्देशन, ममतामय प्रेरणा एवं प्रोत्साहन इस शोध प्रबंध की पूर्ति में काम आये हैं ।

मैं विभागीय पुस्तकालय के कार्यकर्ता श्रीमती. कुंजिक्कावु कुट्टी तंपुरान और श्री. आन्टणी के प्रति भी शुक्रिया अदा करती हूँ जिनकी बडी सहायता मुझे प्राप्त हुई है ।

श्री. लक्ष्मीकांत वर्मा तथा श्री॰ नित्यानन्द तिवारी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे उनसे साक्षात्कार करने का तथा बहुत सामग्री इक्कट्टा करने का अवसर दिया है ।

मैं अपने कार्यालय के सहयोगी श्री. टी. अनिलकुमार, हिन्दी आशुलिपिक, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एरणाकुलम, के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, जिन्होंने इस शोध प्रबंध का टंकण कार्य संपन्न किया है । मेरे कार्यालय के साथियों से भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध प्रबंध की पूर्ति केलिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिये हैं ।

मित्रों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य में अवश्य प्रेरणा एवं सहायता दी है ।

इस अवसर पर, मैं इसकी पूर्ति में अपने माता - पिताओं, भाई - बहनों और बंधुजनों के स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं योगदान की भी याद करती हूँ ।

मैं अपने स्वर्गीय मामाजी पी. दामोदर की पुण्य स्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ, जिन्होंने अपने अंतिम समय तक शोध कार्य की पूर्ति केलिए मुझे प्रेरणा दी थी ।

Usha V.P

वी॰ पी. उषा

पहला अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा : जीवन और रचना संसार - एक रूपरेखा

लक्ष्मीकांत वर्मा जीवन और रचना संसार - एक रूपरेखा

पारिवारिक पृष्ठभूमि

उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में 1922 फरवरी 15 में विद्वान चन्द्रिका प्रसाद और श्रीमती जनक किशोरी के बेटे के रूप में लक्ष्मीकांत वर्मा का जन्म हुआ। विद्वान और धार्मिक माता पिता के संरक्षण में उनका बाल्य सुखी और संपन्न था। वर्माजी अपने अंदर के मूल्य, धर्म और दर्शन के प्रति आग्रह को माता पिता की देन मानते हैं। उर्दू - फारसी के अध्ययन में लक्ष्मीकांत वर्मा की शिक्षा का प्रारंभ हुआ। बाद में उन्होंने हिन्दी अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने लिखना हिन्दी में शुरू किया। उनका परिवार पत्नी, तीन लडके, तीन लडकियाँ और उनके नातियों से संपन्न है। उनका बेटा पीयूष वर्मा कहानीकार के रूप में पिताजी के चरणों का अनुगामी है। दूसरा बेटा आलोक वर्मा दार्शनिक और तान्त्रिक विद्वान है। चित्रकला के क्षेत्र में उनका अनुगामी है तीसरा बेटा राजीव वर्मा। बेटियाँ पढाई के बाद अपना अपना घर संभालती हैं।

राजनीति से लगाव तथा अलगाव

लक्ष्मीकांत वर्मा सक्रिय राजनीति में थे। वे कांग्रेस पार्टी के प्रवर्तक थे। फिर जब जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी पार्टी का गठन किया तब वर्माजी ने कांग्रेस पार्टी से अपना नाता छोड दिया। राम मनोहर लोहिया की मृत्यु

तक वर्माजी राजनीति के क्षेत्र से जुडे रहे । फिर राजनीति का क्षेत्र छोडकर तन मन से साहित्यिक सृजन में लीन रहे । वे अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और विचारधारा को बनाये रखना चाहते थे । सत्ता या शासन की इच्छा के मुताबिक रचना करना उन्हें पसन्द नहीं था । अपनी सृजनात्मक क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा लेखकीय सक्रियता को उजागर करने केलिए उन्होंने सक्रिय राजनीति छोड दी । उनके ही शब्दों में, "पहले सक्रिय राजनीति में था, अब वैचारिक स्तर पर भारतीय संस्कृति और भारतीय चेतना केलिए जो कुछ करना है वह कर रहा हूँ । मैं ने सत्ता की राजनीति छोडी है क्योंकि सत्ता को उद्देश्य बना देने से कई प्रकार की विकृतियाँ आती हैं जो विचारों को शुद्ध नहीं रहने देती है ।"[1] साहित्य और राजनीति के संबंध में उनका स्पष्ट संकेत है - "साहित्य के क्षेत्र में आजकल कुछ मार्क्सवादी साहित्यकार किसी विचारधारा को बिना साहित्यिक और सांस्कृतिक आधार के व्यक्त करते हैं, यह गलत है । ऐसी राजनीति से होनेवाली यह प्रतिबद्धता खतरनाक है, इससे न राजनीति का भला होगा, न साहित्य का ।"[2] श्री. नित्यानन्द तिवारी के मत में "लक्ष्मीकांत वर्मा ने रचनाओं में सोश्योलजी का कण्सेप्ट लिया है । उन्होंने मनुष्य के सवाल को समाज के सवाल से प्रबल माना जो सामाजिक हो या अस्तित्वपरक हो । वे समग्र मनुष्य की बात कहना चाहते हैं ।"[3]

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2.

3. श्री. नित्यानन्द तिवारी के साथ हुए साक्षात्कार से

संपादक के रूप में

लक्ष्मीकांत वर्मा संपादन कार्य भी कर रहे हैं । "वे हिन्दी आन्दोलन", "हिन्दी भाषा और नागरी लिपि" नामक ग्रन्थों का संपादक है । वे नये पत्ते, निकष, क ख ग, राष्ट्रभाषा संदेश, जन सप्ताहिक आदि पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी कर रहे थे । वे समाजवादी मुखपत्र "जन" के संपादन कार्य में भी लीन रहे थे । वे "परिमल" पत्रिका के पुराने सदस्य और संयोजक भी थे । वे हमेशा "परिमल" से आभार व्यक्त करते हैं कि "ऋणी हूँ मैं "परिमल" प्रयाग का जिस संस्था ने मुझे पिछले 16-17 साल से बहस - मुबाहिसे में, बातचीत में, गोष्ठियों में, मेरी ज़िदों को, मेरे ऊबड - खाबड विचारों को, भावों को सुना है, अपनी प्रतिक्रिया दी है ।"[1] वे अपने जीवन में तीन संस्थाओं से जुडे हैं । उनके अनुसार "इन संस्थाओं ने उन्हें वेतन न देकर मान दे दिया ।"[2] वे 1947-48 में गांधीजी के सेवाग्राम में थे । फिर "परिमल" में थे । अब वे महर्षि महेश योगी की संस्था "एनलैटेण्ड न्यूस सर्विस" मे काम कर रहे हैं ।

वे अपनी ज़िन्दगी में मित्र मंडली को बहुत स्थान देते हैं । उनकी मित्र मंडली लंबी चौडी है जिसमें इतिहासकार, राजनीतिक-सांस्कृतिक लोग सभी आते हैं । लेकिन प्रयाग की "परिमल" नामक साहित्यिक संस्था का विशेष महत्व है जिसमें विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 8

2. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि थे । "इस साहित्यिक मित्र मंडली ने हिन्दी साहित्य के पिछले पचास वर्ष को एक नया स्वर और नई दिशा दी है जो सामनेवाली चिन्तन और अन्य राजनीतिक चिन्तनों से अलग है ।" [1]

रचना संसार

साहित्य को विभिन्न विधाओं के रूप में बाँटने के संबंध में लक्ष्मीकांत वर्माजी की अपनी मान्यतायें हैं । वे प्रत्येक विधा को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते हैं । इस पर प्रकाश डालते हुए वे बताते हैं, "जैसे अनुभूति होती है उसी के अनुरूप विधा भी आ जाती है । जैसे हर मनुष्य एक साथ ही पिता भी होता है, पुत्र भी होता है, नागरिक भी होता है ठीक उसी प्रकार से हर सृजनशील व्यक्ति के अंदर कवि भी होता है, नाटककार भी होता है, आलोचक, दार्शनिक भी होता है ।" [2] वर्माजी रचना केलिए सार्थक संवेदना और सार्थक अनुभूति को अनिवार्य मानते हैं । उनके शब्दों में, "यदि अनुभूति सार्थक नहीं है तो किसी भी विधा का कोई मतलब नहीं । नाटक, कविता, उपन्यास, कहानी आदि विधायें अनुभूतियों की जटिलता और विविधता के कारण जन्म लेती हैं । इसलिए सार्थक विधा वही है जो सार्थक अनुभूति को व्यक्त करने में सहायक हो ।" [3]

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से
2.
3.

लक्ष्मीकांत वर्मा ने साहित्य की विभिन्न विधाओं की श्रीवृद्धि की है। उनके मन में किसी विशेष विधा के प्रति किसी विशेष लगाव नहीं। इस पर वे टिप्पणी करते हैं -- "मैं सारी विधाओं के प्रति समदृष्टि रखता हूँ जैसे कविता, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि सभी मेरे लिए सुगम है। जब जैसी अनुभूति होती है तब वैसी विधा अपने आप आ जाती है।" [1] अपनी रचनाओं की श्रेष्ठता के प्रति वे कोई भेद भाव नहीं रखते। वे खुद स्वीकार करते हैं - "किसी भी लेखक के लिए अपनी किसी एक कृति को श्रेष्ठ बताना कठिन है। मुझे तो अपनी सभी रचनायें प्रिय हैं क्योंकि मैंने जो भी लिखा है वह काफी मंथन के बाद लिखा है। यही कारण है कि कुछ लोग मुझे नाटककार, कुछ कवि, कुछ आलोचक मानते हैं। ये अलग अलग विचार मुझे प्रभावित नहीं करते। मैं प्रभावित होता हूँ उस संतोष से, उस स्वान्त सुखाय से जो एक अच्छी रचना के बाद कलाकार अर्जित करता है।" [2]

नई चेतना के कवि

लक्ष्मीकांत वर्मा ने एक कवि के रूप में साहित्य जगत् में कदम रखे। उनके काव्य संग्रह हैं - कंचन मृग, तीसरा पक्ष, धुएँ की लकीरें, अतुकांत, आधुनिक कवि और चित्रकूट चरित।

अपने आप को क्षण के यथार्थ का कवि मानते हुए वर्माजी ने यों स्पष्ट कर दिया "क्षण की नित्यता और अनित्यता दोनों एक साथ चलते हैं, इसलिए

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2.

मैंने इतना अधिक लिखा है । खुद यह कहना कि मेरी अच्छी कविता यह है और यह नहीं है स्वयम अपनी समगति को नकारना होगा । प्रत्येक कविता से ही दूसरी कविता जन्म लेती है इसलिए दोनों ही सार्थक हैं, उसमें न कोई अच्छी है न बुरी ।"[1] उनकी स्पष्ट धारणा है कि किसी भी कवि को अपनी कविताओं की व्याख्या खुद न करनी चाहिए । यों व्याख्या करने से कविता का अहित होता है । "यदि सच्चा कवि है और उसके कथ्य में दम है तो कविता में स्वयं वह भाव होगा और वह अपने को व्याख्यायित करके पाठक के समक्ष स्थापित कर लेगी । कविता की व्याख्या जब स्वयं कवि करता है तो उसकी मार्मिकता हटाता है क्योंकि व्याख्या करने में अति का दोष आना स्वाभाविक है ।"[2]

लक्ष्मीकांत वर्मा सप्तक के बाहर के कवि हैं । इस सप्तकेतर शिल्पि की कविताओं में युग की जटिलताओं का चित्रण मिलता है । उन्होंने आधुनिक युगबोध और समसामयिक यथार्थ को काव्य का विषय बनाया । अपने चारों ओर के परिवेश की दलित, पीडित जनता के प्रति उनके मन में सहानुभूति की भावना है, उन बदनसीब लोगों से जुडते रहकर उनकी भलाई केलिए कुछ न कुछ करने की अदम्य लालसा है । नंगी, भूखी जनता की रीढ तोडने की जो साजिशें मौजूदा व्यवस्था में चल रही हैं उससे वर्माजी को सख्त नफरत है ।

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2. तीसरा पक्ष {अपनी बात} - लक्ष्मीकांत वर्मा

वे बताते हैं – "मेरी ये कवितायें उस असंख्य पीडित मानव समाज की ओर से लिखी गयी है जो आज कष्ट वहन कर रही है, पीडित है और जिसके पास सिवा कुछ जख्मों के भूख, उपवास और दैन्य के कुछ भी शेष नहीं रह गया है। संघर्षरत इन मानव वर्ग के साथ कवि होने के नाते कहीं न कहीं मैं भी जुडता हूँ। मेरा यह जुडना स्वाभाविक है क्योंकि मैं जहाँ कवि होने के नाते सौन्दर्य और संतुलन का पक्षधर हूँ वहीं मनुष्य होने के नाते व्यापक मानवता के पक्ष में भी अपने को सहज रूप में स्थापित कर लेता हूँ।"[1] रामस्वरूप चतुर्वेदी की उक्ति बिलकुल सही लगती है, "लक्ष्मीकांत वर्मा में भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के प्रति गहरी सहानुभूति है जो एक प्रकार से उनकी संपूर्ण कविता का उत्स कही जा सकती है।

यह सहानुभूति भी बहुत बार व्यंग्य के सहारे उभरती है। मध्यवर्गीय जीवन के प्रति यह सहानुभूति समकालीन भारतीयता की एब बडी पहियान कही जा सकती है, लक्ष्मीकांत में जिसके प्रतीक खाली चूल्हा, गीलो लकडी और उबली खिचडी से लेकर ठण्डा स्टोव तक हैं।"[2] अभावग्रस्त ज़िन्दगी का कितना दर्दनाक ब्यौरा उसकी कविता में मिल रहा है –

"माँ चा की प्याली
पा पा की जेब खाली
स्लेट ट की पर्त काली

1. तीसरा पक्ष (अपनी बात) – लक्ष्मीकांत वर्मा

2. नई कवितायें एक साक्ष्य – रामस्वरूप चतुर्वेदी – पृ. 55

ले - - - ट

फी - - -

नाम स्कूल से कट गया

माँ - - -

फी - - -

स - - -

श - - - श - - - श

स्टोव आज ठण्डा है,

पापा की कविता जिन्दा है,

चा - - का टिन - - खाली"

आगे वे पत्नी से स्वयं पूछ रहे हैं -

"जो तुम्हारा पति सत्यवान

लक्ष्मीकांत

राम

राम - - - राम

महज कलम की कुदाली से

चाय की खेती कैसे करूँ ?

विधि राम ।"

उन्हें लगता है -

हर पहली तारीख - - एक चीख

हर आखिरी तारीख - - एक भीख

हर मास का अलविदा - - विदा
हर सुबह एक लीक
    घनी शाम का प्रतीक ।" [1]

उपर्युक्त पंक्तियों के प्रतीकों के बीच उभरनेवाला व्यंग्य हँसी को नहीं, करुणा को जाग्रत करता है । "मृतात्मा की वसीयत" नामक कविता में उन्होंने गाय दोहन केलिए भूसा भरे मृत बछडे के प्रतीक के माध्यम से मानव की स्वार्थ लिप्सा पर मार्मिक व्यंग्य किया है । "यदि मैं मेयर होता" कविता में भी आज के जीवन की आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति का उपहास किया गया है -

सोचता हूँ यदि मैं मेयर होता
तो सडकों के दोनों ओर
खस की टट्टियाँ होतीं
बिजली के खंभों की तरह
पंखों के भी खंभे होते
तब यह जलता शहर
छत्तर मंजिल होता
    x x x
लेकिन संप्रति मुझे
इन गर्मियों केलिए
एक टेबिल फेन चाहिए

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 13 - 15

पूरे शहर केलिए नहीं
अपने तीन कमरों वाले घर केलिए
हो कि तपकर नगर हो गया है
और मैं उसे घर बनाना चाहता हूँ । [1]

"तीसरा पक्ष"की कविताओं का संदर्भ समकालीन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का है । भूमिका में उन्होंने लिखा है, "आज की विषमता, विसंगति, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं अंतर्राष्ट्रीय दबावों के बीच लिखी गयी हैं । ये कवितायें उस स्वर को व्यंजित करती हैं जिसमें व्यापक असंतोष, हिंसा और शोषण के विरुद्ध कवि धर्म का निर्वाह करते हुए उस दुनिया की बात कही गयी है, जो कहीं लंगडी-लूली, टूटी-फूटी, जर्जरित-सी केवल अन्यायों के बीच जीने केलिए मजबूर हैं ।" [2] इन कविताओं में गोरी जातियों के द्वारा एशिया और आफ्रीका के जातियों के शोषण और अत्याचार, इसकी प्रतिक्रिया में शोषित द्वारा किया गया प्रतिरोध, भारत-चीन-पाकिस्तान युद्ध में शहीद बने भारतीय सैनिक, स्वतंत्र भारत में शासक और शासित के बीच का गहरा फासला आदि पर कवि की प्रतिक्रिया दीख पडती है । परमानन्द श्रीवास्तव की राय में "तीसरा पक्ष" की कविताओं के पीछे एक प्रतिबद्ध राजनीति है । ये कवितायें वक्तव्य धर्मी हैं । मूल्यों की टकराहट का बोध इनमें है ।" [3]

1. नई कविता - सं. जगदीशगुप्त और विजयदेवनारायण साही
2. तीसरा पक्ष (अपनी बात)- लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ.
3. हिन्दी साहित्याब्दकोश - 1975 - पृ. 135

लक्ष्मीकांत वर्मा को मनुष्य में गहरी आस्था है । मनुष्य की विरूपता और नंगापन उन्हें स्वीकार्य नहीं । "एक लघु अस्तित्व की सार्थक माँग" में उन्होंने व्यक्त किया है -

"आदमी नहीं एक अधकुतरा फल,
फेंका हुआ, बिका हुआ अर्ध सत्य ।
आदमी नहीं एक तड़पता,
छिपकली के मुँह से छूटा,
अर्धजीवित सन्तप्त अर्धभोग ।
आदमी एक छटपटाता बेचैन,
अर्ध संशय का अभियोग" [1]

आशावादी दृष्टिकोण रखनेवाले कवि को लघुमानव में कितनी गहरी आस्था है -

"किसी महान का उच्छिष्ट मैं नहीं
किसी संभाव्य की अनुक्रमणिका नहीं
किसी समाप्ति का समापन चिह्न नहीं
मैं हूँ अपने ही लघु अस्तित्व से जन्मा
व्यापक परिवेश का साक्षी और साक्ष्य" [2]

1. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 5
2. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 11

विजेन्द्र नारायण सिंह की राय में "एक लघु अस्तित्व की सार्थक माँग" शीर्षक कविता "अँधेरे में", "असाध्य वीणा" और "मुक्ति प्रसंग" के साथ ही नई कविता की एक महत् उपलब्धि है ।"[1]

कवि ने महानगर की यान्त्रिक ज़िन्दगी और विषैले वातावरण को भी अपनी कविताओं में उभारा है । "महानगर एक अनुभूति" कविता की अंतिम पंक्तियों में व्यंग्य और विद्रोह के तीव्र स्वर व्यक्त हुए हैं -

"अरे यह महानगर
जहाँ है सभी सभ्य
असभ्य केवल मैं हूँ
केवल मैं ।
क्योंकि मैं पिता हूँ,
बंधु हूँ शकित हूँ सहचर हूँ
असभ्य केवल मैं हूँ ।"[2]

उन्होंने अपनी कविताओं में पुराण चरित्रों को भी नियोजित किया है । चित्रकूट चरित में उन्होंने पौराणिक, मिथकीय परिवेश के माध्यम से मनुष्य की नियति और पीडा तथा विश्व बंधुत्व की भावना को व्यक्त करने की कोशिश की है । उपेक्षितों के पक्ष को रखना, जनजातियों के प्रति आदर व्यक्त करना, भरत के आन्तरिक द्वन्द्व को समझाना, छोडे हुए

1. हिन्दी साहित्याब्दकोश - 1968 - पृ. 240
2. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 101 - 102

संदर्भों और पात्रों को वाल्मीकि द्वारा स्वीकृत कराना, भरत और राम के विश्वरूप से तादात्म्य के माध्यम से भक्त और भगवान में कोई अंतर नहीं है आदि लक्ष्यों को व्यक्त करने में वर्माजी यहाँ सफल निकले हैं। जैसे -

"राम पूर्ण काम हैं
भरत पूर्ण प्रेम के स्रष्टा
पूर्ण काम निष्काम काम है।
पूर्ण प्रेम निष्काम प्रेम है।
दोनों का निष्काम भाव ही
बन सकता है सत्य सभी का।" [1]

कवि अपनी इस रचना द्वारा कर्मण्यता का संदेश भी देते हैं

"कर्म यज्ञ है,
बुरा कर्म वही करेगा,
जिसमें अच्छे कर्मों के करने की
क्षमता होगी।" [2]

पौराणिक पात्रों के चयन के पीछे उनका एक विशेष मकसद है। मनुष्य और देवता के बीच वे संगति स्थापित करना चाहते हैं। इसका स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं, "पुराणों में जो देवता हैं वह सारे देवता हमारे भीतर भी वास करते हैं। पाश्चात्य चिन्तन में देवता और मनुष्य अलग अलग जाति के हैं। भारतीय चिन्तन में यह अलगाव नहीं है। देवता जो है हमारे

1. चित्रकूट चरित - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 104
2. - पृ. 128

बाहर नहीं, अन्दर है । पौराणिक प्रयोगों का उद्देश्य मनुष्य के भीतर के देवता को विकसित करने केलिए किया गया है ताकि मनुष्यत्व सशक्त हो ।"[1]

लक्ष्मीकांत वर्मा ने शैली और शिल्प के क्षेत्र में भी अनेक नवीन प्रयोग किये हैं । कविता के शास्त्रीय विवेचन पर उन्हें विशेष लगाव नहीं है । उनकी कवितायें आदी से अंत तक अतुकांत रही हैं । परंपरा का खंडन करते हुए नये सिरे से सोचनेवाले कवि होने के नाते उनकी कविताओं में एक प्रकार की अव्यवस्था, बिखराव और विसंगति के दर्शन होते हैं । नामवर सिंह का कथन बिलकुल सही लगता है – "लक्ष्मीकांत वर्मा को इस बात केलिए श्रेय देना होगा कि उन्होंने कविता के अन्तर्गत विसंगति, विडम्बना, विद्रूप आदि के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने केलिए "ताज़ी कविता" के नाम से एक आन्दोलन चलाने का भी संकल्प किया । अगंभीरता की स्थापना केलिए गंभीर मुद्रा अपनाकर लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपनी विसंगति प्रकट कर दी, किन्तु इसके बावजूद इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने केलिए उन्होंने "शरारत पूर्ण सह-संयोजन" के रूप में जो सूत्र प्रस्तुत किया वह निस्सन्देह पर्याप्त अर्थगर्भ है ।"[2]

"हस्ताक्षर" और "1953" अलग अलग बिन्दुओं से नई कविता की शुरूआत को संकेत करती है ।" हस्ताक्षर " का कवि अपने अस्तित्व की खोज में जुड़ा है –

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2. कविता के नये प्रतिमान – नामवर सिंह – पृ. 154

"मैं आज भी ज़िन्दा हूँ
उस हस्ताक्षर की भाँति
जो मज़ाक मज़ाक में यों किसी वट वृक्ष के नीचे
पिकनिक, तफरीह, में लिख दिया गया था ।" [1]

रामस्वरूप चतुर्वेदी के मत में ये नई कविता और लक्ष्मीकांत के आरंभिक बिंब विधान का प्रतिनिधि रूप कहा जा सकता है । ऊल जलूल शिल्प की एक झलक "1953" की निम्नलिखित पंक्तियों में मिलती है -

"सिर पर जूता
पैर में टोपी
बीच कमर में उलटी ऐनक
हाथों में उलटे पाजामे
कोट की बाँहें उलटी सीधी
माथे पर टाई की पट्टी
बीच गले में गेलिस पेटी ।[2]

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने मान लिया है, "जिस ऊल जलूल और अनर्थक को लक्ष्मीकात ने "1953" मे देखा वह हमारी समकालीन दुनिया के यथार्थ का अंग हो गया है, सामान्य रचना जीवन में भी और रचना में भी ।" [3]

1. नई कविता, - सं. जगदीश गुप्त और विजयदेवनारायण साही
2. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 189
3. नई कवितायें एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 55

उनकी कविताओं के बिंब महज दृश्य चित्र नहीं वरन् अर्थ संश्लेषण और अर्थ प्रसार के प्रबल माध्यम है । रामस्वरूप चतुर्वेदी इस पर प्रकाश डालते हैं, "लक्ष्मीकांत वर्मा की प्रतिभा इस अधिकतर बिंब - भाषा में चमकती है, सामान्य वर्णन की भाषा में तो वे प्राय: उदासीन और शिथिल से दिखते हैं । उनकी काव्य क्षमता के असमान प्रदर्शन का यह एक मुख्य कारण है । और यह भी कि कहीं - कहीं वे बिंबों को कच्चे - पक्के ढंग से फैला कर प्रयोग में लाते हैं । बिंब उनकी उपलब्धि है और मुश्किल भी, पर भाषा तो मुश्किल ही मुश्किल है ।" [1]

उनके पौराणिक उपमान अधिकांशत: लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता लिए हुए हैं । प्राचीन पात्रों और कथा प्रसंगों को उपमान का बाना पहनाकर लिखी गयी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

"मैं मर्यादा पुरूषोत्तम नहीं हूँ
इसलिए कहता हूँ
'पकडो, मेरे अश्वमेधी यज्ञों के घोडों को
तुम्हारे चाचा ने जो लक्ष्मणरेखायें बनायीं थीं ।
उठा दो, उन्हें क्योंकि तुम ज्योतिपुत्र हो ।" [2]

इसी प्रकार "मैं दूँगा अपना भविष्य अभिमन्यु,परीक्षित को भी मैं तक्षकों को सौंप दूँगा" [3] जैसे प्रयोग में पौराणिक उपमानों को प्रतीकवत् प्रस्तुत किया

1. नई कवितायें एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 64
2. नई कविता - 1963-64 - अंक 7 - सं. डॉ. जगदीशगुप्त और विजयदेवनारायण साही - पृ. 159
3. - पृ. 156

गया है । युग संदर्भ में लिखी गयी अपनी एक दूसरी कविता में अस्थियों को "दधीची अस्थियाँ" [1] कहा है जिससे पौराणिक उपमान की सहज और नैसर्गिक अवधारणा हो गयी है ।

आज के युग में संवेदनशील मनुष्य की नियति का सच्चा और प्रभावी चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है -

"मेरा अपराध यह है
बिना सिर उठाये
और किसी चौखट से टकराये
अपना सिर बचा लिया है
ताकि वक्त ज़रूरत काम आये ।" [2]

पुरानी लकीर से हटकर कविता के परंपरागत उपकरणों का कम से कम इस्तेमाल करते हुए वर्माजी ने व्यक्तिगत दुःख को कितनी आत्मीयता से शब्दबद्ध किया है -

"कभी कभी सोचता हूँ
यह मैंने क्या किया
मेरा घर,
एक हरा - भरा गुलदस्ता हो सकता था
एक संगीत की कड़ी बन सकता था

1. नई कविता, 1963-64, अंक 7, सं. डॉ. जगदीशगुप्त और विजयदेव नारायण साही - पृ. 157
2. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 51

लेकिन इस युग में
मैंने क्यों वह चुना
जिसमें सिर्फ रेत है,
मरु है, विष है, व्यंग्य है ?" [1]

शिल्प की दृष्टि से उनकी कविताओं में कुछ कमियाँ अवश्य दीख पडती है। उनकी कविताओं में कई जगह पुनरावृत्ति, अतिरेक, अतिकथन और फैलाव है। परमानन्द श्रीवास्तव ने "ओवरस्टेटमेंट" को लक्ष्मीकांत का सहज भाव मानते हुए उनकी कविताओं में व्याख्या के अनावश्यक विस्तार की ओर संकेत किया। [2] उनकी कविताओं की सीमाओं पर प्रकाश डालते हुए विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है कि "लक्ष्मीकांतजी की भाषा सपाट है, वह कथन भर है। उसमें सूक्ष्म अनुभूतियों को वहन करने का सामर्थ्य नहीं है। वह अभिव्यंजना नहीं, उक्ति भर है।" [3]

यह तो सही है कि वर्माजी कविताओं में शिल्प के प्रति उदासीन रहे हैं, उनकी कविताओं में शिल्पगत विघटन हुआ है, फिर भी उनकी कवितायें अनुभूतियों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 70
2. हिन्दी साहित्याब्दकोश - 1975 - पृ. 136
3. हिन्दी साहित्याब्दकोश - 1968 - पृ. 237

आलोचना की नई तलाश

लक्ष्मीकांत वर्मा ने एक आलोचक के रूप में भी अपनी अलग पहचान बनायी है। अपने दो आलोचनात्मक ग्रन्थ - "नई कविता के प्रतिमान" और "नये प्रतिमान पुराने निकष" के द्वारा वे सिद्ध कर देते हैं कि उनके पास एक आलोचक की सूक्ष्म दृष्टि और पैनी पकड है। आलोचना लिखने की प्रेरणा पर प्रकाश डालते हुए वर्माजी लिखते हैं - "कथ्य को व्यक्त करने की जो एक उग्रता व बेचैनी दिमाग में बनी रहती है उसके कारण अनुरूप विधा आ जाती है। रचनात्मक कार्य के दौरान जो समस्यायें दिमाग में आती हैं और उनका समाधान नहीं मिल पाता तो मैं आलोचना लिखता हूँ।" [1] अपने आलोचनात्म दृष्टिकोण का हवाला देते हुए वे स्पष्ट कर देते हैं - "हर युग में अपने समय के साहित्य के मूल्यांकन करने की माँग दोहरी चेतना के साथ प्रस्तापित की जाती है। एक तरफ से यह चेतना परंपरा से संस्कार के रूप में जुडी होती है। दूसरी तरफ से इन संस्कारों से संदर्भ पाकर युग की समस्याओं को समसामयिक रूप में व्याख्यायित करती है। इस द्वन्द्व के मर्म से ही संयमशील साहित्य अभिव्यक्ति पाता है। जो कुछ अभिव्यक्त होता है उसे समझने केलिए जब हम कोशिश करते हैं तो जाने अनजाने आलोचक बन जाते हैं। लेकिन यदि समझने की कोशिश में संस्कार का कट्टमुल्लापन रहता है तो न्याय नहीं होता। नया आलोचनाशास्त्र समझदारी की दृष्टि देता है और यह समझदारी कट्टमुल्लेप को तोड कर ही आती है। यदि बिना इस दृष्टि के नया शास्त्र बनाने की कोशिश की जायेगी तो उससे न तो परंपरा का कल्याण होगा और न उस

1. सारिका - अप्रैल 1987 - पृ. 59

साहित्य का जिसमें युग की वाणी मुखर होती है । इसलिए आलोचक का कर्तव्य यह है कि अपनी परंपरा के प्रति जागरूक होकर अपने युग की व्याख्या करने में उदार और सचेत रहे ।"[1]

नई कविता और नव लेखन को स्थापित करने की जो कोशिश वर्माजी ने की है वह काफी सराहनीय है । "नई कविता के प्रतिमान" में उन्होंने नई कविता को कोई आन्दोलन नहीं माना । उनकी दृष्टि में "वह एक साहित्यिक प्रवृत्ति है जिसमें आज का भावबोध अधिक व्यंजना के साथ अभिव्यक्ति पाता है ।"[2] रचना प्रक्रिया में बौद्धिकता और संवेदना की महत्ता को वर्माजी मानते हैं । इन दोनों में अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित करते हुए वे लिखते हैं -"कोई भी अनुभूति बिना इस बौद्धिकता के पनप नहीं सकती । कोई भी संवेदना बिना इस बौद्धिक क्रिया के पनप नहीं सकती, कोई भी संवेदना बिना इस मानसिक क्रिया के मूल्यवान नहीं बन सकती, फिर बौद्धिकता से बचने का प्रश्न ही नहीं उठता ।"[3] उनकी यह उक्ति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि का समर्थक हैं । उनकी राय में काव्य की विधायनी कल्पना भावप्रसूत न होकर विचारप्रसूत होती है ।" जैसे वे लिखते हैं - "कल्पना स्वयं किसी विचार के आश्रित रहती है । किसी भी कल्पना का जब तक प्रस्फुटन नहीं होता, तब तक वह असंभावी प्रतीत होती है ।

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 2

3. - पृ. 69

अनुभवों की नवीनता, विचार, कल्पना और दृष्टिकोण के धरातल को बदल देती है।"[1] नई चेतना के चिन्तक लक्ष्मीकांत वर्मा को काव्य माध्यम के क्षेत्र में प्रचलित पुरानी प्रणालियाँ अपर्याप्त लगी, फलस्वरूप उन्होंने अभिव्यक्ति की नई भंगिमायें अपनाने की बात पर ज़ोर दी। उन्होंने नये काव्य मूल्यों की सार्थक खोज का प्रयास भी किया है। उनके मत में प्राचीन काव्य मूल्यों की सार्थकता के संदिग्ध हो जाने के कारण वे मूल्य संदर्भ विहीन भी हो गये हैं। केवल वर्गीकरण की पद्धति पर बल देनेवाली प्राचीन काव्य शास्त्रीय मान्यताओं से उन्हें बड़ा विरोध है। उस प्राचीन काव्य चिन्तन की यह भी सीमा है कि वह किसी भी साहित्य कृति को नायक - नायिका भेद, रस भेद और अलंकार भेद आदि दायरे में वर्गीकृत करके छोड देते हैं। वर्माजी ने काव्य के अभिव्यंजना मूल्यों को नये सिरे से व्याख्यायित किया है और उन्हें युगीन परिवेश के संदर्भ में प्रतिष्ठित किया है। वे लिखते हैं "किसी भी जीवित साहित्य का साहित्यशास्त्र भी साहित्य के विकास के साथ साथ बदलता रहता है। यह बदलने की प्रक्रिया स्वस्थ, गतिशील, जीवन्त एवं जागरूक चेतना की परिचायक है। जिस भाषा का व्याकरण जड हो जाता है, वह भाषा मर जाती है। जिस साहित्य का साहित्य-शास्त्र जड हो जाता है वह साहित्य ही मर जाता है।"[2] वर्माजी के लिए भाषा का आभिजात्य प्रयोग जटिल संवेदनाओं की जटिलता को निभाने में असमर्थ लग रहा है। इसलिए "ताजी कविता" का प्रारूप निर्धारित करते हुए लक्ष्मीकांत वर्मा "नंगी भाषा" - ऐसी भाषा जो

....

1. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 49
2. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 3

आवरणहीन, लज्जाहीन, संस्कारहीन और इन सबसे अधिक ऐसा नंगापन जिस में आभिजात्य जंगलीपन के ऊपर एक समय बोध की छाप लगा सकें-की माँग करते हैं। वे यह महसूस करते हैं कि जिस अभिव्यक्ति के संकटों से हम गुज़र रहे हैं, उसका मूल कारण है नितान्त "चार्ज्ड" भाषा के माध्यम से अत्यन्त व्यक्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति, बिना अनुभूतियों की गहराई को स्पर्श किये भाषा और बिंब ऊपर ऊपर तैरते हैं, उनकी चिकनाहट में वातावरण भले प्रतिबिंबित हो जाये किन्तु अनुभूति का वह मार्मिक कोर जो आज की मन:स्थिति के उद्वेग से जला और उपजा है, वह छूट जाता है।" [1]

उन्होंने काव्य भाषा को सामान्य शब्दावली से अर्थगर्भित बनाया। कहीं कहीं उन्होंने शब्द की अपेक्षा ध्वनि को भी काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित करना चाहा। वे अनुभव कर रहे हैं कि "शब्दों का जब भेद मिट जाता है तब अर्थों का लोप हो जाना स्वाभाविक है, और जब शब्द और अर्थ दोनों का लोप हो जाये तो फिर नयी बोली को जन्म देना पडता है। आज के संदर्भ में शब्द और अर्थ दोनों का लोप हो गया है। प्रत्येक शब्द एक समान आकार के नींबू के छिलके के समान निचुडा एवं रिक्त सा हो गया है।" [2]

प्रयोगवाद और नई कविता के आरंभिक चरणों में जिन काव्य बिंबों का प्रयोग हुआ था उन बिंबों को वर्माजी ने उतनी मान्यता नहीं दी। बिंब को

1. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 300

2. ,, - पृ. 320

आधुनिक कविता के मूल्यांकन का एकमात्र प्रतिमान भी नहीं माना । इस बिंबधर्मिता के विरोध में अपनी तेज़ प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है । बिंबों की भाषा से उठकर वे नंगी भाषा के हिमायती भी बन गये । ताज़ी कविता का प्रारम्भ प्रस्तुत करते हुए वर्माजी ने साफ शब्दों में कहा है - "बिंबों की यह निरर्थकता ही हमें अब नंगे शब्दों की ओर ले जा रही है ।" [1] नई कविता में उपमान योजना का विशिष्ट प्रयोग हुआ है । श्लेष एवं अनुप्रास जैसे शास्त्रीय अलंकारों की परिवर्तित भूमिका भी स्पष्ट होने लगी । पुराने अलंकारों के स्थान पर प्रतीक, पौराणिक रूपक, मानवीकरण तथा अमूर्त अप्रस्तुतों की ओर रचनाकारों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होने लगा । लक्ष्मीकांत वर्मा का विचार है कि "नये साहित्य के समस्त माध्यम उपमा, उपमान केवल प्रतीकात्मकता तक सीमित नहीं रहते । उनकी व्यंजना का अधिकांश इसलिए छिछली भावुकता भी नहीं होता । वह सार्थक होती है क्योंकि बौद्धिकता उसे परिष्कृत करके सार्थक बनाती है ।" [2]

स्वातंत्र्योत्तर काव्य चिन्तन की व्यक्तिवादी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए वर्माजी का कथन है, "अहं की सार्थकता पर बल देने का अर्थ कलाकार की स्वतंत्रता से संबद्ध है, स्वतंत्रता - जो मानव स्वाभिमान और उसकी विशिष्टता का अविभाज्य अंग है, स्वतंत्रता जिसका लक्ष्य है, मानव - संभावनाओं को निर्बाध गति से विकसित होने की प्रेरणा देना ।" [3] नई कविता के विकास क्रम में जिस व्यष्टि मानव को प्रतिष्ठित करने का प्रयास

1. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 300
2. - पृ. 75
3. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 227

किया गया उसे लघुमानव की संज्ञा से अभिहित किया गया । वर्माजी के मत में, "यह लघुमानव सन् 1948 से लेकर 1956 के बीच कुछ तरुण हिन्दी कवियों के चिन्तन की सहकारी उपलब्धि है ।" [1] लघुमानव की और एक विशेषता यथार्थ को भोगने की उसकी क्षमता है । यह जीवन के नंगे यथार्थ को उनकी समग्रता में स्वीकार करता है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा का मत है कि प्रचलित काव्य प्रणाली अधुनातन समसामयिकता को व्यक्त करने में सक्षम नहीं है । वह युग की गतिशीलता के साथ गतिमान नहीं है, इसलिए नई परिस्थिति के अनुसार काव्य प्रणाली में भी परिवर्तन स्वाभाविक है । जाहिर है वर्माजी प्रत्येक साहित्यिक विधा में परिवर्तित जीवन स्थिति के अनुकूल बदलाव लाने पर ही बल देते हैं ।

उपन्यासकार

लक्ष्मीकांत वर्मा ने उपन्यास में जीवन की बहु आयामी गतिविधियों को पात्रों द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा की है । उपन्यास की रचना प्रक्रिया के संबंध में उनकी स्पष्ट धारणा है, "हर कला के केन्द्र में मानव आत्मीयता ही मूल विषय होती है । जब उसमें भाव पक्ष प्रबल होता है तब वह काव्य में व्यक्त होती है । जब गाथा के रूप में मनुष्य का व्यापार

1. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा -- पृ. 93

मुख्य होता है तब उपन्यास की रचना होती है । उपन्यास लिखने में भी महत्व अनुभूति और दृष्टि की होती है । उपन्यास में जीवन न्यास ही कथा के रूप में व्यक्त होता है ।" [1]

उनके उपन्यास हैं - "तीसरा प्रसंग", "खाली कुर्सी की आत्मा", "सफेद चेहरे", "कोयला और आकृतियाँ", "टेराकोटा" और "एक कटी हुई जिन्दगी एक कटा हुआ कागज़" । उपन्यासों का विस्तृत अध्ययन आगे किया जायेगा ।

कहानीकार

कहानी की रचना प्रक्रिया के संबंध में भी वर्माजी की अपनी एक अलग व्याख्या है - "मनुष्य की कहानी एक ही है जो हर युग में अपने समय के साथ बदलती है । कहानी हमेशा मनुष्य की रहनी को कहती है ।" [2] वर्माजी उस रहनी में ही मनुष्य का उत्कर्ष देखते हैं ।

उनके कहानी संग्रह हैं - "नीली झील का सपना" और "मेरी कहानियाँ" रचना संसार के बहुत सीमित दायरे में बसी हुई उनकी कहानियों का वर्णन आगे किया जायेगा ।

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से
2.

नाटककार

नाटक के सृजन के मूल में भी वर्माजी का एक खास नज़रिया है। "मनुष्य को और उसकी आत्मीयता को कर्म की दृष्टि से देखते हैं तो नाटक की सृष्टि होती है।"[1] वर्माजी ने अपने नाटकों द्वारा इसी विचार को स्पष्ट किया है।

उनकी नाट्य रचनायें हैं - "सिन्दुवुलम", "सीमांत के बादल", "रोशनी एक नदी है" और "ठहरी हुई ज़िन्दगी"। अपने नाटकों द्वारा समाज की असगत स्थिति के प्रति जनता को जागरूक करने के आह्वान में वर्माजी कितने सफल हुए हैं उसकी चर्चा आगे की जाएगी।

एकांकीकार

वर्माजी ने ज़िन्दगी के चन्द क्षणों की अभिव्यक्ति देने के लिए ही एकांकी विधा को अपनाया है। उनके एकांकी संग्रह हैं "आदमी का ज़हर" और "अपना अपना जूता"। एकांकियों का अध्ययन आगे किया जायेगा।

वर्माजी से हुई चर्चा से मालूम हुआ कि अब भी वे साहित्य सृजन में तन मन से लगे हुए हैं।

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

दूसरा अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक

लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य ने विकास की कई अवस्थायें पार की है। भारतेन्दु के बाद रंगमंच के क्षेत्र में फैली हुई अवरुद्धता और रंगशून्यता को तोडते हुए मंच से नाटक को जोडने की तथा उसे सर्जनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने की सफल कोशिश पचास के बाद शुरू हुई। नाटककारों ने युगीन जीवन संदर्भों को विभिन्न पार्श्वों में उलट पुलट कर देखने का प्रयास किया। युग की बदली हुई परिस्थितियों ने नाटक की परंपरित स्थापनाओं को अस्वीकार कर नई ज़मीन तलाशने केलिए नाटककार को विवश किया। अतः कथ्य, शैली, शिल्प और रंगदृष्टि के स्तर पर नूतन प्रवृत्तियों का विकास हुआ। जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल आदि ने सन् साठ के पहले अपनी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर दी। रंगमंच के जीवन्त मुहावरों के बीच से उन्होंने अपने कृतित्व को उभारा। कथ्य केलिए अतीत - एक बीते हुए युग संदर्भ-को अपनाते हुए भी सामयिकता को आत्मसात करनेवाली जिस विशेष परंपरा की शुरूआत कोणार्क के द्वारा माथुर ने की थी उसे भारती और राकेश ने आगे बढाया। यद्यपि पचास के बाद हिन्दी नाट्यप्रवाह ने एक नया मोड लिया है फिर भी सर्जनात्मक उर्वरता की दृष्टि से और रंगमंचीय

सक्रियता की दृष्टि से साठ के बाद अभूत पूर्व परिवर्तन नज़र आते हैं । नाटक को प्रत्यक्ष जीवन यथार्थ के निकट लाने के प्रयास के फलस्वरूप नाटककारों ने जीवन यथार्थ को गहरे धरातल पर प्रस्तुत किया और कथ्य की विभिन्न भंगिमायें अपनाई । परंपरा की लीक से हटकर इतिहास पुराण के प्रति खास दृष्टिकोण अपनाया गया । समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति केलिए इतिहास पुराण का प्रयोग किया गया और राजनैतिक वातावरण की सारी विसंगतियों का चित्रण किया गया । आम आदमी की तकलीफ की अभिव्यक्ति होने लगी । महानगरीय जीवन में मानवीय संबंधों - खासकर पारिवारिक संबंधों के तनाव, अर्थहीनता, ऊसरपन आदि को भी नाटककारों ने शब्दबद्ध किया । नारी के साथ हो रहे शोषण की परतों का अनावरण करने की कोशिश भी की गई । अपने संप्रेक्ष्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति केलिए नाटककारों ने विभिन्न नाट्यशैलियाँ- यथार्थवादी, प्रतीकात्मक, लोकनाट्य शैली, विसंगत शैली अपनाई । चरित्र सृष्टि के धरातल पर नई अवधारणायें अपनाई गई । सर्वगुण संपन्न, महान उदात्त और धीर नायकों का स्थान मानवीय गुण दोष युक्त चरित्रों ने ले लिया । भाषा की दृष्टि से भी नये प्रयोग मिलते हैं । पूर्ववर्ती नाटकों में जिस तरह की शुष्क, वादविवाद पूर्ण, जनजीवन से दूर, साहित्यिक शोभा से भरपूर, ऐन्द्रजालिक भाषा का प्रयोग हो रहा था, उस भाषा से अपने आपको मुक्त करने केलिए कदम उठाया है ।

सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि रंगमंच सापेक्षता है । अभिनय, निदेशन, मंच परिकल्पना, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि व्यवस्था सभी क्षेत्रों में प्रयोगशील वृत्ति अपनाई । आंगन रंगमंच, मुक्ताकाशी मंच, नुक्कड रंगमंच आदि की खोज कर उनके अनुकूल शिल्प के नाटकों की संरचना हुई । नाटककार, निदेशक और रंगकर्मियों ने यह सत्य महसूस किया कि आपसी सहयोग से ही सर्जनात्मक उपलब्धियाँ संभव है । हिन्दी नाट्य साहित्य केलिए यह सौभाग्य की बात है कि रंगमंच के प्रति पूर्णत: समर्पित नाटककार और प्रतिभासंपन्न निदेशक दोनों ने मिलकर हिन्दी रंगमंच की श्रीवृद्धि की । इनमें लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेन्द्र वर्मा, शंकर शेष, मुद्राराक्षस, हमीदुल्ला, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, मणि मधुकर, दयाप्रकाश सिन्हा, रमेश बक्षी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । नाटककारों की एक ऐसी जमात भी है जो अन्य विधाओं जैसे उपन्यास, कहानी और कविता के प्रतिष्ठित लेखक हैं । विपिनकुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिराज किशोर, मृणाल पाण्डे, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि इस खेमे के लेखक हैं ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के उल्लेखनीय नाटक हैं तिन्दुवुलम, रोशनी एक नदी है और ठहरी हुई जिन्दगी ।

अभिशाप्त देवदासी प्रथा का खुला दस्तावेज

"तिन्दुवुलम"

"गीत गोविन्द" के प्रणेता जयदेव की जनश्रुत प्रेमकथा के आधार पर नवीनतम नाट्यशिल्प का सहारा लेकर प्रस्तुत किया गया नाटक है "तिन्दुवुलम" । इसमें मानव का सहजप्रेम, देवदासी प्रथा का अभिशाप, धर्म के नाम पर किया जानेवाला क्रूरतम अनाचार आदि का वर्णन है । यथार्थ और कल्पना के तन्तुओं को जोडकर लिखा गया यह नाटकीय कथानक भारत के मध्यकालीन धर्मप्रधान जीवन की संगतियों और असंगतियों के संघर्ष की झाँकी प्रस्तुत करता है ।

संगीत में निष्णात, देवव्रत की पुत्री पद्मावती को देवदासी के रूप में जगन्नाथ मन्दिर में दिया गया है । पद्मावती महाप्रभु केलिए अर्पित की जा चुकी है । माता ने मरने से पूर्व ही उसे मन्दिर में अर्पित कर दिया था । पिता उसे उच्चकोटि की देवदासी बनाना चाहते हैं । आचार्य सत्यदर्शन द्वारा वह दीक्षित हो चुकी है ।

तिन्दुवुलम कवि है जो धर्माचार्यों द्वारा मन्दिर से निष्कासित है । वे हमेशा अपने गीतों द्वारा जनता को जागृत करने के प्रयास मे रत है । पद्मावती उनके गीतों से आकृष्ट हुई और दोनों के बीच रागात्मक संबंध

उत्पन्न हुआ । पद्मावती तिन्दुवुलम के गीतों को अपनाकर नृत्य करती है । यह जानकर आचार्य सत्यदर्शन उसे रोकते हैं । जगन्नाथ मन्दिर के प्रतिष्ठापन के दिन रथ-यात्रा का दल जा रहा है । संगीत में जय-जय देव हरे की ध्वनियाँ उभरती हैं । सत्यदर्शन ने जान लिया कि तिन्दुवुलम ने देवदासी पद्मावती को यह गीत सिखलाकर प्रार्थना के स्वर में अपना अहंकार प्रकट किया है, तब उसने यह गीत बन्द करने की आज्ञा दी । भावावेश में पडे लोग पथ से हटने के लिए तैयार नहीं थे । तब सत्यदर्शन पथ पर लेटनेवाले लोगों के ऊपर से रथ ले गया । जनता के दबने और कराहने की ध्वनियाँ सुनने पर नचिकेता बताते हैं कि आचार्य के लिए जय-जय कहना और पहिये के नीचे दबकर चिल्लाना दोनों समान स्थितियाँ है ।

दूसरे दिन पद्मावती राधा का वेष धारण कर नृत्य करने गयी । नृत्य के साथ महाप्रभु से तिन्दुवुलम और उसकी शक्ति की भिक्षा माँगने के लिए वह गयी है । लेकिन उन्हें शान्ति नहीं मिली । वह तिन्दुवुलम के पास आकर अपनी अशान्ति व्यक्त करती है । इसी बीच देवव्रत भी आया और उसने बताया - "जो त्याज्य है उसे स्वीकार करना पाप है, वितृष्णा है, मोह है, भ्रम है ।" [1]

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य, लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 23

सत्यदर्शन ने पद्मावती को मन्दिर में नृत्य करने की आज्ञा दी। लेकिन पद्मावती नहीं आयी। देवव्रत को बुलाया गया। देवव्रत ने बताया कि उन्होंने स्वयं पद्मावती को कोठरी में बन्द कर दिया है। सत्यदर्शन पद्मावती की खोज में देवव्रत के साथ आया, पद्मावती कहीं नहीं है।

धर्म परिषद् की गोष्ठी ने तिन्दुवुलम के अपराधों पर उन्हें दंड देने की आज्ञा दी कि फिर देवालय में आने का साहस न करें। अप्रत्याशित रूप से यदि नगर के किसी कोने में भी दिखाई पड़े तो उसे जीवित जला दिया जायेगा। सत्ता की शक्ति से ज़रा भी न विचलित होने वाले तिन्दुवुलम ने निर्भीक होकर ही उत्तर दिया - "मैं यह नगर छोड़कर नहीं जाऊँगा। पद्मावती मेरी है। उसे चाहे जितने कड़े बन्धन में तुम बन्दी बनाकर रखो, वह मेरी होकर ही रहेगी।" [1] उसी क्षण वे पद्मावती से मिलने गये।

तिन्दुवुलम को तलाश करती हुई पद्मावती सागर तट पर आती है। नचिकेता भी वहाँ मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं। शक्ति की सिद्धि केलिए वे प्रतिदिन रात में यहाँ आते हैं। उनके स्वतंत्र चिन्तन केलिए सत्यदर्शन ने उन्हें निष्कासित किया था।

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 58

नचिकेता तट पर जाने के अपराध में अश्वारोहियों के हाथों से पकडा गया । मरनेवाले तपस्वी केलिए पानी लाने गये है नचिकेता । उनकी प्रार्थना के फलस्वरूप तिन्दुवुलम के पास ले गये । वहाँ जाकर अश्वारोहियों ने दोनों को बन्दी बनाया और वहाँ से जो ताड-फल मिले हैं उन्हें भी ले गये । इन ताड पत्रों के गीतों को पढ़कर राजा लक्ष्मण सेन बहुत प्रसन्न हुए । राजा तिन्दुवुलम को देखने के लिए नचिकेता के साथ गये, उन्हें अपने शिबिर ले गये और राजवैद्य से उपचार करवाते हैं । सत्यदर्शि राजाज्ञा के अनुसार पद्मावती को ले आयी । सत्यदर्शि अंधा हो गया है । वह अपने दुष्कर्मों को बताकर स्वयं पश्चात्ताप कर रहा है । उस समय विपुला ने भी आकर बताया कि वह सत्यदर्शि की बेटी है जिसे देवदासी राधा ने जन्म दिया है । और सत्यदर्शि पर हँसी उडायी । सत्यदर्शि को दृष्टिहीन होकर सभी और महाप्रभु दिखाई पडते हैं । आज वह तिन्दुवुलम, पद्मावती और नचिकेता में कोई अन्तर नहीं देखता । अंत में पद्मावती को नृत्य करने की सुविधा मिल गयी है । खोये हुए जीवन मिलने केलिए, शान्ति मिलने केलिए पद्मावती राधा की विक्षिप्तता का स्वर गाती है ।

धर्म की रूढ़िपूर्ण अवधारणायें

हर युग में धर्म के क्षेत्र में धार्मिक अनाचारों, अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं के हिमायती व्यक्तियों का निरंकुश व्यवहार चलता ही रहता है । नाटक के आचार्य सत्यदर्शि और देवव्रत ऐसी धार्मिक व्यवस्था के क्रूरतम

अनाचारों की प्रतिमूर्तियाँ हैं। नाटक में उनके माध्यम से धार्मिक असंगतियों को व्यक्त करने का श्रम है ।

जगन्नाथ मन्दिर के प्रतिष्ठापन के दिन आचार्य सत्यदर्शन के नेतृत्व में रथयात्रा चल रही है । प्रतिहिंसा के गीत गाकर नृत्य करनेवाली पद्मावती को रोकते हैं । नृत्य गान में मग्न लोग उनकी बातों पर ध्यान नहीं देते हैं । तब सत्यदर्शन रथ आगे चलाने की आज्ञा देते है । यहाँ उनके क्रूरतम रूप की पहचान होती है । एक निरंकुश एवं स्वेच्छाधारी अधिकारी के सारे अवगुण उसमें मौजूद है ।

धर्म संस्थापकों के संबंध में सत्यदर्शन की अपनी परिभाषा होती है । उनके अनुसार पाप और पुण्य की परिभाषायें उनके द्वारा बनाई हुई हैं । लोगों का कार्य मात्र अनुकरण करना है । धर्म के पक्ष को संतुलित रखना उनका कार्य है और उसे स्वीकार करना लोगों का कर्तव्य है । महानाथ, पीताम्बर आदि शंका उत्पन्न करते हैं तो सत्यदर्शन अपना मत प्रकट करते है - "आचार्य शंका में नहीं जीवित रहता - तुम्हारी शंका गुरू परंपरा के आचार्यत्व को अपमानित करती है ।" [1]

सत्यदर्शन पर अपनी अहं की भावना बहुत अधिक है । वे अपने जीवन में अब तक पराजय नहीं स्वीकार करते है । उसने जो चाहा है उसे लिया है, जो उचित समझा है उसे किया है । आश्रयहीन तिन्दुवुलम का और वामपंथी

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 9

नचिकेता का साहस उस के लिए क्षम्य नहीं है । इसलिए वे दोनों को मन्दिर से निष्कासित करते हैं ।

सत्यदर्शन अपने प्रतिद्वन्द्वियों का काम तमाम करने में कभी हिचकते नहीं । तिन्दुवुलम के विक्षुब्ध होकर सागर तट पर घूमने की बात जानकर वे प्रश्न करते हैं - "वह क्यों लहरों में डूब नहीं जाता ।" [1] इस प्रश्न में उसकी क्रूरता का रूप है ।

सत्यदर्शन पद्मावती की खोज में देवव्रत के साथ जाते हैं, पर उसे देख न सका । देवव्रत का परिहास करनेवाले सत्यदर्शन के वाक्यों में व्यंग्य की प्रखरता है ।

धार्मिक आचारों पर वे बडी आस्था दिखाते हैं । धर्म परिषद की गोष्ठी में तिन्दुवुलम के अपराधों को गिन गिनकर कहनेवाले सत्यदर्शन में धार्मिक विश्वास की दृढता है । लेकिन धर्म पर इतनी अधिक आस्था रखनेवाले इस आचार्य की असलियत का परिचय तब हमें मिलता है जब विपुला आकर इस रहस्य का उद्घाटन करती है कि वह सत्यदर्शन की देव-दासी राधा में उत्पन्न अवैध सन्तान है ।

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 30

अपने अपराधों पर प्रायश्चित करने केलिए वे तैयार हो जाते हैं। उसने समझ लिया कि उसने जो कुछ किया वह सब अपराध है। वे राजा लक्ष्मणसेन, तिन्दुवुलम आदि के सामने बताते हैं - "मैं ने जिस दिन से पद्मावती को देवालय में बन्दी बनाकर रखा ----- जिस दिन से मैं ने तिन्दुवुलम को अपमानित करके देवालय से बहिष्कृत किया ---- देवालय की आभा ही जैसे छिन गई।" [1] उसके मन में एक तरह की अशांति फैल गई, अंत में वे आधा हो गये हैं। इससे उसके अहं पर आघात पहुँचते हैं। वे अपने को पराजित मानते हैं। वे बताते हैं - "महाप्रभु के मन्दिर में रहने पर भी मैं देवता के अस्तित्व को नहीं समझ पाया।" [2] "मुझे दृष्टिहीन होकर सभी और महाप्रभु ही दिखाई पड़ते हैं।" [3]

अहंकार के कारण वे पहले ईश्वर के अस्तित्व समझ नहीं सकते हैं। अहं की भावना नष्ट होने से ईश्वर की महिमा जान सकते हैं।

नाटक के प्रारंभ में गर्विष्ट, धर्मांध व्यक्ति के रूप में आनेवाले सत्यदर्शन अंत में एक साध्वी भक्त के रूप में प्रकट होते हैं।

देवदासी पद्मावती के पिता देवव्रत पूरे नाटक में धर्मान्ध के रूप में उभर आते है, वे धार्मिक विश्वास पर अधिक श्रद्धा रखनेवाले हैं। उनकेलिए महाप्रभु

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 84-85
2. - पृ. 92
3. - पृ. 98

ही सब कुछ है । वे अपने को ही महाप्रभु का मानते हैं । वे स्वयं बताते हैं - "मैंने केवल महाप्रभु की सेवा की है, संगीत और स्वरों को मैंने मनुष्य को नहीं सुनाया है, मैं ने अपना सब कुछ उसी एक महाप्रभु को अर्पित कर दिया है । मेरे पास कुछ नहीं है । यह पद्मावती भी मेरी नहीं है, महाप्रभु की दासी है । मैं स्वयम् अपना नहीं हूँ, केवल प्रभु का हूँ ।" [1]

भावुक पिता ने पुत्री को अर्पित कर दिया है । वे पद्मावती को उच्चकोटि की देवदासी बनाना चाहते है । त्याज्य वस्तु के प्रति मोह करना उनकी दृष्टि में पाप है । इसलिए तिन्दुवुलम और पद्मावती के संबंध के बारे में देवव्रत कहते हैं - "जो त्याज्य है उसे स्वीकार करना पाप है, वितृष्णा है, मोह है, भ्रम है ।"[2]

प्रभु केलिए अनिष्टकारी वचन कहना और सुनना उन केलिए असह्य है । अत: वे तिन्दुवुलम से पूछते हैं - "इन जघन्य बातों को कहते समय तेरी जिह्वा क्यों नहीं कट कर गिर जाती ।" [3]

देवव्रत अपने अनुष्ठान तोडना कभी नहीं चाहते हैं । इसलिए वे अपनी पुत्री को नृत्य करने केलिए और गाने केलिए विवश कर देते हैं । अनुष्ठान को भंग करने के कारण, उन्होंने पद्मावती को जिन हाथों से वाद्ययन्त्रों को बजाकर

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 23
2. - पृ. 23
3. - पृ. 25

कोमल स्वरों का रहस्य समझाया है उन्हीं हाथों से ताडना भी दी है। और उसे कोठरी में बन्द कर दिया। वे अपने अनुष्ठान में इतनी निष्ठा रखते हैं। राजा को पुत्री के सामने लाते हैं लेकिन कोठरी में पद्मावती नहीं है। वे तो विक्षुब्ध हो गये, अपने वाद्य यंत्रों को उन्होंने विक्षुब्धावस्था में तोड दिया है। धार्मिक अनुष्ठान केलिए जीवित एक साधारण पिता है देवव्रत।

धर्मान्धता के खिलाफ विद्रोह की चिनगारियाँ

नृशंस धार्मिक नेता धर्म का अफीम पिलाकर जनता को प्रश्नहीन बनाना चाहते हैं, प्रश्नचिह्न लगानेवाले, अस्वीकार की आवाज़ उठानेवाले व्यक्तियों को दबाने का प्रयास भी करते हैं। अधिकांश जनता प्रतिक्रिया-विहीन हैं, लेकिन इसका अपवाद भी है जो इन निरंकुश धार्मिक आचार्यों के इशारे पर नाचने केलिए तैयार नहीं है। वे परंपरागत रूढियों को तोडना चाहते हैं, नये मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं। तिन्दुवुलम और नचिकेता ऐसी विचारधारा के वाहक के रूप में नाटक में प्रस्तुत होते हैं।

तिन्दुवुलम अपने विचारों को महत्व देनेवाले कवि है। अपने गीतों द्वारा वे महान आदर्शों को व्यक्त करते हैं। उन्होंने देवदासी प्रथा दूर करने केलिए अपने गीतों द्वारा आह्वान दिये हैं। देवदासी पद्मावती उनके

गीतों से प्रेरित हो जाती है । इसलिए ही आचार्यों ने उन्हें मन्दिर से निष्कासित किया, फिर भी वे अपना प्रयत्न जारी रखते हैं । वे कहते हैं - "स्वगत रागों और आलापों की उपेक्षा नहीं की जा सकती । वह देश, काल बन्धन से मुक्त हृदय से द्रवित होते हैं -- होते रहेंगे ।"[1]

तिन्दुवुलम आस्थावान व्यक्ति है । उनके अनुसार, "मनुष्य परिस्थितियों से बड़ा है क्योंकि वह आस्थावान है ।"[2] "जीवन को आस्था से वश में किया जाता है । आस्थावान जीवन को वश में रखता है ।"[3] ऐसा उनका विश्वास है । तिन्दुवुलम जीवन को स्वचालित मानते हैं, उनकी दृष्टि में उसकी मुद्रा स्वाभाविक होती है ।

ईश्वर और मनुष्य को पृथक करने की चेष्टा वे व्यर्थ मानते हैं । वे मनुष्य से ईश्वर तक पहुँचना चाहते हैं ।

धर्म परिषद् की गोष्ठी के सदस्य तिन्दुवुलम को दंड देने के लिए एकत्रित हुए है । तिन्दुवुलम भी वहाँ बुलाये गये हैं । यहाँ उनकी असामान्य धीरता स्पष्ट है । उनके सामने तिन्दुवुलम ने बार बार अपने अपराध व्यक्त करने को कहा । उन धर्माचार्यों के अनुसार तिन्दुवुलम ने परंपरा के विरुद्ध काम

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 23
2. ,, - पृ. 16
3. - पृ. 19

किया है और जो परंपरा तोडता है वह धर्म की सनातन सत्ता, शील, मर्यादा, भक्ति इन सबको लांछित करता है । अपनी अनुभूति को पाप कहना वे स्वीकार नहीं करते । उनसे वे प्रश्न करते हैं - "क्या किसी की सत्य रसानुभूति को हठात् जघन्य समझना पाप नहीं है ? क्या किसी भी सुन्दर सुगन्धित पुष्प की सुन्दरता को सुन्दर कहना पाप है ? क्या किसी भी मनोरम दिव्य आभा की स्वीकृति पाप है ?" [1] अपनी प्रवृत्तियों पर अडिग रहने की उनकी दृढता यहाँ स्पष्ट है ।

तिन्दुवुलम हमेशा अपने एकाकीपन के प्रति बोध रखते हैं । वे शान्ति की एकांत यात्रा कर रहे हैं, पर उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिली । उनके आगे पीछे कोई नहीं, उनके पास सुख नहीं, शान्ति नहीं, प्रेम नहीं, भावना नहीं, कुछ भी तो नहीं है ।

पद्मावती के प्रति उनका प्रेम निस्वार्थ है । रोग शैया पर पडने पर भी वे हमेशा पद्मावती की याद करते हैं और बुलाते हैं । पद्मावती के प्रेम के बिना वे अपने को स्वयं अपूर्ण मानते हैं -"मैं स्वयं अपूर्ण रहूँगा । मेरे गीत, मेरा स्वर, मेरी साधना, मेरी कविता सब अपूर्ण रहेगी ।"[2]

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 50
2. - दूसरा दृश्य - - पृ. 19

पश्चाताप करके सत्यदर्शन अंत में तिन्दुवुलम को देखने आये हैं । सत्यदर्शन अंधा हो गया है । अपने अपराधों को गिन गिनकर कहनेवाले सत्यदर्शन पर नचिकेता जब व्यंग्य बाण छोडते हैं तब उसे रोकनेवाले तिन्दुवुलम में उनकी क्षमाशीलता की पहचान प्राप्त होती है । सत्यदर्शन ने तिन्दुवुलम को मन्दिर से बहिष्कृत किया । पद्मावती को बन्दी बनाकर रखा । लेकिन ऐसे मनुष्य के अपराधों को माफ करने की सहनशक्ति केवल तिन्दुवुलम जैसे व्यक्तियों में ही मिलती है ।

अंत में तिन्दुवुलम को शान्ति मिली है, उनकी आत्मानुभूति के क्षणों को महत्त्व दिया गया है । उनके गीतों को स्वीकार किया गया है । पद्मावती से बोला - "गाओ पद्मावती । गाओ शायद हम सबको शान्ति मिल जाय ।" [1]

तिन्दुवुलम ने अपने को स्वयं आश्रयहीन बताया है और अपने को स्वतन्त्र व्यक्ति माना है - "माता पिता ने पुत्र को आश्रयहीन बनाकर विद्योपार्जन के लिए भेज दिया हो, मधुकरी पर जीवन व्यतीत करके जिसे धर्म - न्याय - श्रृंगार पढना हो, उसका स्थान संसार के हर कोने में है - - वह और जा ही कहाँ सकता है ।" [2]

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 100
2. - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - - पृ. 22

अधर्म के प्रति आवाज़ उठानेवाले साहसी युवक के रूप में नचिकेता का चित्रण हुआ है । प्रतिष्ठापन के दिन आचार्य सत्यदर्शि नृत्य के संबंध में मिथ्या तर्क उपस्थित करते हैं । तभी नचिकेता का प्रवेश होता है और तिन्दुवुलम को निष्कासित करने पर अपना दोष प्रकट करते हैं -- "पद्मावती के सौन्दर्य में और तिन्दुवुलम के गीत में एक ही सत्य है ।"[1] उनके अनुसार तिन्दुवुलम ईश्वरीय सत्य का जीवन में साक्षात्कार करना चाहते हैं । कथित सत्य को व्यवहार में लाने के कारण उसे प्रताडनायें भी भोगनी पडती है ।

सत्यदर्शि की क्रूर रथ यात्रा के प्रति उनका विद्वेष बहुत अधिक है -- "जिस भक्त का देवता पंगु होता है जो स्वयं अपने देवता के हाथ पैर काटकर बैठा सकता है उसके लिए तो सब कुछ क्षम्य है --- ईश्वर की पंगुता स्थापित करने के लिए जनता के वक्ष पर रथ के पहियों का घाव नितान्त आवश्यक है ।"[2] जय-जय नारे लगाना और पहिये के नीचे दबकर चिल्लाना दोनों समान स्थितियाँ है । दोनों ईश्वर की पंगुता सिद्ध करती है, उसकी मूकता को बल देती है । चिल्लाने पर कोई ध्यान नहीं देते है, कोई नहीं सुनते हैं । यही संसार की नियति है ।

एक बार सत्यदर्शि ने उसे भी कुचला था, देवालय के ऊपर से फिंकवा दिया था तभी से वह कुरूप हो गया, पंगू हो गया, लंगडा हो गया । उसी

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 9
2. - पृ. 11

नचिकेता, तिन्दुवुलम को दंड देने के लिए एकत्रित गोष्ठी में अपना साहस दिखाते हैं। वे व्यक्त करते हैं कि धर्म की प्रतिष्ठा करनेवाले लोगों ने ईश्वर को पंगु बनाया है, धर्म को पंगु बनाया है। तिन्दुवुलम के लिए उन लोगों से चेतावनी भी देते हैं - "यदि तुमने तिन्दुवुलम के साथ अन्याय किया तो स्वयं भगवान भी तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे।" [1] सब लोगों से निष्कासित तिन्दुवुलम के साथ रखने का साहस केवल नचिकेता में ही है।

पद्मावती को स्वीकार करने के लिए नचिकेता तिन्दुवुलम को प्रेरित करते हैं। नचिकेता पद्मावती को तिन्दुवुलम की शक्ति मानते हैं। उनके अनुसार रस से ही तृप्ति मिलती है, त्याग से नहीं। उनकी दृष्टि में त्याग दमन है, प्रतिहिंसा है, क्रोध है, लोभ है, लिप्सा है।

साहसी नचिकेता का हृदय कोमल है, भावुक है। वे डरते हैं कि यदि तिन्दुवुलम मर गया तो संसार से कोमलता नष्ट हो जायेगी, भावुकता नष्ट हो जायेगी।

राजनीति के संबंध में भी उनकी दृष्टि तीखी है। आज अनुशासन मनुष्य के लिए नहीं है। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों को अनुचर बनाना ही उनका लक्ष्य रह गया है। वे हर मनुष्य को अपना सेवक समझते हैं।

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 56

नचिकेता इसी ओर संकेत करते हैं - "मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकार करो ।" [1] नहीं तो अनुचर बनाने से राजसत्ता अधिक दिन नहीं चलेगा । राजा से भी कहते हैं कि यहां अधिकार सत्ता का प्रचलन है ।

नचिकेता में व्यंग्य की चेष्टा भी है । सत्यदर्शन के अधर्म को सहने के कारण उसे हंसी उडाने का अवसर नचिकेता नष्ट नहीं करते हैं । महाराजा के सामने अपने अपराधों को बतानेवाले अंधे सत्यदर्शन की हँसी उडाकर वे तिन्दुवुलम से कहते हैं - "वह दोनों आँखों से अंधे हो गये हैं । वह न तो प्रभु की प्रतिमा देख पाते हैं, न आरती, न नृत्य । वह केवल सुनते है, इधर कुछ दिनों से वह शुद्ध रूप में बोल भी नहीं पाते । लगता है उनकी जीभ ही ऐंठ गई है ।" [2]

इस साहसी युवक को अंत में पराजय स्वीकार करनेवाले व्यक्ति के रूप में मिलता है । नचिकेता ने पहले से ही ईश्वर को पंगु कहा था । लेकिन सत्यदर्शन ने ईश्वर की पंगुता स्वयं स्वीकार कर अन्तर्ज्योति प्राप्त की है । नचिकेता ने जिसे पंगु कहा है उसकी पंगुता स्वीकार करने पर अंधा होने पर भी सत्यदर्शन को अन्तर्दृष्टि मिली है । तब नचिकेता अपने को पराजित मानता है । उसका यह कथन अपनी पराजय की ओर संकेत

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 77
2. - चौथा दृश्य - - पृ. 86

करता है - "मैं पराजित हूँ - मैंने उसके ईश्वर को पंगु कहा था, लेकिन वह पंगुता तो सत्यदर्शन ने स्वयं अपने ऊपर ओढ ली है ।"[1] नचिकेता ने पहले शंकायें उत्पन्न की थी, लेकिन उन्हें समाधान नहीं मिला । आत्म प्रवंचना के क्षण में भी नचिकेता शक्ति पर विश्वास करते हैं जो सदैव उसे ऊपर उठाती है । लेकिन अंत में उसका विश्वास उस पर से उठ गया है । उसे लगता है कि मन का सारा विष अपने से बाहर नहीं हो पाता, वह भीतर रहकर हमें तोडता है ।

धार्मिक जडता की जंजीरों में जकडी नारी की व्यथा - कथा

देवदासी प्रथा प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित थी । "एक प्राचीन परंपरा के अनुसार कुंवरियाँ को देवता की दासी मानकर मन्दिर में छोड दिया जाता था । देवता से परिणीता होने से ये सदा सुहागिन मानी जाती थी । इनका समाज में बडा आदर होता था । यहाँ तक कि राजा के साथ बैठने तथा पान खाने का अधिकार केवल इन्हीं को प्राप्त था । वे देवता की सेविकायें, मन्दिर के लिए पूजा - सामग्री संचय करनेवाली तथा देवता को रिझाने के लिए नृत्य करनेवाली थी । इन्हें दूसरों के साथ विवाह करने का अधिकार नहीं था ।"[2] "तिन्दुवुलम" में पद्मावती तथा विपुला को देवदासी प्रथा से अभिशप्त नारियों के रूप में चित्रित किया गया है ।

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 86
2. पौराणिक सन्दर्भ कोश - डा. एन.पी. कुट्टन पिल्लै - पृ. 355

पद्मावती जगन्नाथ मन्दिर की देवदासी है । पद्मावती की भावुक माता ने मरने से पूर्व ही उसे देवता केलिए अर्पित किया था । पिता भी उसे उच्चकोटि की देवदासी बनाना चाहते हैं । इसलिए देवदासी बनने केलिए वह तो विवश हो जाती है । पद्मावती की भी अपनी अभिलाषायें हैं - शादी करने की,परिवार संजोने की कामना उसमें भी है । लेकिन भावुक माता की अभिलाषा और पिता की आज्ञा के सामने उसने अपना सिर झुकाया । पद्मावती की विवशता हम नाटक में कई बार देख सकते हैं । वह अपने नृत्यों से सब लोगों को आकर्षित करती है, लेकिन उसका नृत्य स्वयं उसे विवशता-सी प्रतीत होती है -"मेरा नृत्य, यह मेरी मुद्रायें - मेरी होकर मेरी नहीं हो पातीं ।"[1] देवालय का प्रत्येक क्षण उसे अंगार सा लगता है । चन्दनलेप, काशाय वस्त्रवाले साधु जन आदि उसे विद्रूप सा लगता है ।

कवि तिन्दुवुलम और पद्मावती के बीच रागात्मक संबंध उत्पन्न हुआ । तिन्दुवुलम के गीतों को वह अपने नृत्यों में समाती है । इस केलिए उसे धर्म संस्थापकों के विरोधों का सामना करना पडता है । वह भगवान के सामने नृत्य करके यही भिक्षा मांगने की इच्छा रखती है - "मुझे वह शक्ति दो कि मैं विद्रोह कर सकूँ - - अपनी सीमाओं से अपने बन्धनों से - ।"[2] लेकिन वह शक्ति की याचना न कर सकी । जन समूह की करतल-ध्वनियां पद्मावती को खुशी नहीं देती हैं, प्रशंसा में उठे हुए लोगों के हाथ उसे काले सर्पों के फणों के समान दीख रहे हैं - ।" यहाँ उसके मन की अशांति स्पष्ट है ।

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 19

2.

राधा की सी कुशलता से वह नाचती है । राधा का वेष धारण कर नृत्य केलिए श्रृंगार करनेवाली पद्मावती लोगों को राधा लगती है । "प्रथम स्वर" के वाक्यों से स्पष्ट है – "लगता है स्वयं राधाजी की साकार मूर्ति कृष्ण के विरह में विक्षिप्त है ।" [1] पीताम्बर की वाणी भी उसकी निपुणता व्यक्त करती है । लोगों का कहना है कि "जगन्नाथ मन्दिर की शोभा पद्मावती है और उसके नृत्य से महाप्रभु प्रसन्न होते हैं और कभी कभी महाप्रभु की आँखों से आँसु बह निकलते हैं ।" [2]

प्रतिष्ठापन के दिन पद्मावती के नृत्य में तिन्दुवुलम के गीतों की ध्वनि देखकर आचार्य नृत्य बन्द करने को कहते हैं । दूसरे दिन वह राधा का श्रृंगार कर मंच पर आती है, किन्तु नृत्य न कर सकी । पद्मावती की दयनीय स्थिति उसके ही वाक्यों से स्पष्ट है । वह पिताजी से कहती है – "मुझसे मेरे स्वर वापस ले लो, अपनी बताई हुई मुद्रायें वापस ले लो, अपना सिखाया हुआ स्वर वापस ले लो । किन्तु मुझसे गाने केलिए न कहो, मुझे शाप दो ऐसा शाप दो कि फिर मैं न गा सकूँ ।" [3]

नृत्य न करने का कारण पूछने पर पद्मावती आचार्य सत्यदर्शन से स्पष्ट रूप से बताती है – "नृत्य तभी होगा जब तिन्दुवुलम को मन्दिर में प्रवेश

1. तिन्दुवुलम – प्रथम अंक – दूसरा दृश्य – लक्ष्मीकांत वर्मा – पृ. 18
2. – पृ. 20
3. – पृ. 26

करने की आज्ञा दी जाएगी ।"[1] यहाँ उसके प्रेम की तीव्रता और चरित्र की निडरता स्पष्ट रूप से झलकती है ।

अंत में सारी समस्यायें निपट जाने से नृत्य करने की सुविधा मिल गयी है । अपने व्यवहार पर क्षमा चाहती है और तिन्दुवुलम के कहने के अनुसार विक्षिप्तता का स्वर गाती है ।

नारीत्व के सहज गुण पद्मावती में मौजूद है किन्तु देवदासी प्रथा से अभिशप्त नारी का उज्वल चरित्र नाटककार ने पद्मावती के माध्यम से प्रस्तुत किया ।

आचार्य सत्यदर्शन की देवदासी राधा में उत्पन्न अवैध कन्या है विपुला । उसे भी देवदासी का रूप धारण करना पडता है । वह उस स्थिति से मुक्त होना चाहती है । पुरी नगर का नागरिक विजयसेन से उसका प्रेम संबंध है । पहले देवव्रत और पद्मावती इस संबंध पर हँसी उडाते हैं । इसलिए ही विपुला, पुत्री की खोज में आनेवाले देवव्रत पर खूब व्यंग्य करती हैं - "पद्मावती अपना कर्तव्य जानती है, मनुष्य मनुष्य को पहचानना जानती है, वह तो विपुला जैसी स्त्रियां ही विजयसेन से प्रेम करती है । पापी है, प्रतिष्ठा भंग करती है -- पद्मावती ऐसा नहीं कर सकती ।"[2] अपमानित नारीत्व से प्रतिशोध की भावना आगे बढेगी । विपुला इसकी सूचना भी देती है - "प्रतिशोध में

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 28
2. तीसरा दृश्य - - पृ. 43

त्रस्त अपमानित नारी की भावना किसी महाभारत का ही सूत्रपात करती है।"[1]

बाद में विपुला कुष्ठरोग से गलित होती है। उसी अवस्था में सत्यदर्शन को देखने के लिए राजा के शिविर आयी। उनके प्रति विपुला के विरोध की तीक्ष्णता उसके कथन से स्पष्ट है - "जब आचार्य सत्यदर्शन सब से महानुभूति पा लेता तब मैं उसे घृणा दूँगी।"[2] उच्चवर्ग के प्रति हमेशा घृणा प्रकट करती है - "त्रुटियाँ सब से होती हैं, किन्तु साधारण जन उसे स्वीकार कर लेते हैं और आचार्य वर्ग स्वीकार करते हुए भी नहीं स्वीकार करता।"[3]

अपने को अभिशाप्त मानकर बताती है - "मैं केवल अभिशाप्त हूँ -- पिता का अभिशाप, प्रेमी का अभिशाप, सभी कुछ तो मुझे भोगना है -- भोग रही हूँ -- भोगूँगी।"[4] शंका का समाधान भटकाव से ही मिलेगा, ऐसा विश्वास कर वह असंतुष्ट आत्मा चल रही है।

1. तिन्दुवुलम - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 42
2. दूसरा अंक- चौथा दृश्य - - पृ. 87
3. - पृ. 90
4. - पृ. 93

शुष्क राजनीति में कोमलता

कला का उपासक कभी भी कला की अन्यायपूर्ण क्षति बर्दाश्त नहीं कर सकता है । इतिहास इस तथ्य का गवाह बन गया है कि कई कला-पारखी शासकों ने कला की रक्षा केलिए भरसक कोशिश की है कि कला अत्याचारियों के हाथ का शिकार न बन जाए ।

लक्ष्मण सेन जगन्नाथ पुरी का राजा है । सैनिकों ने नाचिकेता और तिन्दुवुलम को बंदी बनाकर राजा के शिबिर पहुँचाया । कुटिये से कुछ ताडपत्र भी लाये गये हैं, ताड पत्रों के गीत पढ़कर राजा बहुत प्रसन्न हुए । वे कवि की वाणी से कविता सुनाने का आग्रह प्रकट करते हैं - "मैं उसके दर्शन करूँगा ---- उसके कंठ से ---- उसकी वाणी से ----- उसकी संवेदनों से मैं उसकी रचनायें सुनूँगा ।"[1] अधिकार पर अहंकार करनेवाले शासकों के बीच ऐसे राजा भी है जो एक समाज बहिष्कृत कवि का आदर करना चाहते हैं । सारा कार्य जानकर राजा ने पद्मावती और सत्यदर्शन को वहाँ लाने की आज्ञा दी ।

मंत्री ने याद दिलायी कि यह कलह की बात होगी । तब राजा ने उत्तर दिया कि वे यातनायें सहने केलिए तैयार हैं । धर्म, धर्म-संचालन में असफल हो जाता है तो उसे भी नीति - शासित होना पडता है ।

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 76

यहाँ सत्यदर्शन आदि धर्म-संचालक असफल हो जाते हैं और राजा तिन्दुवुलम को बात जानने केलिए तैयार होकर अपने शिबिर में ले गये । ताड पत्र पर लिखे गये गीत पद्मावती के हाथों में सौंप देते हैं । राजा तिन्दुवुलम को अपने साथ रहने की अनुमति मांगते हैं । शासक वर्ग में भी कोमलता है । राजा का कथन इसी तथ्य की ओर संकेत दिया --- "मुझमें जो कोमल है, रागात्मक है वह आज भो है, मैंने उसकी रक्षा करनी चाही है ।"[1] पद्मावती को सान्त्वना देते हैं कि "विक्षिप्तता से कुछ भी हाथ नहीं लगता है, जितना शेष है उसे संभालो ।"[2]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नाटक में धार्मिक अनास्था का स्वर ही मुखरित होता है जिसके पीछे नाटककार का उद्देश्य यह साबित करना है कि हमें एक ऐसी धार्मिक आस्था की आवश्यकता है जो बिलकुल विवेकशील हो । धार्मिक क्षेत्र में अब भी प्रचलित अंधविश्वास, कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, मन्दिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि जनजीवन को उन्नति और प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के बजाय उन्हें अंधकार के गहरे गर्त में ढकेलते जा रहे हैं । इसके प्रति लक्ष्मीकांत वर्मा की तीव्र प्रतिक्रिया भी "तिन्दुवुलम" में गूँज उठती है ।

1. तिन्दुवुलम - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 99

2. - पृ. 99

ज़माने की बेचैनी की अनुशासित अभिव्यक्ति

"रोशनी एक नदी है"

लक्ष्मीकांत वर्मा अपने नाटक "रोशनी एक नदी है" में देश की राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक यथार्थ को रूपायित करके एक विसंगत परिवेश का सृजन करता है ।

कथ्य की बिखरी कड़ियाँ

समाज के एक वृद्ध पर आक्रमण हो रहा है, इस घटना से नाटक शुरू होता है । वृद्ध के मंच पर आते ही शोरगुल सुनाई पडता है और "उसे मारो-मारो" ऐसे आवाज़ें भी सुनाई पडती हैं । वृद्ध बुरी तरह घायल हो गया है । सहसा प्रेक्षकों के बीच से एक आदमी उठकर आता है और उन्हें छापकर बैठ जाता है । उसको भी चोटें लगती हैं । लेकिन शोर धीरे धीरे कम होने लगता है । वह उन्हें हिलाता डुलाता है । फिर छोड देता है । ठण्डी साँस लेकर वह उठता है । प्रेक्षकों से कुछ कहने के बाद फिर वह उदासीन होकर वृद्ध की लाश को उठाकर अपनी गोद में लेता है । तब लैम्पपोस्ट के नीचे से एक लड़की निकलती है और उससे अपने पिता की लाश को देने की बात कहती है । वृद्ध की लाश लड़की को देने के लिए वह लडका तैयार नहीं है । वृद्ध पर लोग पत्थर बरसाते समय लड़की ने उन्हें बचाने की कोशिश नहीं की, उसने चबूतरे के पीछे छिपकर बैठी थी । लड़के ने कहा कि न बचाने से वे उसके पिता नहीं है और सबका पिता हो गया है । लड़की से, वहाँ से हटने को भी कहा ।

इसी बीच लड़की अपनी कहानी सुनाती है । उनके पिता शहर के सबसे पुराने मास्टरजी है । उनका घर इस सड़क का हर चौरास्ता है, जहाँ वे चाहते हैं वहीं रह लेते हैं । वे अब यहाँ से कहीं चले गये । शहर का कलक्टर, कोतवाल, मिल मैनेजर आदि उनके होते हैं और सब लोग तो उनकी इज्ज़त करते हैं । सब लोगों ने पहले उन्हें घर दिया । फिर मास्टरजी की बेटी को सिर्फ औरत बनाया क्योंकि उन लोगों की शादी तो हो चुकी थी ।

लड़की उस दुर्घटना की याद करती है जो उसके पिता की मृत्यु का कारण बन गया है । जुलूस चल रहा है, बीच कुछ शोर सुनाई पड़ता है, कुछ गोलियों की फयरिंग की आवाज़ भी सुनाई पड़ती है । बन्दूक की आवाज़ के साथ लोग इधर उधर छिपने की कोशिश करते हैं । रास्ते में मात्र वृद्ध है, बाकी सब लोग भाग गये । वृद्ध खामोश, लंगडाता हुआ सीढियों पर चढ़ने की कोशिश करता है और जब अंतिम सीढी पर पहुँचता है तभी एक गोली उसे लगती है । और वह गिर पड़ता है । कुछ देर घिसटने के बाद ठंडा पड़ जाता है । थोडी देर के बार बिजली के लैम्प-पोस्ट के नीचे से फ्रैंक, ब्रैक और ट्रैक आते हुए दिखाई देते हैं । वे गिरे हुए झण्डे को खड़ा करते हैं, वृद्ध का हाथ-पैर हिलाते-डुलाते हैं । सहसा फिर गोलियाँ चलने की आवाज़ आती है । रोशनी फेड आउट करती है और फिर जब रोशनी होती है तो केवल बूढे की लाश पडी रहती है ।

प्रेक्षकों के बीच से वही आदमी उठता है । फिर लड़की भी आकर लाश देने को कहती है । लड़के ने वृद्ध को सबका पिता कहकर लड़की से चलने को कहा । वैसे नाटक जहाँ शुरू होता है वहाँ समाप्त होता है । अतः श्री हरिराम आचार्य की मान्यता ठीक लगती है - "एक प्रयोगात्मक रूप आयाम में ढले इस नाटक का आरंभ जिस बिन्दु से होता है, उसी बिन्दु पर उसकी समाप्ति होती है । यह वृत्त एक शाश्वत चक्र का प्रतीक है जहाँ हर समाप्ति एक नये आरंभ को जन्म देने केलिए बाध्य होती है ।" [1]

बुनियादी ज़रूरतों से वंचित आम आदमी

स्वतन्त्रता प्राप्ति की एक लंबी अवधि के बाद भी यहाँ की औसत जनता की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति न हुई है । भर पेट भोजन, रहने केलिए एक कुटिया, नंगेपन छिपाने का चीर - ये सब आज भी उनकी पहुँच के परे हैं । प्रतिदिन बढ़नेवाली बेकारी स्थिति को और भी बिगाड देती है । लक्ष्मीकांत वर्मा अपने नाटक "रोशनी एक नदी है" में देश की गरीबी एवं अभावग्रस्तता से उत्पन्न विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य करता है । नाटक की कुमकुम के पारिवारिक जीवन की विषमावस्था इसी की ओर संकेत है । अभावग्रस्तता से घिरी हुई उसकी अपनी ज़िन्दगी में प्रतीक्षा की एक किरण भी नहीं दिखाई पडती । प्रतिदिन जुलूस में भाग लेने के बाद रात को खाली

1. नटरंग 1975 जनवरी - जून - (रोशनी की तलाश - हरिराम आचार्य) - पृ. 65

हाथ लौटनेवाला पति और भूख सहते सहते खाली पेट सोनेवाले बच्चों के बीच कुमकुम जिस विवशता को महसूस करती है वह इन शब्दों में उभर आती है - "मैं रोज़ घर में बच्चों को भूखा सुला देती हूँ - उन्हें समझा देती हूँ तेरा बाप इनकिलाब करने गया है, लेकिन रोज़ रात को जब तुम लौटते हो तब तुम्हारे हाथ में इनकिलाब नहीं सिर्फ एक टूटा हुआ काला डिब्बा होता है जिसमें कुछ नहीं होते ------ ।"[1] इसी अभावग्रस्तता से ही औरत बच्चों को जुलूस में भाग लेने के लिए भेजती है ।

हमारे देश में गरीबी से अभिशप्त हज़ारों कुमकुम हैं जिनकी अभावग्रस्तता का खूब लाभ उठानेवाले अर्थलोलुप ठेकेदार हैं , गरीबी हटाने की आड में वे अपनी तिजोरी ही भरते हैं । ऐसे व्यक्तियों का परिचय भी वर्माजी ने दिया है जैसे कुमकुम कहती है - "एक नेतानी भारत माता की जै करती हाथ में झण्डा लिये आयी थी । चार-चार रुपये बच्चे की दर से हवाई अड्डे पर झण्डे लेकर खड़े रहने के लिए ले गयी है ।"[2] ये नेता या नेतानी इतनी चालाकी हैं कि दो या तीन कौड़ियों के जाल में कुमकुम जैसी बेचारी नारियों को फँसा देते हैं । "रोशनी एक नदी है" की नेतानी जिसने जै भारत माता का नारा लगवाने का ठेका ले रखा है, गन्दी बस्तियों से जाकर बच्चों को जुलूस में ले जाने के लिए तथा हवाई अड्डे पर झण्डे लेकर खड़े रहने के लिए उन्हें

1. रोशनी एक नदी है, - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 59

2. - पृ. 60

किराये में लेती है । माताएँ इस केलिए क्यों मंजूर हो जाती है ? इसका कारण कुमकुम के शब्दों में स्पष्ट है – "सारे खटाल की औरतों ने अपने बच्चे दे दिये ----- मैं ने भी दे दिये ----- छः बच्चों के चौबीस रुपये मिले ----- वह बोली ये बच्चे जुलूस में जायेंगे ।"[1] गरीबी हटाने केलिए पैसे की आवश्यकता है । नारे लगाने या इनकिलाब कहने से गरीबी नहीं हटती । नेतानी ने कुमकुम को समझा दिया कि गरीबी पैसे से हटती है । और बच्चों को जुलूस में भेजने केलिए विवश किया है । जब औरत ने कहा कि बच्चों को भेजना पति को अच्छा नहीं लगा तब नेतानी ने उसके कातर भरे घर में प्रधान मंत्री की एक बड़ी हँसती हुई सी अच्छी तसवीर टाँग दी और उन्हें विश्वास दिलाया कि इन्होंने गरीबी हटाने का एलान किया है । उस नादान औरत असमंजस में पड गयी क्योंकि उससे पति कहता है इनकिलाब गरीबी हटायेगा और नेतानी कहती है प्रधानमंत्री गरीबी हटायेगी । तब नेतानी हँसकर उसके हाथ पर चौबीस रुपये रखकर बोली कि गरीबी पैसे से हटती है, इनकिलाब से नहीं । बहुत दिनों के बाद उन्हें पैसे मिले थे । बदले में नेतानी कभी कभी बच्चों को "गरीबी हटाओ" के जुलूस में ले जायेगी, कभी कभी विदेश से आये हुए आदमियों के स्वागत में ।

गरीबी की विवशता से बुरी तरह आक्रान्त कुमकुम और उसके पति की विकराल मानसिकता की अभिव्यक्ति वर्माजी ने विसंगत शैली में की है ।

1. रोशनी एक नदी है – लक्ष्मीकांत वर्मा,--पृ. 60

गरीबी से मुक्त होने के लिए मर्द और औरत शेर का मुखौटा धारण करके जानवर बन गये हैं । गरीबी के कारण इन्हें भी जानवर का सा व्यवहार करना पडता है । जानवर बच्चे पैदा करके फेंक देते है, शेरनी बच्चों को दूध नहीं पिलाती, शेर बच्चों को लेकर अस्पताल नहीं जाता, स्कूल में नहीं भेजता । यहाँ मर्द और औरत अभाव से ही शेर-शेरनी का मुखौटा धारण करने केलिए विवश हो जाते हैं । वे इतने विवश हो गये हैं कि आज उन्हें दस किलो गेहूँ तक इकट्ठा खरीदने की नौबत भी नहीं है । औरत याद करती है - "आज से यही तीन एक साल पहले एक दिन जब मुझे दस किलो गेहूँ खरीदने का सौभाग्य मिला था और मेरे पास गेहूँ लाने का कोई कपडा नहीं था -- तब --- मैं ने अपने पति का पैण्ड काटकर सिला था । इस दुर्घटना को आज तीन साल हो गये ----- तब से आज तक दस किलो गेहूँ इकट्ठा खरीदने की नौबत ही नहीं आयी ।"[1]

चारों ओर अभावग्रस्तता से घिरा हुआ व्यक्ति ज़िन्दगी गुज़रने केलिए अनुचित मार्गों को अपनाता है । व्यक्ति को गुमराह कर देने में समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ एक हद तक जिम्मेदार हैं । गरीबी से तंग आकर चोरी करने केलिए मजबूर बन गये "क" नामक पात्र इसी सामाजिक परिस्थिति का शिकार है । "क" की पत्नी बीमार थी । अस्पताल में उसकी दवा हो रही थी । डाक्टर ने कहा कि दूध पीना है । पत्नी ने कहा कि

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 90

दूध नहीं पी सकती क्यों कि - पैसे नहीं हैं। डाक्टर को दया आ गयी। उसने उसे अस्पताल से दूध दिलवाने की सिफारिश कर दी। दूध मिलने लगा। अस्पताल से दवा और दूध मिलने पर भी वह मर गयी। क्योंकि अस्पताल से मिलनेवाले दूध घर के पास के चाक्लेट बनानेवाले को बेचता था। उससे इतने पैसे मिल जाते थे कि एक हफ्ते परिवार का खर्च चल जाता था। दूध बेचकर खाना खरीदने के लिए "क" यहाँ मजबूर हो जाता है क्योंकि "दूध से ज़्यादा ज़रूरी खाना था। दवा से ज़्यादा ज़रूरी पानी था। सरकार दवा के नाम पर पानी देती ही थी, हम दूध को खाने में बदल लेते थे।"[1] सरकार दवा के नाम पर पानी देती रही। अमरीकी पादरी अमरीकन दूध का पाउडर देता रहा और हम दूध को खाने में बदलते रहे। पत्नी के शरीर में खून की जगह पानी बढ़ता रहा। चार महीने के बाद पत्नी मर गयी, दूध का आना भी बन्द हो गया। "क" के सामने यह बड़ी समस्या थी कि अब दो बच्चों को क्या खिलायें? कुछ दिन भूखे रहे, अंत में चोरी शुरू की, चोरी करने के लिए विवश "क" की निस्सहाय अवस्था इन शब्दों में व्यक्त है - "मैंने चोरी शुरू की ----- चोरी गुनाह है न ----- लेकिन मेरा पेट उसी से भरता है ----- उसी से काम चलता है -----।"[2]

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 92

2. ,,

राजनीति का विषैला वातावरण

राजनीति के क्षेत्र में विसंगतियों का बोलबाला है। राजनीतिक नेताओं का लक्ष्य आज केवल अधिकार जमाना रह गया है। किसी भी राजनीतिक पार्टी को बनाने में और बिगाडने में अपना सशक्त योगदान देनेवाले जुलूस और नारे राजनीति के अभिन्न अंग बन चुके हैं। "रोशनी एक नदी है" में लेखक उन पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं, जुलूस, नारे आदि के खोखलेपन को व्यक्त करने का श्रम करते हैं।

जुलूस, नारे आदि अर्थहीन हो गये हैं। भीड, जुलूस सब में केवल आवाज़ ही होती है चाहे बारात का हो, चाहे लाश ले जानेवालों का। आवाज़ें जुलूस में भी साफ नहीं आती, सबका सब गड्डमड्ड हो जाता है। न तो नारा लगानेवाले के ही आवाज़ साफ सुनाई देती है और न नारा दुहरानेवालों को। अर्थहीन, अस्तित्वहीन होने पर भी जुलूस बदलता है, क्रांति लाता है, बड़े - बड़े परिवर्तन करता है। लेकिन क्रांति, परिवर्तन ------ सब का सब भीड है और मेला है शब्दों का। जुलूस की इस अर्थ - हीनता पर सिद्धनाथ कुमारजी प्रश्न चिह्न लगाते हैं -- "गरीबी हटाओ, समाजवाद जैसे बड़े बड़े नारे क्या कोई अर्थ रखते हैं ? जुलूस, अर्थी में शामिल होनेवाली भीड, बारात और मज़दूरों की टोली में क्या कोई अंतर है ?" [1]

1. साहित्यशब्द कोश - पृ. 147

छिछली राजनीति के अन्तर्गत जो सडांध है उसको बर्दाश्त करते हुए चुप्पी धारण करना ही यहाँ आदमी के लिए बेहतर है । जो इस सडी गली व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाता है दरअसल वह अपनी ज़िन्दगी को खतरे में डाल रहा है । गोलाबारी और कानूनों के बीच में पडकर रस्सी बनती जा रही मानव - ज़िन्दगी की रक्षा के लिए आवाज़ उठानेवाले वृद्ध की हालत इससे बिलकुल भिन्न नहीं है । पुलिस ने उसका बायें हाथ गोली मारकर बेकार कर दिया, दायें हाथ जुलूसवालों ने तोड दिया और रास्ते पर खडे तमाशबीनों के ढेलों से उसका सिर फूट गया है । यह वृद्ध सच्चाई को कितने निर्मम रूप में हमारे सामने रखते हैं - "ये खून को सस्ता समझते हैं ----- ये केवल एक आग पैदा करते हैं ---- आँच नहीं ----- यह केवल आवाज़ पैदा करते हैं हरकत नहीं ----- पुलिस के पास कोई काम नहीं है ----- उसके पास केवल बारूद है, गोलियाँ हैं, लेकिन दृष्टि नहीं है ----- इनके पास बोलियाँ है लेकिन बोलियों के साथ साथ आत्मा नहीं है ।"[1]

नैतिक मूल्यों का हनन

वर्तमान युग में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है । हमारी पुरानी मान्यतायें बदल गयी हैं । मनुष्य के सामने सब कुछ मूल्यहीन हो गया है । निरन्तर बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण एवं मशीनीकरण ने मानव और मशीन के बीच के अन्तर को मिटा दिया । वैज्ञानिक चरमोत्कर्ष के इस युग में हम इस

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 82

नंगे तथ्य के गवाही बनते जा रहे हैं कि भौतिक उन्नति से सौगुनी बढ़कर आध्यात्मिक अवनति होती जा रही है और इनसानियत बिलकुल धराशायी हो गयी है ।

कहीं से भी कुछ न कुछ लेने के लिए, दूसरों पर अत्याचार करने के लिए आज का मनुष्य हिचकता नहीं ।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने नाटक में अल जलूल संवादों के माध्यम से इसकी ओर संकेत किया है कि आदमी, आदमी नहीं रह गया है । इनसान अपना इनसानियत खो गया है । मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है । आदमी दिल और जूते में कोई फर्क नहीं देखता है । मनुष्य की हार्दिकता का कोई मूल्य नहीं है । हृदय या दिल का स्थान जूते के समान निम्न स्तर का है । मनुष्य धार्मिक ग्रन्थ और जासूसी किताब में कोई फर्क नहीं देखता है ।

समाज में धोखेबाजी का बोलबाला है । सभी कार्य में मनुष्य को धोखा खाना पड़ता है । ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में धोखेबाजी चल रही है । ज़िन्दगी की अभावग्रस्तता से बिलकुल आहत होकर अनैतिक राहों को अपनाने के लिए अभिशाप्त "क" विष पीकर खुदकुशी करना चाहता है, लेकिन उसका प्रयत्न व्यर्थ निकलता है । पीने के लिए रखे गये ज़हर के स्थान पर पानी भरने के कारण "क" को यहाँ भी धोखा खाना पड़ता है । यहाँ "क" का कथन

उल्लेखनीय है - "तमाम ज़िन्दगी जीने की कोशिश में मैं ठगा गया हूँ। ज़िन्दगी की हर कोशिश एक उम्मीद बनकर आयी और चली गयी। अब आखिरी कोशिश मौत की थी ----- क्या इसमें भी मैं ठगा गया हूँ?"[1]

प्रेम के क्षेत्र में भी मूल्यों की गिरावट आ गयी है। निस्वार्थ प्रेम देखने को नहीं मिलता है। नाटक में मूल्य गिर जाने के कारण प्रेमिका की दुर्दनाक स्थिति का चित्रण है। लड़की के पिताजी शहर के सबसे पुराने मास्टरजी हैं। इस शहर का कलक्टर, कोतवाल, मिल मैनेजर आदि उनका पढ़ाया हुआ है और सब उनकी इज़्ज़त करते हैं। लोगों ने पहले लड़की को घर दिया और बाद में औरत बनाकर घर वापस ले लिया। पुराने समय लोग मास्टरजी का आदर करते हैं और उनकी बेटी का भी। लेकिन आज मूल्य बदल गया है, लोग मास्टरजी का और उनकी बेटी का अपमान करने में तत्पर हो जाते हैं। लड़का का यह कथन भी नारी के बदलते स्वरूप को व्यक्त करता है - "वही पुरानी किस्मवाली -- पति की पूजा करनेवाली।"[2]

मनुष्य कभी कभी अपनी अन्तरात्मा की पुकार को अनसुना कर देता है। इसका शिकार है नाटक की औरत। इसी कारण से ही औरत ने एक दिन आत्मा की हत्या की है। वह स्वयं कहती है - "एक दिन मैं ने हत्या

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 105

2. - पृ. 126

कर ही दी ।"[1] उसकी स्थिति ने उसे आत्मा की हत्या करने के लिए विवश कर दिया । ज़िन्दाबाद, औरत का पहला पति था । वह सिर्फ जिस्म का भूखा था । जिस्म की भूख खतम होने पर वह रोज़ उसे मारता-पीटता था । जब कभी वह विरोध करने चलती तो इसी आत्मा की चीज़ उसे ऐसा करने से रोकती । औरत के उस खटाल में और एक व्यक्ति रहता था । उसका नाम तक वह नहीं जानती । वह कई बार उससे प्रेम करना चाहता था, उसने उसे ज़रा भी मुँह नहीं लगाया । लेकिन एक दिन जब ज़िन्दाबाद ने उसे बहुत पीटकर बेहोशी की हालत में छोड़कर चला गया तब वह आया । उसने औरत के जख्मों को सहलाकर उसके शरीर की मालिश की । फिर उसने प्रेम करने का आग्रह प्रकट किया तो वह उससे प्रेम करने लगी । और ज़िन्दाबाद ने उस दिन से उसका साथ छोड दिया ।

यान्त्रिकता के इस युग के प्रेम अपना अर्थ खो चुका, उसकी सारी पवित्रता तो फट गई । नाटक का लड़का स्नेह के लिए भूखा है । उसने बताया है - "मुझे खानेवाली भूख नहीं लगी है, मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए । वही प्रेम - आत्मा का आत्मा से मिलन ।"[2] यह वर्तमान युग के स्नेह के लिए तडपते आत्मा की पुकार है ।

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 96
2. - पृ. 117

जीवन की निरर्थकता

आज का मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक विवशता से जी रहा है। निरर्थकता से पूर्ण जीवन में मनुष्य का कोई लक्ष्य नहीं है। मशीनी ज़िन्दगी ने उसको बिलकुल पराधीन कर दिया। मनुष्य का जीवन अनिश्चित और संकटग्रस्त है। उसने नैतिकता को कोई स्थान नहीं दिया है। आदमी हमेशा मुखौटा धारण करके घूम रहा है। उसका आन्तरिक और बाह्य यथार्थ भिन्न भिन्न हैं और दोनों की टकराहट से जीवन में विसंगतियाँ जन्म लेती हैं।

"रोशनी एक नदी है" में लक्ष्मीकांत वर्मा ने दो ही मुख्य पात्र रखे हैं - लड़का और लडकी। वही स्त्री-पुरुष और नीरद-कुमकुम के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इनके माध्यम से उन्होंने मनुष्य के अनश्चित, संकटग्रस्त जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मनुष्य परम पिता की कृपा से यहाँ आ गये हैं, उसकी प्रार्थना केलिए भेजे गये हैं। अत: आदमी को जीवन बिताना पड़ता है। जीने की विवशता नाटक के पात्र - ब्रेक के कथन से स्पष्ट है - "मैं चल रहा हूँ, यह सड़क, यह पेड -------- यह लैम्प पोस्ट, तुम, यह वह सभी तो चल रहे हैं ----- तुम सब चल रहे हो इसलिए मैं भी चल रहा हूँ।"[1] दुनिया में सारा कार्य चल रहे हैं, वैसे ही मनुष्य भी अपना जीवन बिता रहे हैं। उनका कोई लक्ष्य नहीं है, वह यों ही अपनी ज़िन्दगी बिता रहो है।

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 8-9

इस निरर्थक जीवन में सर्वत्र भीड ही भीड दिखाई पड़ती है, शोर ही शोर सुनाई पड़ता है । जुलूस दैनन्दिन कार्य हो गया है । जुलूस में भी आवाज़ें साफ नहीं आतीं । सबका सब गड्डमड्ड हो जाता है । नारा लगानेवालों को आवाज़ न सुनाई देती है और न नारा दुहरानेवालों की । जुलूस एक दिखावा मात्र है । वर्माजी ने मनुष्य की ज़िन्दगी को व्यर्थ जुलूस के समान अर्थहीन, अस्तित्वहीन सिद्ध किया है ।

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में विवश है । आदमी को रहने के लिए मकान मिलना कठिन है । इस विशाल राज्य के अधिकांश लोगों को भी मकान नहीं है । वे सडक पर ही रहते हैं - जैसे पेड रहते हैं ----- लैम्पपोस्ट रहते हैं, कूडे के डिब्बे रहते हैं, कुत्ते रहते हैं ।

आज आदमी बनना बड़ा कठिन हो गया है, "क्योंकि आदमी बनने में हम महज़ देखनेवाले नहीं रहेंगे, हमें अनुभव करना पडेगा, हरकत करनी पडेगी और अब हम अनुभव नहीं करना चाहते ------ हरकत नहीं करना चाहते ----- महज़ देखना चाहते हैं, महज़ सुनना चाहते हैं ---- सुनना ---- सुनना ----- महज़ सुनना ----- सिर्फ सुनते रहना ------ ।" [1]
मनुष्य को दिन-ब-दिन कई अनाचारों अत्याचारों का सामना करना पड़ता है । चाहने पर भी इसके बदले मनुष्य कुछ नहीं कर सकते । आधुनिक मानव की विवशता यहाँ स्पष्ट है ।

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 21

ठोकरें खाना तो आज फैशन हो गया है। ठोकरें खाने पर भी मनुष्य, बदले कुछ नहीं कर सकते। वर्माजी "दूसरा" नामक पात्र के मुँह से कहलाते हैं - "हम भी ठोकर खाते हैं, तुम भी ठोकर खाते हो ---- - सारा ज़माना ही ठोकर खा रहा है।" [1]

लक्ष्मीकांत वर्मा ने महानगरीय जीवन की तुलना महावन से की है। वहाँ की स्थिति औरत की वाणी से स्पष्ट हो जाती है - "यह महावन है ---- वैसा ही महानगर होता है ----- आदमी के ऊपर आदमी, मकान के ऊपर मकान, खाने के ऊपर खाना -----।" [2] उसी प्रकार महानगर में "आदमियों का राजा चौबीस घण्टे शिकार की ताक में रहता है।" [3] आदमी हमेशा शिकार करते रहते हैं, लेकिन उन्हें कोई समाधान नहीं मिलता है।

ज़ाहिर है कि लक्ष्मीकांत वर्मा का यह नाटक ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों को जुटा पाने में असमर्थ, भूख, बेकारी, बुढापे जैसे सवालों से जूझते हुए निम्न मध्यवर्गीय आदमी पर केन्द्रित है। उस आदमी की विवशता एवं असन्तोष को नाटककार ने असंगत नाट्य शिल्प के द्वारा उभारा है। समकालीन ज़िन्दगी के दबावों के कारण पशु से भी बदतर जीवन बितानेवाले,

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 31
2. - पृ. 68
3. - पृ. 69

अमानवीय स्थितियों को झेलनेवाले आदमी की यन्त्रणा एवं छटपटाहट को भी मूर्त किया है । राजनीति, जीवन की मूल्यहीनता एवं शैतानियत ने आम आदमी की ज़िन्दगी को किस हद तक विषाक्त एवं सडांधयुक्त बना दिया, इसका सफल अंकन भी नाटक में परखा जा सकता है ।

पौराणिक कलेवर में समसामयिक समस्या

"ठहरी हुई ज़िन्दगी"

"ठहरी हुई ज़िन्दगी" के सृजन के मूल में नाटककार के मन का कुतूहल काम कर रहा है कि आज की परिस्थिति में यदि हमारे पुराणों के पात्र डाल दिये जायें तो वह कैसा आचरण करेंगे ? अतः उन्होंने राम और रावण को लोक शैली की लिला को सीधे सडक पर लाकर खडा कर दिया । उनकी ही वाणी में, "अब यहाँ राम भी है, रावण भी, सीता भी, मन्दोदरी भी, दशरथ भी हैं और रघुवीरा भी और साथ है सडक का आदमी भी, बाज़ार, हाट, शोरगुल, स्टेशन, प्लेटफार्म, म्युनिसिपल टिन शेड और उससे उपजी हुई विसंगतियाँ भी । इन सब के बीच ही मुझे भी अपने राम की तलाश है ।" [1]

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लेखक वचन - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 6

बैजू पंडित का बेटा और सिराज पंडित का बेटा - दोनों गाँव की रामलीला में राम और रावण का पार्ट अदा कर रहे हैं। लेकिन रामलीला को अधूरा छोडकर वे दोनों गाँव से भागकर शहर के रेलवे स्टेशन पर पहुँचते हैं। उनका उद्देश्य बंबई जाकर फिल्म केलिए अभिनय करना था। राम-रावण के वेश में होने के कारण दोनों को अनेक मुसीबतें झेलनी पडीं। लोग उन्हें राम समझकर उपासना करते हैं ताकि वे एक बीडी भी न पी सकते। स्टेशन पर उनका परिचय लेटा आदमी, बेवकूफ अखबारवाला, प्रेम मिलन चायवाला आदि से होता है। कुछ समय के बाद उनकी खोज में सीता और मन्दोदरी भी आयी हैं। लेकिन रावण का ग्यारहवाँ सिर ही वहाँ दिखाई पडता था। और लंका कांड में माल्यवन्त की भूमिका निभानेवाला नल नील भी वहाँ था। कुछ समय बाद रामलीला का जोकर - गुद्दू आता है जिससे पता चला कि दर्शक गण राम - रावण को न देखने के कारण, लंका कांड प्रारंभ न होने के कारण शोर गुल मचा रहे हैं। नाटक के संचालक और दर्शक गण एक साथ मिलकर उनकी खोज में आगे बढ़ रहे हैं। गुद्दू तो उनके बीच से बच गया है। वह आकर उन्हें नाटक खेलने केलिए प्रेरित करता है। तब वहाँ आनेवाला एक बेकार नवयुवक राम का पार्ट खेलने केलिए तैयार हो गया है। इसी समय गाडियाँ प्लैटफार्म पर रुक जाती हैं क्योंकि लाइन पर भीड खडी हो गई है और आवाज़ दी कि राम को बंबई नहीं जाने देंगी। जनता की भीड बढ़ गयी, आवाज़ भी। जनता के सामने गुद्दू, नाटक शुरू होने की

सूचना देता है । तब राम आकर शांत गंभीर मुद्रा में खड़ा हो जाता है । जनता चुपचाप नाटक देख रही है । लेकिन जब जनता समझ गयी कि यह उनके लीलावाला राम नहीं तब उन्हें घेर लेती है, मुकुट छीन लेती है, कपड़े फेंक देती है और राम को साथ लेकर जाती है ।

अखबारवाला, लेटा आदमी आदि के सामने प्लैटफार्म पर मन्दोदरी और सीता भी बंबईवाली गाड़ी की प्रतीक्षा में हैं । वृद्ध स्टेशन मास्टर ने उन्हें सूचना दी कि बंबईवाली गाड़ी पर चढ़ने केलिए अगले स्टेशन जाना है । अगले स्टेशन के पास एक मिनिस्टर का घर है ताकि गाड़ी वहाँ रुक जाती है । लोग इस स्टेशन के भीतर शोरगुल मचा रहे हैं । गाड़ियाँ वहाँ रुकने केलिए शोर मचाते हैं, आवाज़ उठाते हैं । सभी नल नील ने देखा कि भीड के आगे आगे राम ही है । राम आगे चलकर भीड को प्रेरणा देते रहते हैं । नेपथ्य से राम की आवाज़ के साथ सरकारी एलान भी सुनाई पडती है कि "हर खास और आम को आगाह किया जाता है कि बिरजू वल्द बैजू पंडित जो लीला में राम का पार्ट करता है, जनता में राम के नाम पर बदअमनी फैलाता है, अगर कोई भी आदमी उसके साथ कुछ भी साजिश करता पाया जायेगा, उसको कैद कर लिया जायेगा - -" [1] राम और जनता की आवाज़ अधिक बढ़ती जा रही है । जनता और सरकार के बीच संघर्ष भी हुआ,

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 97

राम को घायल होना पड़ता है । शहर से आनेवाला रावण भी दुःखी है । उसका वेश और रूप देखकर लोग उस पर व्यंग्य करते हैं, ढेले मारते हैं । अंत में पुलिस आकर बैजू पंडित के बेटे और सिराज पंडित के बेटे को गिरफ्तार करके चली गयी । राम पर इस स्टेशन में जनता को विद्रोह करने केलिए प्रेरित करने का दोष आरोपित किया गया है और रावण पर जनता को बर्गला रहने का दोष ।

राम की अनुपस्थिति में राम की भूमिका अदा करने केलिए तैयार होकर आये बेकार युवक बाद में जनता के साथ गाडी रोकने केलिए गया था और वह गोली का शिकार हो गया ।

राम-रावण का चिरन्तन संघर्ष

लक्ष्मीकांत वर्मा ने पौराणिक कलेवर में युग की पीडा और संवेदना की अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है । राम-रावण का संघर्ष एक चिरन्तन संघर्ष है । रावण हमेशा जो भी युद्ध करता था उसे वह अपनी जन्मभूमि और घर दोनों से दूर रखता था, लेकिन आज की परिस्थिति तो रावण की स्थिति से भी खराब है । आज हम सबका युद्ध बाहर का नहीं रह गया है- वह बहुत कुछ भीतर का हो गया है । युद्ध ने आज विस्तार पा लिया है । हम बाहर नहीं अपने भीतर से ही लडने में परेशान हैं । भीतर की लड़ाई

यानी वह घर की लड़ाई भी हो गई है । युद्ध आज घर में है और ऐसा युद्ध है जिसे लेकर हर घर में राम अवतरित हो रहा है और फिर भी हमारा अपना राक्षस मर नहीं रहा है । रावण की लंका आज भी जन्म लेती रहती है जो हमारा रक्त चाहती है । आज हमारे बीच जो रावण हैं वे इतने व्यापक और गहराई के साथ पूरे परिवेश में व्याप्त हैं कि उनको मारना भी आसान नहीं जिसके संबंध में नाटककार ने ठीक ही कहा है शायद इतना कठिन है जितना लकीर खींचकर पानी को दो हिस्सों में बाँटना ।

रावणत्व नष्ट करना रावण के लिए असंभव है वैसे राम के लिए रामत्व खो जाना । रामनामी का वचन यह स्पष्ट करता है - "राम राम ही रहेंगे और रावण रावण ही रहेगा ।" [1] रावण इस से सहमत नहीं है, कहता है - मान लो लीला में रावण का यह ग्यारहवाँ सिर राम पहन लें और राम का जटाजूट और जोगिया वस्त्र मैं पहन लूँ, तो विश्वास रखो मैं जो कुछ भी बोलूँगा वह रावण की ही वाणी होगी ।" [2]

हर व्यक्ति के भीतर रावणत्व अन्तर्लीन है । रावण की ही वाणी में - "कलियुग में हमेशा यही होता आया है - - रावण का ग्यारहवाँ सिर अब सब के सिर के साथ जुड़ेगा और हर व्यक्ति राम की वेश - भूषा में भी रावण की ही बात करेगा - - यही होगा -- -- यही होगा ।" [3]

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 19
2. - पृ. 19
3. - पृ. 19-20

राम ने रावण के पाशविक और कृत्रिम सिरों को काटा है । राम के अनुसार - "रावण कर्म से राक्षस है, बुद्धि से पंडित और विद्वान है - यदि आपको मानना हो तो गधेवाले सिर को छोड़कर उसके शेष सिरों की बात मानिये -- मैं ने केवल उन सिरों को काटा है जो बुद्धि प्रधान होते हुए भी कहीं पाशविक और कृत्रिम हो गये थे ।" [1]

मनुष्य से उसकी पाशविक प्रवृत्ति दूर करना आसान कार्य नहीं है । इसलिए रावण ने राम से यह व्यर्थ प्रयास छोड़ने को कहा है - "मैं हमेशा जिन्दा था राम -- कभी उस धोबी के रूप में कभी और किसी रूप में -- इसलिए मुझे मारने की या मेरे ग्यारहवें सिर को काटने की कोशिश छोडो--।" [2] "रामायण" के "धोबी" की ओर यहाँ संकेत है ।

यहाँ राम और रावण के वेष में व्यक्ति जी रहे हैं । लेकिन जनता की माँग है - "हम जनता हैं --- हमें राम और रावण दोनों चाहिए---।" [3]

नाटककार ने शक्तिशाली शासक को रावण के रूप में दिखाया है । अपने अधिकारों को बनाये रखने के लिए संघर्ष करनेवाली आम जनता को अंत में

1. ठहरी हुई जिन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 22
2. - पृ. 150
3. - पृ. 154

सत्ता के सामने सिर गवाँना पडता है । सत्ता और प्रजा के बीच में होने-वाले संघर्ष में हमेशा सत्ता की ही विजय होती है । अखबारवाला, चायवाला आदि को पता चला कि जिस स्टेशन के बल पर उन्होंने अपनी जीविका चलाया है उस स्टेशन पर कल से गाडी नहीं रुकेगी । क्योंकि अगले स्टेशन पर एक मिनिस्टर का घर होने से गाडी कल से वहाँ रुकनी पडेगी । जनता स्टेशन पर गाडी रुकने केलिए पटरी पर लेटकर, भूख हडताल करके नारे लगाती रहती हैं । उन को घबराने केलिए, भगाने केलिए फयरिंग चलायी । जनता और पुलिस के बीच की लडाई में कई आदमियों की जानें गयीं, बहुत खून खराबा हुआ । फिर भी गाडी जनता को बिना लिये ही चली गयी । चीखती, चिल्लाती, हाथ उठाती जनता केलिए, अपना खाली पेट बजाती वापस आने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था ।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने मुख्य रूप से यही बताया है कि राम रावण युद्ध के वर्षों के बीत जाने के बाद भी लंका कांड अब भी जारी है । लेकिन एक अन्तर है कि आज का लंका कांड अधूरा है क्योंकि न बन्दर - भालू ही मिल रहे हैं और न समुद्र पर सेतु ही बन पा रहा है ।

<u>छिछली राजनीति की चाल</u>

आज राजनीतिक दलों का बहुत बडा पक्ष गधों के हाथ में है । राज-नीति के उच्च पदों पर आज मूर्ख लोग ही विराजमान हैं । वे लोग अपने

प्रियजनों की भाषा बोलेंगे, उन लोगों की मुद्रायें स्वीकारेंगे । ऐसे नेताओं के कारण समाज में लंका का राज सिद्धान्त ही चलेगा । नाटक के रावण ने इसी मान्यता को स्पष्ट किया है -- "राजनीति का एक बहुत बडा पक्ष गधों के हाथ में होगा -- -- वह मेरी ही भाषा बोलेंगे --- मेरी ही मुद्रायें स्वीकारेंगे -- यानी लंका का राज सिद्धान्त ही चलेगा ।" [1] यहाँ लक्ष्मीकांत वर्मा राजनीति की उस स्थिति की ओर इशारा करते हैं जिसमें मनुष्य अपने अपने स्वार्थ लाभ केलिए दूसरों की हत्या भी करने में लज्जित नहीं होते ।

नेता लोग अपनी अपनी सुविधा केलिए अनेक कार्य कर रहे हैं । वृद्ध की वाणी स्पष्ट करती है - "इसके आगेवाले स्टेशन पर रेलमंत्री का घर है -- -- उनकी सुविधा केलिए वह फ्लैग स्टेशन चालू कर दिया गया गया है और यह चालू स्टेशन फ्लैग स्टेशन हो गया है ----" [2] ये लोग अपने स्वार्थ के सामने दूसरों के नष्ट की चिन्ता नहीं रखते हैं,उनका विचार अपनी सुविधा का है ।

"सरकार हमेशा मूर्खों की होती है --- क्योंकि वह शासक होती है --- शासन का बुद्धि से नहीं शक्ति से संबंध है ।" [3] वृद्ध ने सरकार पर

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 14
2. - पृ. 66
3. - पृ. 67

तीखा व्यंग्य किया है यहाँ । उनके मत में शासक होने के कारण सरकार मूर्खों की है और शासन का संबंध शक्ति से है । उनमें बुद्धि और हृदय का कोई स्थान नहीं है । जो भी हो शासन करना ही उनका लक्ष्य रह गया । शासन वे शक्ति से चलाते हैं । अतः उनका व्यवहार भी मूर्खों के समान हो जाता है ।

आज एक मिनिस्टर पैदा करना आसान कार्य हो गया है । वृद्ध के कहने में - "अगर इन सबसे आसान वहाँ एक मिनिस्टर पैदा करना है तो कर लो -- काम बन जायेगा ---- वही करो ----" [1] हमें भीड से बचने केलिए राम का वेष धारण करना पडता है और मिनिस्टर को देखने पर गाडी भी रुकेगी । लोगों का ध्यान राम पर नहीं, मिनिस्टर पर है । इसलिए मन्दोदरी बताती है - "अजीब सवाल है -- अगर भीड से बचना हो तो एक राम ढूँढ निकालो और गाडी यहाँ रुकवाना हो तो मिनिस्टर पैदा करो ।" [2]

नेता गण हमेशा हुकूम देते रहते हैं, उन्हें शिकायतें सुनने का अवकाश नहीं है । वृद्ध भी यही बात बताते हैं - "यह ज़माना हुकूमत करने का है -- -- फरियाद सुनने का नहीं -- --" [3] वृद्ध आगे इसका ज़ोर देते हैं -

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 68
2.
3. - पृ. 71

"जितनी सरकारें होती हैं उनके पास हाथ होते हैं - - कान और आँख उनके नहीं होती - -"[1] आज सरकारों का काम केवल शासन करना रह गया है शासन कार्य चलाने के लिए मात्र हाथों की आवश्यकता है । दूसरों पर ध्यान देने का विचार उनमें नहीं है । जनता की प्रतिक्रिया के बारे में वे सोचते नहीं । जनता की वाणी पर वे ध्यान नहीं देते हैं ।

सरकार भी समयानुसार वेश बदलती रहती है । अपने स्वार्थलाभ में जिसकी सहायता मिलती है उसके लिए सरकार को कभी कभी राम का और कभी कभी रावण का वेष धारण करना पडता है । अत: वृद्ध कहते हैं - "सरकार सब कुछ हो सकती है - - चाहे तो राम भी, चाहे तो रावण भी

शासक की कठपुतली

समाज के शासक निरन्तर बदलते रहते हैं । फिर भी उनकी नीति में कोई अन्तर नहीं । अपना अधिकार जमाना और जनता को, अपना हुकुम पालनेवाला बनाना उनका लक्ष्य रह गया । यह शासक वर्ग की नीति है । नाटक का वृद्ध शासन के कुचक्रों में फँसनेवाले आम आदमी का प्रतिनिधि है । उनका चित्रण नाटककार ने एक स्टेशन मास्टर के रूप में किया है । स्टेशन पर गाडियाँ आती हैं, रुकती हैं, जाती हैं । गाडियों के आने पर झण्डा

1. ठहरी हुई जिन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 71
2. - पृ. 72

दिखाना उनका काम है । उनके माध्यम से शासकों की आज्ञा का पालन करने के लिए विवश मानव का चित्रण है । वृद्ध के ही शब्दों में -

"सुना है यहाँ सब कुछ होता है - - -
आदमी भी राक्षस और राक्षस भी आदमी ----
तकदीरों की भी कीमतें होती हैं - - -
तदबीरों पर बहसें - - -
वहाँ गया था उस देश में - - अजीब से लोग थे
काले, कुरूप, गन्दे, मटमैले, कोयले के टुकड़े बीनते
गोबर से अनाज और रोशनी से अन्धेरा निकालते देखता हूँ ----
इस लम्बी सपाट चौपाटी पर कहीं भी आदमी नहीं दिखते
कितना भयंकर है यहाँ लगना आदमी का जीव, जन्तु, पशु, कुत्ते,
बिल्लियाँ - - - - - - - - ।" [1]

दूसरों की इशारों पर चलना उनकी नियति हो गयी है - "मुझे तो हुक्म हुआ है तुम केवल सिगनल की लाल रोशनी दिखाओ और मैं दिखा रहा हूँ - - -" [2] वृद्ध समाज के दफ्तरी बाबुओं का भी प्रतिनिधि है । ऊँचे पद पर विराजमान अधिकारियों के आज्ञानुवर्ती बनने के लिए मजबूर बने मनुष्य का प्रतीक है यह वृद्ध ।

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 65
2. - पृ. 92

स्वतंत्रता प्राप्ति के लम्बे चालीस वर्षों के अन्तर कई शासक और शासन अधिकार में आ गये हैं। लेकिन यहाँ की आम जनता की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ गया है। उनकी स्थिति पुरानी जैसी है। नाटक के वृद्ध का जीवन इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है जो उनके शब्दों से स्पष्ट है :-

"दुनिया घिसट - घिसट कर चलती
कभी नहीं गति बदली इसकी - - -
बीत गये चालीस वर्ष बस यही देखते
सभी गाड़ियों को सिगनल दे पास कराते
बहुत थक गया हूँ मैं शायद
लेकिन खड़ा हुआ हूँ लैम्प पोस्ट सा" [1]

बेकारी के शिकार

आधुनिक समाज में बेकारी, अभावग्रस्तता, भूख आदि से संत्रस्त अनेक मनुष्य हैं। नाटक के नवयुवक, सीता आदि ऐसे पात्र हैं। रामलीला में राम की अनुपस्थिति की जानकारी मिलने पर नवयुवक राम का पार्ट करने के लिए तैयार हो जाता है। उस बेकार युवक अभावग्रस्तता से बुरी तरह आहत है। राम का वेष धारण करने के बाद वह पैसा मिलने की प्रतीक्षा में सिग्रेट पीता है। मन्दोदरी राम के सिग्रेट पीने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य

1. ठहरी हुई ज़िन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 156

करती है तो उसका उत्तर है - "जिसका पेट भरा रहता है वह सिग्रेट नहीं पीता है। लेकिन जो भूखा है - भूख से जिसकी आंतें ऐंठी हैं वह हवा से लेकर सिग्रेट तक पीता है।"[1] रामलीला के अवसर पर जब जनता उसकी वास्तविक पहचान करती है और उस पर शोर मचाती है तब उसने अपनी विवशता के कारण ही सारी जनता के सामने अपनी कहानी प्रस्तुत की है - "मैं इस युग की दरिद्रता हूँ - - उसकी टूटी आकांक्षाओं और फटे स्वप्नों का प्रतिनिधि हूँ - - मेरा यह टूटा मुकुट, यह फटा पीताम्बर, यह नकली गहनों का मटमैला श्रृंगार इस युग का है - - मैं ने इस लीला में भाग लेने का निर्णय सात उपवासों के बाद लिया है - - - मुझे आज इस अभिनय के बाद पेट भर भोजन मिलेगा - - - सुनो - - - सुनो - - ।"[2] यहाँ भी उनकी प्रतीक्षा टूट निकली है। जनता से उपेक्षित और पीड़ित इस युवक को अंत में जनता के साथ मिलकर जनता गाड़ी रोकने के प्रयास में पुलिस की गोलियों का शिकार बनना पड़ता है। नवयुवक शेखर एम. ए. पास होने के बाद नौकरी की खोज में घूम रहा था। रोज़ी पूछकर निराश वह युवक फिर रोटी की खोज करने लगा। उसी खोज में एक दिन सीता मिल गई। वह भी एम. ए. पास होनेवाली लड़की है। दफ्तर का रिटायर्ड बाबू की बेटी थी। वहाँ शहर के बाहर की स्लम्स में रहता था। पिताजी मर गया, तो लाश उठाने के लिए उसे कोई नहीं मिला। मुर्दा ढोनेवाली गाड़ी ने भी उस गरीब की लाश ढोने से

1. ठहरी हुई जिन्दगी - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 37
2. - पृ. 47

इनकार कर दिया । उस समय युवक को देखकर सीता सहायता मांगती है । दोनों ने लाश ढोकर घाट तक पहुँचा दिया । पिता की लाश ढोते वक्त भी सीता की आँखों से आँसू की एक बूँद भी नहीं ढुलक रही थी क्योंकि ज़िन्दगी में तब तक पीडाओं को मौन पीते पीते उसकी अश्रुओं का स्रोत ही सूख चुका था । अत: लक्ष्मीकांत वर्मा ने ऐसे पात्रों को चुनते हुए ज़िन्दगी की अभावग्रस्तता पर ज़ोर दिया है ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस नाटक में अतीतपुराण और वर्तमान को आमने सामने खडा कर दिया है और पौराणिक कथ्य की समसामयिक व्याख्या की है । ऐसे होते हुए भी नाटक का शीर्षक "ठहरी हुई ज़िन्दगी" ही रखा गया है । इसका एक विशेष कारण है । लेखक ने खुद महसूस किया है कि आदमी अपने चारों ओर विसंगतियों को देखता रहता है, लेकिन उसके विरुद्ध कुछ भी करने की क्षमता उसमें नहीं । उन्हें सारा अन्याय भोगना पडता है । मौन धारण करना उनकी नियती हो गयी है । अन्याय, अत्याचार आदि की ताण्डव - लीला का दर्शक बन जाना उनका सबसे बडा अभिशाप है । अत: पूर्ण रूप से प्रतिक्रियाहीन मानव निष्क्रिय होकर ठहर जाने केलिए विवश हो जाता है । वह नितान्त, निष्क्रिय, निरीह, विपन्न हो जाता है । यों ज़िन्दगी में बाधा आ जाने से ज़िन्दगी ठहरी हुई बनती है ।

कथ्य के भिन्न धरातल

विसंगत समाज की तस्वीर खींचने के लिए नाटककारों को परंपरागत मान्यतायें तोड़नी पड़ती है । वे कथ्य को कोई महत्व नहीं देते हैं । उनका लक्ष्य समाज में फैली हुई असंगतियों को प्रस्तुत करना ही रह गया है । उन्होंने एक नाटक में अनेक बातों की अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है ताकि कथ्य यत्र तत्र बिखरी हुई दिखाई पड़ता है । नाटक जहाँ से प्रारम्भ होता है वहीं समाप्त हो जाता है । लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटकों में भी ये सारी विशेषतायें देख सकती है । उनके नाटकों का कोई सुसंगठित कथानक नहीं होता । क्रमहीन कथ्य उनकी विशेषता है । वे नाटकों में कथ्य की सूक्ष्म झाँकी ही देते हैं । उन्होंने अभावग्रस्तता, मूल्यहीनता, जीने की विवशता, राजनीतिक खोखलेपन, भ्रष्टाचार आदि को अपने नाटकों का आधार माना है । उनके नाटकों में कथ्य का प्रारंभ होने की जगह में ही समाप्ति भी होती है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक "रोशनी एक नदी है" विसंगति से भरपूर समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । वे इस नाटक में अनेक बातों को प्रस्तुत करना चाहते हैं । डॉ. रामफेर त्रिपाठी ने लिखा है - "इस कृति

में उन्होंने अनेक नये प्रश्नों को उठाया है और उनके समाधान खोजने का प्रयत्न भी किया है ।"[1] इस में नाटककार ने ज़रूरतों की पूर्ति के लिए असमर्थ लोगों की विवशता का चित्रण किया है । साथ ही राजनीतिक क्षेत्र के घिनौने वातावरण को प्रस्तुत किया है और मूल्यच्युत समाज का चित्रण भी ।

"ठहरी हुई ज़िन्दगी" में पौराणिक पात्रों के माध्यम से राजनीतिक खोखलेपन, बेकारी के शिकार बने और शासकों की कठपुतली बने मनुष्य का चित्रण आदि को स्थान दिया है । प्रतिष्ठित राम कथा को सडक पर लाकर प्रस्तुत करने में लेखक का उद्देश्य राम कथा को कालजयी और राम जैसे पात्रों को कालातीत सिद्ध करना है ।

"तिन्दुवुलम" में उन्होंने धार्मिक अनाचारों पर आघात पहुँचाने का प्रयास किया है । इसमें देवदासी प्रथा से अभिशाप्त पद्मावती की करुण कहानी है, धार्मिक अनाचारों के प्रति विद्रोह करने के लिए आगे आनेवाले तिन्दुवुलम और नचिकेता की कहानी है, कटु राजनीति के क्षेत्र में कोमलता भरनेवाले लक्ष्मणसेन की कहानी है । इसमें विवेकहीन धार्मिक आस्था का स्वर ही गूँजता है ।

1. नये पुराने परिवेश - डा. रामफेर त्रिपाठी - पृ. 218

कथानक की प्रस्तुति की दृष्टि से देखने पर गिरीश रस्तोगी का मत ठीक लगता है - "पहले नाटककार नाट्यरचना में अपनी बात शब्दों द्वारा, पात्रों के संवादों द्वारा कहता था । अब नये नये नाटक में स्थितियाँ, उनका चुनाव, उनका विरोध - टकराहट, घटनायें - दुर्घटनायें बहुत कुछ कह जाती है और ज़्यादा सांकेतिक, ज़्यादा सक्रिय और नाटकीय ढंग से कह जाती है ।" [1] स्पष्ट है कि उनके प्रारंभिक नाटक "तिन्दुपुलम" में कथ्य सीधे शब्दों, संवादों द्वारा स्पष्ट करते है । "रोशनी एक नदी है", और "ठहरी हुई जिन्दगी" में कथ्य की बिखरी पडी सूक्ष्म झांकी ही देते हैं । पूरे कथ्य बेतुके या ऊल-जलूल संवादों द्वारा प्रस्तुत करते हैं ।

पात्र योजना

विसंगत नाटकों में चरित्रों को पुराने नाटकों के समान आदर्शपुरुष या गुणान्वित व्यक्ति के रूप में नहीं चित्रित करते हैं । परंपरा के जैसे नायक, नायिका या खलनायक नहीं होते । पात्र साधारण आदमी हो सकता है । निम्न मध्यवर्गीय लोगों को पात्रों का स्थान देते हैं । मूल्यहीन समाज के ऊबे, थके, निराश व्यक्ति भी पात्र हो सकता है । पात्रों की मानसिकता लक्ष्यहीन समाज की है । विसंगत नाटक व्यक्ति को प्रधानता नहीं देते हैं । नाटक में सामाजिक अभिव्यक्ति ही होती है ।

1. समकालीन हिन्दी नाटककार - गिरीश रस्तोगी - पृ. 169-170

समाज के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्ति को चित्रित करते हैं। नाटक के पात्रों की समस्यायें समाज के प्रत्येक व्यक्ति केलिए लागू हो सकता है। इसलिए नाटककार पात्रों केलिए व्यक्तिवाचक संज्ञा के बदले जातिवाचक संज्ञा का अधिक प्रयोग करते हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा के अधिकांश पात्र इस प्रकार के हैं। "रोशनी एक नदी है", "ठहरी हुई ज़िन्दगी", आदि के पात्र इसी कोटि में आनेवाले हैं। "रोशनी एक नदी है" के पात्र कुमकुम और नीरद नाटक में विभिन्न भूमिकायें निभाते हैं। नाटक के लड़का - लड़की, मर्द और औरत - ये ही हैं। अभावग्रस्तता से पीड़ित ज़िन्दगी का चित्रण मर्द और औरत के माध्यम से की गयी है। कुमकुम के परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रतिदिन की ज़रूरतों से वंचित आम जनता की ओर संकेत करता है। गरीबी दूर करने की प्रतिज्ञा की आड़ में अपनी जेब भरनेवाले लोगों केलिए "नेताजी" का चित्रण किया है। सस्ती होती मानव ज़िन्दगी की रक्षा केलिए प्रयास करनेवालों की स्थिति "वृद्ध" के चित्रण से प्रस्तुत किया है। नाटक को आगे चलाने में उनका चित्रण बहुत सक्षम निकला है। फ्रेक, ब्रेक, ट्रैक आदि का चित्रण नाटक की गति केलिए की गई है। अपनी दुरवस्था से पीड़ित होकर मूल्यच्युत राहों को स्वीकार करने केलिए विवश मनुष्य के चित्रण केलिए "क" नामक पात्र बहुत योगदान देता है।

"ठहरी हुई ज़िन्दगी" में पात्रों को पौराणिक रूप दिया है । उन्होंने पुराण के पात्रों को जनता के सामने प्रस्तुत किया है । नाटक में "राम" के तीन रूप प्रस्तुत किये हैं । इसमें रामस्वरूप राम का ईश्वरीय रूप है, रामनामी अवतार है और बैजू पंडित का बेटा मानवीय रूप । सीता, मन्दोदरी आदि समाज में हर दिन देखनेवाले पात्र हैं । गुट्टू का स्थान संस्कृत नाटकों के विदूषकों का है । "मुन्नू की माँ" का संकल्प नाटक को गति देने के लिए किया गया है । इसके "फटीचर आदमी" के भी पुराण के दशरथ के समान तीन पत्नियाँ हैं । लेकिन एक एक शादी का विशेष कारण भी है । पहली शादी पिताजी के लिए, दूसरी अपने लिये, तीसरी शादी उस स्त्री से मज़बूर होने पर । आदि से अंत तक प्लेटफार्म पर हमेशा एक आदमी लेटा रहता है । अपने चारों ओर जो कुछ घटित हो रहा है उसके संबंध में सोचना तक भी उनका काम नहीं । इस देश के आलसी, निकम्मे और निठल्ले व्यक्तियों के प्रतीक बनकर ही "लेटा आदमी" आ रहा है ।

"तिन्दुवुलम" पुरानी रीति के अनुसार लिखा गया नाटक है । इसमें "तिन्दुवुलम" और "पद्मावती" को नायक - नायिका के रूप में और "सत्यदर्शि" को खल नायक के रूप में चित्रित किया है ।

भाषा

विसंगत नाटककार रूढ़िगत भाषा को महत्त्व नहीं देते हैं । उनके सामने परंपरागत भाषा निरर्थक हो गयी है । परिवर्तित मानसिक भावों के अनुसार

भाषा में भी परिवर्तन लाना अवश्य है । पुराने शब्दों के नष्ट होते अर्थ को छोड़कर युगानुकूल संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए समर्थ भाषा का अन्वेषण हुआ । डा. गोविन्द चातक के मत में, "अनुभव के बदलते ही भाषिक अभिव्यक्ति की स्थितियाँ बदल गई थी और बदली हुई संवेदनाओं के साथ एक नई भाषा की खोज होने लगी थी ।" [1] अब तो भाषा आधुनिक समाज को अनुकूल अभिव्यक्ति मे समर्थ हो गई है । क्योंकि साहित्यकारों की परिवर्तित दृष्टि भाषा में भी परिवर्तन लायी । जैसे "हिन्दी नाटककारों को एक ऐसा राष्ट्रीय और सामाजिक परिवेश मिला, जिसमें व्यक्तित्व, मूल्य, मान्यतायें, बोध, भाषा, भाव - सब का सामूहिक विघटन हो गया । ऐसे परिवेश में समकालीन हिन्दी नाटकों में नाटककारों ने भाषा के माध्यम से वर्तमान जीवन के संघर्ष को, पात्रों के तीव्र मानसिक द्वन्द्व को और युग सापेक्ष विविध भंगिमाओं एवं बोधों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया । इस युग के नाटकों की भाषा में जीवन के यथार्थ पक्ष का उभार, पात्रों के अन्तर्विरोधी भावों का विश्लेषण, मनोवैज्ञानिकता का आग्रह स्पष्ट दिखाई देता है ।" [2] विसंगत नाटकों की भाषा रोज़मर्रा के बोलचाल की है । इनमें प्रतीकों की सहायता से जीवन की विसंगतियों को व्यक्त करने का प्रयास है । ऊल जलूल संवाद द्वारा जीवन की ऊल जलूल स्थितियों का वर्णन है । "ऊल जलूल का थियेटर उस सत्य की खोज करता है जो परंपरागत शब्दो, रीतियों, तर्क वितर्क और बौद्धिकता में खो गया है ।" [3] नाटककार

1. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश - डॉ. गोविन्द चातक - पृ. 1
2. साठोत्तरी हिन्दी नाटक - डॉ. विजयकांत धर दुबे - पृ. 196
3. ज्ञानोदय - जून, 1964 (ऊल जलूल का थियेटर-बलवन्त गार्गी) पृ. 49

शब्दों के प्रचलित अर्थों का विरोध करते हैं । एक शब्द अनेक बार प्रयुक्त करते हैं । शब्दों की पुनरावृत्ति इस प्रकार के नाटकों में बहुत अधिक है । वे हरकत को शब्दों से अधिक महत्व देते हैं, वे मूक अभिनय को प्रधानता देते हैं । उनके संवाद बाहर से देखने पर बेतुके और असंबद्ध लगते हैं । इन संवादों का आन्तरिक अर्थ भी होता है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटकों की भाषा सामान्य है । उन्होंने अपने नाटकों और एकांकियों में बोलचाल की भाषा को स्थान दिया है । उनके नाटकों में शब्दों की पुनरावृत्ति की भी अधिकता है । उन्होंने अपने नाटकों में रोशनी, भीड, जुलूस, नारा, शोर आदि का प्रयोग बार बार किया है । "रोशनी एक नदी है", ठहरी हुई ज़िन्दगी", आदि में इन शब्दों की आवृत्ति दिखाई पडती है । उनके नाटकों का संवाद भी ऊल-जलूल है । "रोशनी एक नदी है" के मर्द - औरत एक ही बात को बार बार दुहराते हैं, एक दृष्टांत है -

"मर्द- (संकेत में) कोई नहीं आया ?
औरत - (संकेत में) कोई नहीं आया ।
मर्द - (संकेत में) सब मुझ से डरते हैं ।
औरत - (संकेत में) मुझसे भी डरते हैं ।" [1]

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 75

ट्रैक, ब्रैक आदि भी बार बार अपने विचारों को दुहराते हैं और निरर्थक बातें कहते हैं, जैसे -

"ब्रैक-ट्रैक, यह रूपया मुझे दो ।
ट्रैक - जो {उदास होकर} अभी तक
रूपये को दिल कह रहे थे, अब
गरीबी कहेंगे, हाँ ।
ब्रैक - ट्रैक, इसी किताब में लिखा है न,
गरीबी आदमी को जानवर बना देती है ।
ट्रैक - हाँ ।
ब्रैक - तो यह रूपया मैंने इस किताब में रख दिया ।
ट्रैक - हाँ, रख दिया ।
ब्रैक - यह किताब गरीब है क्योंकि औरत
गरीब है क्योंकि इस किताब में लिखा है
गरीब आदमी को जानवर बनाती है ।" [1]

इन संवादों से लेखक इस सत्य की ओर संकेत देता है कि गरीबी के कारण मनुष्य पागल होकर जानवर बन जाता है, मनुष्य की पाशविक वृत्ति में गरीबी का भी हाथ है ।

1. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 56

"तिन्दुवुलम" की भाषा इससे भिन्न है जो सरल, सहज ढग की है ।

प्रतीक

लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटकों में प्रतीकों का सशक्त प्रयोग है । उन्होंने अर्थ को अधिक तीव्रता देने के लिए नये नये प्रतीकों को अपनाया है । "रोशनी एक नदी है" में रोशनी के प्रतीक द्वारा मूल्यों की पुनः स्थापना की प्रतीक्षा करने की ओर सूचना दी गई है । इसमें लैम्प पोस्ट और कूडे के डिब्बे के प्रतीकों द्वारा अन्याय, भ्रष्टाचार आदि विसंगतियाँ स्पष्ट की गई है । "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में प्रतीकों का सूक्ष्मतम प्रयोग है । रावण का ग्यारहवाँ सिर मनुष्य की पाशविक वृत्ति का प्रतीक है । रावण के दसों सिरों के काटने पर भी ग्यारहवाँ सिर बन गया है । इसके द्वारा रावणत्व जारी रखने की सूचना दी गयी है । राम - रावण शासक वर्ग के प्रतिनिधि हैं । लेटा आदमी समाज की अकर्मण्यता का प्रतीक है ।

शैली

लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए नयी - नयी शैलियों को अपनायी है जो कथ्य की बिखरी हुई कड़ियों को गूँथने में तथा कथ्य को एक गति देने में सहायक सिद्ध होती है । विसंगत शैली के साथ साथ उन्होंने इस अतीत कथन की शैली को भी अपनायी है । इस फ्लैश बैक शैली

में पात्रों द्वारा अतीत घटनाओं की याद कराके नाटक व्यक्त किये गये हैं । "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में पौराणिक कलेवर में समसामयिक समस्याओं का चित्रण है ।

मंचीयता

विसंगत नाटककार का मंच विधान विशेष प्रकार का है । वे रंग-सज्जा को महत्व नहीं देते हैं । पहले के समान रंग विरंगे चमत्कारपूर्ण सजावट का उपयोग नहीं करते । नाटक का रंगशिल्प व्ययसाध्य नहीं । रंग-सज्जा मे पदार्थों की अधिकता नहीं । मंच के पदार्थ साधारण चीज़ें होती हैं । वेश भूषा भूषा भी अजीबोगरीब है । साधारण सामग्रियों के प्रयोग से और पात्रों की आंगिक चेष्टाओं से अर्थ प्रदान करने का रीति है । नाटकों में संवाद भी अनावश्यक हो गए हैं और मंचन में केवल अभिनेता की आंगिक चेष्टाओं से भी कार्य चला जाता है । मंच में साधनों की कमी है । मंच ऊल जलूल है - सज्जा साधारण होती है । दृश्यपरिवर्तन के अन्तराल भी नहीं होते हैं । दृश्यपरिवर्तन प्रकाशयोजना, ध्वनियोजना से किया गया है । नाटकों में दर्शकों और अभिनेता के बीच दूरी नहीं होते हैं । प्रतीकात्मक मंच को स्थान देने के कारण मंच केलिए अधिक खर्च नहीं होते ।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने इन्हीं मान्यताओं को नाटकों में प्रस्तुत किया है । "रोशनी एक नदी है" में मंच विधान सजगता से की है । इसके मंच केलिए

अधिक व्यय नहीं होता । दर्शकों के बीच से अभिनेता के आगमन प्रस्तुत करने में नाटककार का उद्देश्य दर्शक और पात्रों के बीच की दूरी को मिटाना है । मंच विधान दर्शकों से उतना निकट है । इसमें बीच बीच में प्रेक्षकों को समझाया कि आगे होनेवाला नाटक है जो एक नयी प्रणाली है । "ठहरी हुई ज़िन्दगी" की मंच सज्जा अनेक नये प्रयोगों से संपूर्ण है । नाटक के शुरू होने के पहले निर्देशक द्वारा सारी बातें कही गयी हैं । यहाँ निर्देशक के कथन में संस्कृत नाटकों का प्रभाव है । संस्कृत नाटकों में सूत्रधार की भूमिका बहुत बडी है । उन्होंने समय समय पर आवश्यक निर्देश दिये हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा ने सूत्रधार को निर्देशक के नये रूप में उपस्थित किया है ।

प्रकाशयोजना और ध्वनियोजना से नाटककार लाभ उठा सकते हैं क्योंकि मंच केलिए आवश्यक उपकरणों को प्रकाश और ध्वनि के सहारे स्पष्ट कर सकता है । नाटक का अवश्य अंग है पर्दा । आधुनिक नाटककारों ने इन अवश्य वस्तुओं को भी तोडने का प्रयास किया है । चमकीले पर्दों के स्थान पर प्रकाश दृश्यपरिवर्तन का काम कर सकता है । दृश्य परिवर्तित करते समय प्रकाश धीरे धीरे धीमा पड गया है और फिर रोशनी के आने पर रंग परिवर्तन होता है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने " रोशनी एक नदी है ", "ठहरी हुई ज़िन्दगी" आदि का दृश्य प्रकाशयोजना द्वारा परिवर्तित किया गया है ।

कुछ घटनाओं को मंच पर प्रस्तुत करने में व्यावहारिक कठिनाई होती है तब ध्वनियोजना की सहायता ली जाती है जिससे उन घटनाओं की प्रतीति

दर्शकों के सम्मुख कराई जाती है । लक्ष्मीकांत वर्मा अपने नाटकों में ध्वनि का सहारा लेकर जुलूस, नारे आदि की सूचना देते हैं । "रोशनी एक नदी है" में जुलूस को मंच पर लाने केलिए नेपथ्य से नारे लगाने की आवाज़ सुनाते हैं । "तिन्दुवुलम" में ध्वनियोजना का अधिक प्रयोग है । इसके सहारे रथ का आगमन, शंख, गजर, घंटा आदि की प्रस्तुति की सूचना दी गयी है । रथ के नीचे पडनेवाले लोगों की स्थिति समझाने केलिए भी उनके दबने और कराहने की ध्वनियों का प्रयोग किया गया है । घोडे की टाप सुनाने से अश्वारोहियों के आगमन की सूचना भी दी गयी है । "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में नारों का आरव, गाडी के आने जाने की सूचना, पुलिस के आगमन और गोली चलाना आदि ध्वनियोजना के सहारे व्यक्त किया गया है ।

मुखौटे का प्रयोग

पात्रों की अभिव्यक्ति को अधिक उद्दीप्त करने केलिए मुखौटे का प्रयोग किया है । व्यक्ति के आन्तरिक भाव को स्पष्ट करने केलिए ही इनका प्रयोग किया गया है । इस प्रयोग ने मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व की सूचना भी दी गयी है । "आधुनिक मुखौटा अपनी अमूर्त आकृतियों के साथ, अभिनेता के चेहरे पर दूसरे मुखौटों की तरह ही लगाया जा सकता है । वह हाथ में पकडा या छोटी - बडी छडियों पर उठाये रखा जा सकता है, या उद्देश्य की गंभीरता के अनुरूप मंच पर पहना और उतारा जा सकता है ।"[1]

....

1. नटरंग - 1982 खंड 10 अंक - 38-39 - पृ. 87

इस प्रकार मुखौटों का प्रयोग भी उन्होंने किया है ।

बाहर से मनुष्य एक प्रकार का है तो भीतर से दूसरा प्रकार । कुछ मनुष्य हमेशा अपनी वास्तविकता को छिपाये बैठे हैं । उसके आन्तरिक और बाह्य यथार्थ की टकराहट से जीवन में विसंगतियाँ जन्म लेती हैं । "रोशनी एक नदी है" के मर्द-औरत कुछ समय तक शेर-शेरनी का मुखौटा धारण करके व्यवहार कर रहे हैं जिनके द्वारा मनुष्य की दयनीयता को अधिक व्यक्त किया है । "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में रावण के ग्यारहवाँ सिर भी मुखौटे का उत्तम दृष्टांत है । गधे का मुखौटा धारण कर पाशविक वृत्ति को छिपाने का प्रयास है ।

पहले नाटककारों ने मुखौटे का प्रयोग बहुत दूर तक बैठे लोगों को देखने के उद्देश्य से किया है । बाद में पात्रों के मानसिक भावों को अधिक गहराई से व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ । लक्ष्मीकांत वर्मा ने भी इसी उद्देश्य से अपने नाटकों में मुखौटों का प्रयोग किया और वे सफल भी हुए हैं ।

ज़ाहिर है, लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने नाटकों में कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में प्रयोग के व्यापक स्तर अपनाये हैं । कथ्यहीनता को एक प्रयोग का रूप प्रदान करने का उनका प्रयास काफी सराहनीय है । उन्होंने वर्तमान युग के राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में उत्पन्न विसंगति, औद्योगिक युग की यान्त्रिक ज़िन्दगी के अभिशाप, सत्ता की भ्रष्ट नीति,

मौजूदा व्यवस्था के जर्जरित आर्थिक ढाँचा के दुष्परिणाम, विवेकहीन धार्मिक आस्था आदि को कथ्य के रूप में स्वीकार करके नाटक को प्रत्यक्ष जीवन के निकट लाने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

तीसरा अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा के एकांकी

लक्ष्मीकांत वर्मा के एकांकी

पचासोत्तर हिन्दी एकांकी साहित्य ने विकास की कई मंजिलें पार की है। पचास तक आते आते हिन्दी एकांकी अतिशय भावुकता एवं पठनीयता के सीमित दायरे से बाहर निकलकर समकालीन जीवन की बुनियादी समस्याओं का विश्लेषण करने में सफल निकले। एकांकी को रंगमंच से जोडने की जो शुरूआत उपेन्द्रनाथ अश्क के एकांकियों से हुई थी उसे सर्जनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय जयदीशचन्द्र माथुर को है। समकालीन जीवन और समाज से गहरी संलग्नता इनके एकांकियों का भी मूलस्वर है। उन्नीस सौ पचपन और साठ के आसपास रंगमंच का जो राष्ट्रव्यापी ज़बर्दस्त आन्दोलन शुरू हुआ था उसमें महत्त्वपूर्ण योग देनेवाले एकांकीकारों में लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, भरतभूषण अग्रवाल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होने बहुविध शिल्प - प्रयोग कर एकांकी को परंपरित रूढियों और रूपगत श्रृंखलाओं से मुक्त कराया। इनका आग्रह रंगमंचीय एकांकी लिखने का ही रहा है। स्त्री - पुरुष संबंधों की बारीक छानबीन करने में मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा काफी सफल निकले। बोलचाल की भाषा के सर्जनात्मक नाटकीय उपयोग से प्रभावपूर्ण संवाद लेखन की कला में भी दोनों सक्षम रहे। इनके एकांकी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि "रंगमंच के माध्यम तथा उसके व्याकरण का व्यावहारिक और गहरा ज्ञान उनके पास है।" [1]

1. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - जयदेव तनेजा - पृ. 62

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी साहित्य में अपनी एब्सर्ड नाट्य परंपरा का प्रभाव हिन्दी एकांकी पर पड़ा । जीवन और जगत् की व्यर्थता, विडम्बना और विसंगति को विशिष्ट टेकनीक और अजीब ढंग के पात्रों के ज़रिए प्रस्तुत करने की परंपरा बहुत पहले भुवनेश्वर ने शुरू की थी । इस परंपरा को संपूर्णत: स्वीकार करके हिन्दी में एब्सर्ड एकांकियों की शुरुआत करनेवालों में लक्ष्मीकांत वर्मा, विपिनकुमार अग्रवाल, शंभूनाथ सिंह, सत्यव्रत सिन्हा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के प्रकाशित एकांकी संग्रह "आदमी का ज़हर" और "अपना अपना जूता" हैं जिनमें सात एकांकी - आदमी का ज़हर, उस रात के बाद, आकाश गंगा की छाया में, रबर का बबुआ, परतों की आवाज़, अपना अपना जूता और तीसरा आदमी संलग्न हैं ।

अमानवीय घेरेबन्दी में पिसनेवाले व्यक्ति का विद्रोह :

"आदमी का ज़हर"

आर्थिक विपन्नता ने हमारे पारिवारिक और सामाजिक संबन्धों को बुरी तरह प्रभावित किया । मानवीय मूल्यों के ह्रास का मूल कारण यह आर्थिक दबाव ही है । धन कमाने की होड में मनुष्य मूल्यों को, रिश्तों को, आदर्शों को नकारते हैं । सारे संबन्धों का मूल आधार भी रुपया - पैसा बन गया है । अत: यह स्वाभाविक है कि अभावग्रस्तता में जीनेवाले व्यक्ति एवं संपन्नता में पलनेवाले व्यक्ति के बीच एक गहरी दरार रहती है । लक्ष्मीकांत वर्मा इस एकांकी में आर्थिक विपन्नता का शिकार बने साहित्यकार का परिचय देता है जो निरन्तर संघर्ष की स्थिति में जीता है, अपने को और परिवार को ज़िन्दा रखने केलिए आर्थिक दबाव में दबकर निरन्तर लडता रहता है । साहित्यकार को अपने समाज से विशेषकर उनके शुभचिन्तकों से मीठे अनुभव कम मिलते हैं, पर कडुवे अनुभव ज़्यादा । कसैले अनुभव कभी वह न भूल सकता । साहित्यकार की रचनाओं में उनके भोगे हुए यथार्थ की स्पष्ट छाप पडती है तो स्वाभाविक है ये कसैले अनुभव उनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाते हैं । एकांकी के भीतर एक रेडियो नाटक-टूटा आदमी - का सृजन करके लक्ष्मीकांत वर्मा ने जो नया प्रयोग किया है वहाँ उनका उद्देश्य यह स्थापित करना है कि साहित्यकार की रचनाओं में उनके वैयक्तिक अनुभवों की स्पष्ट छाप पडती है

प्रसिद्ध साहित्यकार शरण पशु - रक्षिणी - समिति का संयोजक है । उनके घर पर मीटिंग बुलायी गयी थी । सारे सदस्य - नरेन्द्र, कामेश्वर, डॉ. पाल आदि आये, लेकिन स्वयं शरणजी का पता नहीं । वहाँ शरण की प्रतीक्षा में बैठनेवाले लोग ऊबते और रेडियो सुनते हैं ।

रेडियो से यह विशेष खबर निकलती है कि एक आदमी ने एक कुत्ते को काटा है । आदमी द्वारा काटे गये कुत्ते ने मनुष्य पर आक्रमण किया है । जिले के अधिकारी उस कुत्ते को और आदमी को पकडना चाहते हैं । लोगों से यह भी बताया गया है कि उस आदमी को पनाह देना अपराध है । शहर के खराबी मौसम में अधिकारी लोग कुत्ते और आदमी की तलाश में है । रेडियो की खबरें समाप्त होने पर शरणजी का लिखा हुआ "टूटा आदमी" का अवतरण होता है । रेडियो नाटक का नायक महिम एक बडा साहित्यकार है । वह अर्थाभाव से बुरी तरह आहत है । उनके पास ज़रूरी चीज़ों केलिए भी पैसा नहीं । बीमार बच्चों को दवा पिलानेकेलिए तक असमर्थ उस साहित्यकार की अभावग्रस्तता का पता निम्न-लिखित संवादों से मिलता है ।

"महिम - लाओ तो लुँगी कहाँ है ।
कपडे बदल लूँ ।

शशि - लुँगी नहीं है ।

महिम - क्यों, क्या हो गयी ?

शशि - बन्दर उठा ले गया ।

G 5352 -

चिथड़े --- चिथड़े करके रख गया है ।

महिम - अच्छा खैर तौलिया तो ले आओ ।

शशि - खूब बात करते हैं आप ।
तौलिया घर में कहाँ है ? कुछ पता है ?
आज छह महीने से तौलिया घर में नहीं है ।

महिम - खैर मानता हूँ । अच्छा अपनी कोई साडी ही दे दो ।

शशि - बस यही है जो पहने हूँ । लेखक की पत्नी हूँ न, इससे ज़्यादा ज़रूरत क्या है ?

महिम - ठीक ही तो है शशि, खैर यह पाजामा ही पहन कर सो जाऊँगा ।" [1]

महिम की ज़िन्दगी में एक ओर आर्थिक दबाव है दूसरी ओर उनके ही शुभचिन्तक कहे जानेवाले लोगों का हास परिहास । महिम के प्रति हितैषियों के व्यवहार की पोल खोलते हुए उसकी पत्नी जो कहती है वह बिलकुल ठीक है - "आपको मन से न चाहते हुए भी चाहने का अभिनय करते हैं, मुँह से तारीफ करते हैं, पीठ-पीछे जाने क्या क्या कहते हैं ?"[2] एक साहित्यकार को समाज से, अपने शुभचिन्तकों से प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के बदले तानें मिलती हैं तो वह अन्तर ही अन्तर टूट जाता है । यह

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 16

2. ,,

आन्तरिक टूटन उसको साहित्य से संबन्ध विच्छेदित करने केलिए भी विवश कर देती है । जो महिम साहित्य को अपनी आत्मोपलब्धि मानते थे वह अंत में अपनी समस्त कल्पनाओं को, साहित्य को, रचना को तिलांजली देता है । समाज को अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा बहुत कुछ भेंट देने की क्षमता रखनेवाले साहित्यकार की सारी क्षमतायें समाज के ऐसे तीखे अनुभवों के कारण बिलकुल जीर्णशीर्ण हो जाती है । महिम जैसे साहित्यकार की ज़िन्दगी को असर बनानेवाले लोगों के प्रति नाटककार का व्यंग्य ही शशि के कथन में मूर्त हो उठता है - "कृपा करके चले जाइए - - - - - आप लोगों का घर बहुत बडा है लेकिन आप लोग बौने हैं ।" [1] ज़ाहिर है कि साहित्यकार के हितैषियों के इसी बौनेपन को उजागर करना नाटककार का लक्ष्य भी है ।

नाटक के बीच रेडियो के आँधी तूफान से बन्द होने पर शरण के घर के भीतर से किसी की पुकार सुनाई पडती है । मुक्त करने केलिए चिल्लानेवाले आदमी का स्वर है । वह प्रलाप कर रहा है - "खोल दो, खोल दो मेरे ये बन्धन, ये जंजीरें, ये हथकडियाँ, ये घूरती हुई आँखें यह सब मुझसे नहीं सहा जाता । मेरी दुश्मनी आदमी से नहीं है, नहीं है ।" [2] तब मीटिंग केलिए आये हुए भरद्वाज आदि पुलिस अफसर को पता चला कि वह आदमी कुत्तों को काटनेवाला है । वह पुलिस को शरणजी का घर घेर लेने की आज्ञा देता है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 32

2. ,, - पृ. 20-21

पशु रक्षिणी समिति का विधान पशुओं की रक्षा करने का आदेश देता है । लेकिन यहाँ समिति का संयोजक शरणजी ने पशुओं पर आक्रमण करनेवाले एक आदमी को आश्रय दिया है । इसलिए वह पशु रक्षिणी समिति के संयोजक रहने केलिए योग्य नहीं है । पशु रक्षिणी समिति के सदस्यों ने यह फैसला की है कि शरणजी इस्तीफा दें और मिसेज़ कल्पना संयोजक का पद स्वीकार करें ।

कुत्तों को काटनेवाले आदमी की खोज करके पुलिस ने शरण को गिरफ्तार किया है जिसने अपने घर में उस आदमी को आश्रय दिया है । लेकिन शरण के गिरफ्तार के पहले ही वह आदमी मर चुका है ।

आर्थिक दबाव और लेखकीय विसंगति

वर्तमान समाज अर्थ प्रधान समाज है । मनुष्य केलिए पैसा ही सब कुछ है । धनहीन व्यक्ति जो भी हो समाज में उसका कोई स्थान नहीं है । श्रेष्ठ साहित्यकार होने पर भी शरण का आदर करने में समाज के आभिजात्य वर्ग के लोग तैयार नहीं है । "आदमी का ज़हर" शरण के माध्यम से अर्थाभाव से पीडित लेखकीय विसंगतियों को प्रस्तुत करता है । रेडियो नाटक - टूटा आदमी - साहित्यकार की आर्थिक स्थिति की ओर संकेत है । "टूटा आदमी" के महिम के माध्यम से शरण की हालत का चित्र प्रस्तुत करता है । महिम की ज़िन्दगी बडी शोचनीय है । ज़िन्दगी आगे चलाने केलिए उनके पास पैसे नहीं हैं । बच्चों की भूख

मिटाने केलिए और उन्हें दवा पिलाने केलिए तक वे असमर्थ हैं । नग्नता छिपाने केलिए न लुंगी है, न तौलिया, न पत्नी की साडी भी । अभाव-ग्रस्तता की पकड से उसकी बेचारी पत्नी शशि थक गयी है । वह डरती है कि इनका असर बच्चों पर भी पडेगा - "यदि यह केवल अभाव में पलेंगे तो इनमें विकृतियाँ आयेंगी ।" [1]

बीमार बच्चे केलिए महिम डाक्टर से बीस रुपये कर्ज लेते थे । उनसे तीन खत आने पर भी वह दे नहीं सकता । शशि को यह अपमानजनक लगती है । पैसे वापस मिलने केलिए बार बार पत्र भेजनेवाले डाक्टर साहब को ही वे शुभचिन्तक मानते हैं । उनके मत में इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं ।

अर्थ की कमी ने महिम को व्यक्तित्वहीन बना दिया है । इसलिए ही पशु रक्षिणी समिति की सभा में आनेवाले उनके मित्रों को यह कहना पडता है कि "बुला लिया घर पर और खुद का पता नहीं ।" [2] वहाँ आनेवाले मित्र शरण की खिल्ली उडाने में व्यस्त होते हैं । उनकी दृष्टि में शरण अपने को भी नहीं पहचानते हैं, डॉ. पोल का कहना है -"जो आदमी खुद नहीं समझता उसे कौन समझा सकता है ?" [3] धनहीन होने के कारण ही वह हर वक्त मित्रों के व्यंग्य वचन सुनने केलिए मजबूर है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 22

2. पृ. 9

3. पृ. 9

विसंगतपरिवेश एवं लाचार आदमी की प्रतिक्रिया

अन्याय, बेईमानी आदि से जुडे हुए समाज में मनुष्य का व्यक्तित्व अत्यन्त सड गया है । मनुष्य की प्रवृत्तियाँ बदतर होती जाती हैं । समाज के विषैले वातावरण में पडकर मनुष्य ज़हरीला बन जाता है ।

एकांकी वर्तमान मनुष्य के आन्तरिक द्वन्द्व और पीडा को प्रस्तुत करता है । इसमें एकांकीकार ने आदमी द्वारा कुत्ते को काटने की घटना प्रस्तुत कर मनुष्य की बर्बरता को व्यक्त करने का श्रम किया है ।

विसंगतियों से भरपूर इस दुनिया में जीने के लिए विवश मनुष्य का चित्रण शरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है । मनुष्य की जीने की विवशता कुत्ते को काटने की घटना द्वारा प्रस्तुत करता है । यहाँ एकांकी के पात्र डॉ. पाल के शब्द समीचीन हैं – "कुत्तों के काटने से आदमी परेशान हो गया होगा । उसका धीरज टूट गया होगा, उसका सब कुछ खो गया होगा, तब मजबूर होकर आदमी ने कुत्ते को काटा होगा ।" [1] मनुष्य का ज़हर कुत्तों के रक्त से मिलने पर अत्यन्त खतरनाक हो जाता है ।

यहाँ लक्ष्मीकांत वर्मा समाज के आभिजात्य वर्ग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । पशुओं की रक्षा पर बडी तत्परता दिखानेवाले लोग

1. आदमी का ज़हर – लक्ष्मीकांत वर्मा – पृ. 11

तो मनुष्य की रक्षा करना अत्यन्त हीनकार्य समझते हैं। ये लोग करुणा और श्रद्धा के नकाब लगाते हैं। मिसेज़ कल्पना को पब्लिक लाइफ में इतने इन्गेजमेण्ट्स रहते हैं कि पति की शुश्रूषा करने का अवकाश भी प्राप्त नहीं होता और ब्लड प्रेशर से बुरी तरह पीडित पति की शुश्रूषा केलिए वह नर्स को रखती है। अपनी विवशता को व्यक्त करती हुई वह कह रही है - "क्या करूँ, रखना पडता है। कोई बीमार है ठीक है, दवा कर दो।"[1] अपनी असलियत को छिपाने केलिए आभिजात्य वर्ग के लोग जो नकाब लगाते हैं, उसे चीरने की कोशिश जब कभी कोई करता है तो उस पर ये लोग कुत्ते छोडते हैं। सदियों से यह पीडा सहते सहते उसकी प्रतिक्रिया में पागल होकर आदमी की कुत्ते को काटने की बात पर नाटककार आवाज़ उठाते हैं। वह आदमी समाज की अनैतिकता, अन्याय आदि से दूर रहना चाहते हैं - "छोड दो छोड दो मुझे मैं कहता हूँ छोड दो यह समाज - - यह नैतिकता यह, तुम, वह तुम्हारी आकृतियाँ मुझे यह परछाइयाँ क्यों घेरे हैं - - यह बौनी नन्हीं - - पंगु - - अपाहिज परछाइयाँ - - मुझे इन से दूर जाने दो - - दूर - - दूर - - बहुत दूर - - हठ जाओ - - ।"[2]

कुत्ते को काटने के कारण उस आदमी को जंजीरों में, हथकडियों में डाल दिया। उसकी स्थिति न समझनेवाले लोगों से उसका प्रश्न बहुत

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 27

2. - पृ. 12

मार्मिक है - "लेकिन तुम मुझे पानी क्यों नहीं देते ? क्यों नहीं मेरी बेचैनी समझते ? क्यों नहीं मेरी तकलीफ समझते ?" [1]

नाटककार को नाटक लिखने की प्रेरणा भी यही है, वे लिखते हैं, "बहुत-से ऐसे मूल्य हैं जो देखने में तो मानवीय लगते लेकिन उनके मूल में संपूर्ण अमानवीयता पनपा करती है । इन विरोधाभासों में कभी कभी मानव आचरण में मानव - हीनता पनपने लगती है ।" [2] मनुष्य अपना इनसानियत नष्ट होने पर पशु सा आचरण करता है । डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र भी इस की ओर संकेत करता है - "अमानवीय घेरेबन्दी और बर्बर व्यवस्था के भीतर पिसनेवाले व्यक्ति का विद्रोह उसे पागल बना देता है और वह इस सारी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता हुआ कुत्ते को काट लेता है ।" [3]

पुरानी मान्यताओं पर एक चुनौती

नये नाटकों की शुरूआत के पहले नाट्यक्षेत्र में जो मान्यतायें प्रचलित थीं एकांकीकार उन पर व्यंग्य करते हैं । नाट्यक्षेत्र में कथ्य एवं शिल्प पक्ष को लेकर कुछ परंपरागत, रूढिगत धारणायें अपनी जडें जमा चुकी थी । घटनाओं और पात्रों की भीड से नाटकीयता नष्ट हो जाती थी, लेकिन नये नाटककारों ने परंपरागत मान्यताओं को तोड दिया है । आज नाटक युग की संवेदना को अभिव्यक्ति देने की क्षमता रखनेवाली विधा बन गया है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 21
2. - पृ. 3
3. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य - डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - पृ. 340

नये खेमे के नाटककार होने के नाते लक्ष्मीकांत वर्मा ने "आदमी का ज़हर" की रचना भी प्राचीन प्रतिमानों के कटघरे से बाहर निकलकर की है ।

साहित्य आस्वादन में असमर्थ लोगों से घिरे साहित्यकारों की हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है । एकांकी में लक्ष्मीकांत वर्मा ने नरेन्द्र, मिसेज़ कल्पना, डॉ. अदारकर आदि समाजसेवियों से घिरे साहित्यकार शरण का दयनीय चित्र उकेर दिया है । साहित्य के बारे में सभाओं में बडी बडी बातें करनेवाले ये लोग साहित्यकारों की खिल्ली उडाने केलिए बडे तत्पर हैं ।

मीटिंग केलिए समिति के सदस्य शरण के घर आये हैं, लेकिन घर में शरण नहीं है । रेडियो से शरणजी का ही नाटक "टूटा आदमी" खेल रहा है । बीच में बाहर के आँधी तूफान से रेडियो बन्द हो जाता है । सुनने वालों को नाटक के पात्र महिम, शरण जैसा साहित्यकार लगता है । उनकी राय में कोई घटना या कोई उच्च आदर्श डयलोग और ऐक्शन द्वारा प्रस्तुत करना ही नाटक है । डॉ. अदारकर के मत में शरणजी का नाटक "टूटा आदमी", "अशिक्षित लोगों की बकवास है । अपनी ही आत्मकथा लिखी है - - - शरण स्वय जैसा है, वैसा ही पात्र भी बनाता है ।" [1] नाटक के पात्र के स्वयं नाटककार के प्रतिरूप बनने में ये लोग शरण की विक्षिप्तता या पागलपन का लक्षण बताते हैं । नाटककारो को कमबख्त कहकर बताते हैं कि,

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 17-18

"नाटक की टेक्नीक तक तो मालूम नहीं । दो पात्र इतनी देर से बक-बक बक-बक लगायें हैं, बीच में कोई घटना ही नहीं घटती । ऐक्शन तो है ही सिर्फ डयलॉग पर नाटक चलाना चाहते हैं । यह महिम नाम का पात्र बिलकुल शरण का अवतार है अवतार ।"[1] डा. अदारकर, नरेन्द्र जैसे व्यक्ति "टूटा आदमी" जैसे नाटकों को नाटक नहीं स्वीकारते । लेकिन "टूटा आदमी" जैसे नाटकों को नाटक समझनेवाले डॉ. पाल जैसे इने गिने व्यक्ति भी हैं । डॉ. पाल ने इन लोगों को समझाने की कोशिश की है - "बकवास भी एक बहुत बडा यथार्थ है ।"[2] "टूटा आदमी" में साहित्य का मज़ा लेने में असमर्थ लोगों का चित्रण लक्ष्मीकांत वर्मा ने पहली आवाज़, दूसरी आवाज़, तीसरी आवाज़, चौथी आवाज़, पाँचवीं आवाज़ आदि के रूप में चित्रित किया है । नाटक के पात्र महिम पर ये पाँच व्यक्तियों का परिहास द्रष्टव्य है । महिम के घर आकर वे लोग उन पर व्यंग्य कर रहे हैं । किन्तु उसकी पत्नी के मुँह से एक साहित्यकार के यथार्थ रूप की पहचान होने पर वे लज्जित होकर चले जाते हैं । तनाव एवं टूटन से बुरी तरह जकडे हुए एक साहित्यकार - शरण के उलझे व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से उभारने केलिए नाटक के भीतर दूसरे - रेडियो नाटक - की रचना की गई है । शरण और महिमा को एक ही भावभूमि में खडा कर देते हैं ।

अत: स्पष्ट है नाटक में लक्ष्मीकांत वर्मा का उद्देश्य यह दिखाना है कि आज के अमानवीय परिवेश में आन्तरिक टूटन और संत्रास के शिकार बने हुए

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 18

2. - - पृ. 33

व्यक्ति की पाशविकता एवं बर्बरता अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई है । व्यक्ति के जीवन में जब घोर निराशा छा जाती है तो वह महसूस करने लगता है कि जीवन व्यर्थ है और यह व्यर्थता बोध नोच नोचकर उसे खाने लगता है । ऐसे लोगों की समाज के प्रति - अपने चारों ओर के परिवेश के प्रति जो प्रतिक्रिया होती है वह बिलकुल ज़हरीली है । सारे नैतिक बन्धनों को तोडने केलिए वह मजबूर भी हो जाता है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने आदमी द्वारा कुत्ते को काटने की घटना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्वारा वर्तमान मानव की इसी द्वेषमूलक बर्बरता को उद्घाटित किया है ।

पारिवारिक संबन्धों के ठण्डेपन की तलाश

" उस रात के बाद "

इस सत्य को हरगिज़ झुठलाया नहीं जा सकता है कि विगत चार दशकों में भारतीय सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का हनन होता जा रहा है। जीवन मूल्यों के नित नये होते परिवर्तनों ने पारिवारिक जीवन में जटिलता भर दी है। आज हमारे परिवार का हर पहलू संबन्धों के बिना मूल्यहीनता का जीवन जी रहा है। प्रेम की उदात्त गरिमा और उसका मर्यादित रूप नष्ट होते जा रहे हैं। भारत की नयी पीढी के मन में पाश्चात्य सभ्यता और वहाँ व्याप्त भोग की उद्दाम वांछा का अनुकरण करने की प्रबल कामना पैदा हो गयी है। उसके फलस्वरूप सेक्स तथा नैतिकता के सामाजिक प्रतिबन्ध ढीले पड गये हैं। प्रेम शारीरिक बुभुक्षा से कुछ अधिक नहीं रह गया है। विवाह पूर्व यौन संबन्ध आज एक फैशन बन गया है। शादीशुदा औरतों का पराये पुरुषों के साथ प्रेम और यौन संबन्ध भी होता है। विवाह में परिणित होनेवाला प्रेम संबन्ध भी धीरे धीरे तनावपूर्ण बन जाता है। आत्मीयता और आपसी समझौते के अभाव में दाम्पत्य संबन्ध ठंडा और पीला पडता है। पति-पत्नी शनैः शनैः आकर्षण से विकर्षण की ओर बढने लगते हैं। और उनका यह अलगाव तलाक तक पहुँचता है। माता पिता की इस गैर ज़िम्मेदार ज़िन्दगी का कडुआ फल उनके बदकिस्मत बच्चों को चखना पडता है। अनियन्त्रित जीवन के अभिलाषी माता पिता के दिल में अपनी सन्तानों के प्रति मंगल कामना मिट

गई है । अतः वात्सल्य भावना स्वार्थ के संकुचित दायरे में कैद हो जाती है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस एकांकी में उपर्युक्त परिवर्तित जीवनदृष्टि के धरातल पर स्त्री-पुरुष संबन्धों को रेखांकित करने की कोशिश की है । उन्होंने अतीत कथन शैली को अपनाते हुए कथ्य को प्रस्तुत किया है ।

वर्षा में भीगते हुए शरण माँगकर सुधा के घर आनेवाले रतन और अतिमा को देखकर सुधा की पुरानी यादें - जो उनकी विघटित ज़िन्दगी से संबन्धित थी - ताज़ी हो जाती है । सुधा की यादाश्त के रूप में कथ्य के सारे सूत्र बुने गये हैं । पति और पत्नी के बीच में तीसरे आदमी के आगमन से सुख और शान्ति से भरापूरा पारिवारिक जीवन ऊसर बन जाता है । प्रेम के आवेश में पडकर प्रमोद की पत्नी कला पति एवं बच्चे को छोडकर अपने अन्तरंग मित्र कौशल्या के पति संतोष से शादी करती है । कला और संतोष का संबन्ध जानकर संतोष की पत्नी कौशल्या भी उसके जीवन से अलग हो गयी । कला और प्रमोद के पुत्र प्रकाश की देखभाल उसने स्वयं की है । उसने प्रकाश से इस रहस्य को छिपा है कि वह उसकी माता नहीं है । लेकिन कौशल्या एक दिन प्रकाश और उसकी पत्नी सुधा के सामने इस रहस्य का उद्घाटन करती है । यह सुनकर प्रकाश अत्यन्त निराश हो जाता है ।

सुधा की भी ऐसी एक कहानी है । सुधा अपना प्रेमी और बच्ची-जो शादी के पूर्व यौन संबंध का परिणाम है - के साथ अपने देश से किसी दूर देश की ओर जाते है । लेकिन प्रेमी विकास उन्हें रात में किसी अपरिचित स्टेशन

में छोडकर चला गया । उस वर्षाकालीन रात में बहुत अधिक समय के बाद वह शरण माँगकर प्रकाश के सामने आयी । उसने सुधा को आश्रय दिया और उसकी पत्नी के रूप में स्वीकार किया । सुधा की बेटी को संतोष ने ले लिया है ।

सुधा और बच्ची को धोखा देकर, उनको अकेले छोडनेवाले विकास को अंत में प्रायश्चित करनेवाले विवश आदमी के रूप में दिखाया गया है । प्रकाश की मृत्यु के बाद सुधा अकेली जिन्दगी जी रही है । विकास तो सुधा के घर पहुँचता है । और जिस लडकी को उसने गलीज कहकर कूडे में फेंक दिया था, जिसे उसने उन दोनों के आपसी संबंधों के बीच खटकने का काँटा कहा था, जिसे उसने विवाहित जीवन का अभिशाप कहा था उस लडकी को ढूँढकर माता से मिलाने केलिए विकास बडे उत्सुक हो जाता है । संयोगवश उसी दिन ही अतिमा अपना प्रेमी रतन के साथ वर्षा में पनाह माँगकर आयी हुई है । सुधा को अपनी बेटी को दिखाकर नयी जिन्दगी जीने का आह्वान देकर वह चला जाता है । अंत में मालूम हो गया कि विकास ही अतिमा की तलाश कर वहाँ ले आया है ।

कटु यथार्थ की मौन स्वीकृति

मूल्य की इतनी गिरावट होने पर भी समाज में ऐसे कुछ लोग देखा जा सकते हैं कि जो जिन्दगी के यथार्थ को उसी रूप में स्वीकार करते हैं । जीवन को कोसने के बदले अभिशाप्त अनुभव और मोहभंग को आत्मसात करके दूसरों

केलिए ये लोग जी रहे हैं । प्रमोद ऐसा व्यक्ति है, स्वयं उसका कथन है - "ज़िन्दगी मुझे जिस रूप में भी मिली मैं ने उसे स्वीकार किया, मेरी स्वीकृति अपनी थी, फिर मैं क्या करता - - - - अपनी सहज प्रतिक्रिया के साथ उसे झेल लिया ।" [1] प्रमोद की पत्नी उसे छोड़कर अन्य पुरुष के साथ जाती है । पुत्र प्रकाश की ज़िन्दगी तो कौशल्या के हाथ में सुरक्षित जानकर वह आराम से जी रहा है । वह ऐसी इच्छा से जीवन बिता रहा है कि किसी प्रकार भी प्रकाश को कोई कष्ट न आ सकें । इसी कारण जब एक दिन कौशल्या सारी कथायें प्रकाश के सामने प्रस्तुत करना चाहती है तो वह उसे रोकता है । वह स्वयं अशान्त होकर दूसरों को शांति देने का श्रम कर रहे हैं । उसकी अशान्ति इन वाक्यों में स्पष्ट है - "मेरे पास पैसा है, यश है, नाम है, वैभव है किन्तु मेरे पास शान्ति नहीं है, और फिर अशान्त व्यक्ति सब कुछ कर सकता है, दूसरों का जीवन खंडित भी कर सकता है ।" [2] वह अशांत पिता चाहता है कि पुत्र के मन में ऐसी निराश एवं विद्रोह की भावना न पैदा हो जाए और वह कभी यह न महसूस करें कि दो गैर जिम्मेदार व्यक्तियों के बीच जनमा हुआ संतान है । लेकिन कौशल्या से सारी बातें जानकर निराश बैठे पुत्र को देखने पर वह अधिक परेशान हो जाता है ।

नारी का आत्मसमर्पण - पराये सुख केलिए

पति एवं पुत्र को छोड़कर दूसरे पुरुष के साथ चलनेवाली नारियों के बीच ऐसी भी नारी है जो पराये स्त्री के बच्चे केलिए ज़िन्दगी गुज़र रही है ।

1. उस रात के बाद (आदमी का ज़हर) - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 53

2. ,, - पृ. 62

पति संतोष से उपेक्षित होने पर भी कला के बेटे का पालन करने का दायित्व उसने स्वयं लिया है। पति और नन्हे बच्चे को छोडकर संतोष के साथ जाकर वह सुखमय जीवन बिता रही है। कला को बेटे की कोई चिन्ता नहीं। लेकिन कौशल्या तो प्रकाश के हर कार्यों में अधिक ध्यान देती है। कला भी वह जानती है कि प्रकाश को वापस लेने से कौशल्या का दिल टूट जायेगा - - "सारा जीवन उसने प्रकाश की माँ का अभिनय किया है - - - प्रकाश की न होते हुए भी वह प्रकाश की माँ है और मैं प्रकाश की माँ होते हुए भी उसकी माँ नहीं है।"[1] कौशल्या ने अब तक प्रकाश के सामने इस रहस्य का पोल न खोला है। किन्तु बाद में वह प्रकाश से सारी घटनायें बताना चाहती है क्योंकि उसके मत में ज़िन्दगी की वह कडियाँ हैं जिन्हें ज़िन्दगी में प्रवेश करने के पहले जान लेना ज़रूरी है। अतः प्रकाश के पत्नी के साथ माता को देखने के लिए जाने पर वह सारी व्यथा-कथा सुनाती है।

प्रेम के क्षणिक आवेश का बुरा परिणाम

प्रेम के आवेश में पडकर मनुष्य जो गलतियाँ करते हैं उसका फल उन्हें जीवन भर भोगना पडता है। उन्हें हमेशा असन्तोष जीवन बिताना पडता है, उनकी ज़िन्दगी में एक तरह की निराशा छा जाती है। जीवन भर उन्हें कभी चैन न मिलता है। अपने भूलों की यादें हमेशा उन्हें सताती

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 49

रहती है । यौवन की उमंग में विकास और सुधा के बीच यौन संबंध भी हुआ जिसके फल स्वरूप एक बेटी भी पैदा हुई । दोनों, बच्ची के साथ किसी दूर देश की ओर भागना चाहते हैं । रास्ते में किसी अपरिचित स्टेशन पर वर्षाकालीन रात में सुधा को अकेली छोडकर विकास चला गया । वह पनाह माँगकर प्रकाश के घर पहुँची । प्रकाश ने उसे आश्रय दिया और बाद में उससे शादी की । सुधा की बेटी को प्रकाश के चाचा ने पुत्री के रूप में स्वीकार किया । पुत्री से अलग होकर वह जीवन बिता रही है । दस वर्ष बाद प्रकाश की मृत्यु हो जाने पर वह अकेली ज़िन्दगी जी रही है । पूर्व स्मृतियों से वह हमेशा पीडित है । उसे जीवन में कभी शांति नहीं मिलती । वह हमेशा अपनी स्मृतियों में जी रही है ।

प्रेम की क्षणिक संवेदना में बहकर यौवन के आवेश में युवक युवतियाँ सारे मूल्यों को नकारते हैं । पुरुष के सामने सब कुछ समर्पित करनेवाली नारी अंत में ही समझती है कि उस पुरुष को मात्र उसके जिस्म की ज़रूरत है, एक क्षण की भूल का तीखा फल उसे ज़िन्दगी भर भोगना पडता है । इससे उसकी ज़िन्दगी ही नहीं तबाह हो जाती बल्कि अगली पीढी की ज़िन्दगी भी बरबाद हो जाती है । अवैध संतान को समाज उपेक्षा की दृष्टि से देखता है । हमेशा ऐसे बच्चे मानसिक तनाव का शिकार बन जाते हैं । श्यामसुन्दर मिश्रजी का कथन है - "जीवन की घेरेबन्दी में फंसा हुआ प्रकाश का व्यक्तित्व एक विवश व्यक्ति के आत्मपीडन का यथार्थ रूप व्यक्त करता है ।" [1] यह तो सही है कि प्रकाश आत्मपीडन का शिकार है, लेकिन

1. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य -
डा. श्यामसुन्दर मिश्र - पृ. 340

एकाँकी में उनका अन्तर्द्वन्द्व अधिक उभर न आया । एकाँकी में सुधा की बेटी की व्यथा स्पष्ट रूप से नहीं बतायी गयी । फिर भी हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि वह माता पिता के अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की पीडा को भोगनेवाली है । माँ - बाप के होते हुए भी अतिमा दोनों से बहुत दूर है ।

इस एकाँकी की अपनी कुछ सीमायें अवश्य हैं । कई स्थानों पर घटनाओं की अविश्वसनीयता खटकती है । फ्लैश बैक शैली को अपनाते हुए एक घटना के अन्दर दूसरी घटना को पिरोने का जो प्रयास हुआ है उसके कारण एकांकी में घटनाओं की संकुलता आ गई है । इस एकांकी के पात्र प्रकाश का कथन - "हमारा - तुम्हारा यहाँ इस अँधेरी रात में एकदम अचानक मिल जाना बिलकुल रोमैण्टिक फिल्मी दुनिया के किस्से-सा लगता है ।"[1] एकांकी के पूरे कथ्य के लिए भी लागू हो सकता है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 58

विस्मृता में खो जानेवाली आत्मा

" आकाश गंगा की छाया में "

मनुष्य बाह्य सौन्दर्य पर आकृष्ट होनेवाले हैं। कोई भी सुन्दर रूप मनुष्य को आनन्द प्रदान करता है चाहे किसी भी व्यक्ति का या किसी भी वस्तु का। हर क्षेत्र में बाह्य सौन्दर्य का ही स्थान है। विशेषकर प्रेम के क्षेत्र में लोग सौन्दर्य को अधिक महत्व देते हैं। प्रेमी या प्रेमिका एक दूसरे के बाह्य रूप से अधिक आकृष्ट होता है। लेकिन सौन्दर्य में कोई कमी आयें तो उनका प्रेम भी कम हो जायेगा। सौन्दर्य का किसी भी तरह नाश हो जायें तो प्रेम भी उसी समय टूट जायेगा। व्यक्ति के आन्तरिक सौन्दर्य को देखने की क्षमता मनुष्य के मन में कम होती जा रही है। अधिक सुन्दर किसी रूप देखने पर व्यक्ति उसकी ओर अधिक आकृष्ट होता है। लेकिन हमेशा उसे अपना अपराध बोध सताता रहता है। तब व्यक्ति चंचल हो जायेगा। उसे ज़िन्दगी में कभी चैन नहीं मिलेगा। प्रेम के इस गिरावट को दिखाने केलिए लक्ष्मीकांत वर्मा ने "आकाशगंगा की छाया में" का प्रणयन किया है। एकांकीकार ने अतीत कथन की शैली में मधु की यादाश्त के रूप में कथ्य को प्रस्तुत किया है।

शिरीष प्रयोगशाला में आकाशगंगा की लेखा जोखा लेने के काम में तन मन से रत है। शशि इस काम में उसे पूर्ण योग दे रही है। शशि के रूप सौन्दर्य पर इतना अधिक आकृष्ट हुआ कि दोनों के बीच प्रेम संबन्ध

स्थापित हुआ । लेकिन दुर्भाग्यवश प्रयोगशाला में घटित एक दुर्घटना में शशि का मुख विकृत हो गया, उसका सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया । शिरीष के मित्र अमित की प्रेमिका है मधु । अमित से भी सुन्दर शिरीष को देखने पर उसने अमित और उसके प्रेम संबन्ध छोडकर शिरीष से शादी की थी । शादी के बाद भी शिरीष के मन में एक प्रकार का असंतोष छा जाता है कि उसकी स्मृति में आज भी शशि की यादें ताज़ी रहती हैं । और मधु चाहती है कि वह रोज़ पति के साथ घूमने जाती, पिकनिक, मज़ा आदि ज़िन्दगी की तमाम दिलचस्पियाँ उसके साथ होती । लेकिन उसकी कामनायें असफल हो जाती हैं क्योंकि शिरीष हमेशा प्रयोगशाला की व्यस्तता में है । वह शिरीष के साथ की ज़िन्दगी से ऊब होकर असंतुष्ट जीवन बिता रही है । ज़िन्दगी की उकताहटों से ज़रा मुक्ति मिलने केलिए वह अपने पुराने प्रेमी को चिट्ठियाँ लिखती रहती है । प्रेमी अमित को लगता है कि वह किसी पिंजरे में कैद है और वह बार बार उस पिंजरे की विवशता को ज़बरदस्ती ओढना चाहती है ।

एक रेल दुर्घटना में शिरीष अंधा हो गया है । अस्पताल में उसकी शुश्रूषा केलिए आनेवाली नर्स शशि है । अब तो मधु अंधे शिरीष को पूर्ण रूप से इनकार करना चाहती है । ऐसी अवस्था में उसे अस्पताल में छोडकर मधु अमित के साथ चलने केलिए तैयार हो जाती है । अमित पहले की जैसी ममता रख नहीं सकता । फिर भी अमित उसकी देखभाल करता है, दिमाग संबंधी बीमार से पीडित मधु को डॉक्टर के पास ले जाने केलिए तैयार हो जाता है । दोनों रेल गाडी में यात्रा कर रहे हैं । रेल गाडी में मधु कभी कभी बेहोश की हालत में पड जाती है । वह अमित के सामने अपने को सुरक्षित न समझती है । उसकी

ऐसी स्थिति में किसी समय अमित भी उसे छोड़कर गायब हो जाता है । नींद खुलने पर अमित को न देखने के कारण वह गाड़ी का चेन पकड़कर खींच लेती है । गार्ड आकर उसे पीछे भुआली स्टेशन जाने के इन्तज़ाम करने का आदेश देता है । उस मरीज़ की शुश्रूषा करने का भार स्वयं स्वीकार कर वहाँ नर्स शशि आ जाती है । उसी गाड़ी में शशि भी शिरीष के साथ सैर कर रही थी ।

अस्थिर मन की डगमगाहट

ज़िन्दगी की पराजय में व्यक्ति की मानसिक चंचलता प्रमुख कारण बन जाती है । चंचल व्यक्ति हमेशा पराजित हो जाते हैं । अपने मन पर अधिकार रखनेवालों को अक्सर विजय होती है । चंचल चित्तवाले लोग किसी भी कार्य में टिकता नहीं । पलभर में उनकी धारणायें बदल जाती है । उनके मन में एक वस्तु के प्रति आकर्षण है तो भी उससे सुन्दर वस्तुओं को देखने पर वे उसके प्रति अधिक आकृष्ट हो जाते हैं । एकांकी का शिरीष चंचल व्यक्तित्व रखनेवाले आदमी है । प्रयोगशाला में काम करनेवाली अपनी प्रेमिका के बाह्य सौन्दर्य नष्ट होने पर उसकी उपेक्षा करने में उसकी चंचल मानसिकता का परिचय मिलता है । शशि से भी सुन्दर मधु से शादी करना, हमेशा उसकी यादों में शशि का आना आदि उसकी चंचलता व्यक्त करते हैं । शशि के प्रति किये गये अन्याय के कारण उसके मन में हमेशा एक अपराध भावना छा जाती है कि वह स्वयं यह प्रश्न करता है - "क्या रूप बदल जाने से दृष्टि भी बदल जाती है ।"[1] एकांकी में लक्ष्मीकांत वर्मा ने शिरीष को पूर्ण रूप से चंचल

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 73

व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है ।

मधु की स्थिति भी इससे बिलकुल भिन्न नहीं । मधु के मन की चंचलता के कारण ही वह अपने प्रेमी अमित को भूलकर शिरीष के सौन्दय के पीछे पडती है, उसकी पत्नी बनती है । उसका चंचल मन पारिवारिक जीवन में भी सुख की पूर्णता न पाता । अत: शिरीष की पत्नी बनने के बाद भी वह अपने पुराने प्रेमी के पास लौटना चाहती है । जिस सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वह शिरीष की पत्नी बनी थी उस सौन्दर्य के नष्ट हो जाने पर शिरीष के प्रति उसकी सारी कामना टूट जाती है । दुर्घटना में अंधे बने शिरीष को अस्पताल में अकेले छोडकर अमित के साथ भाग जाने का जो दुस्साहस उसने किया उसके पीछे भी उसके मन की चंचलता ही काम कर रही है । चंचल चित्तवाले लोगों को एक न एक दिन अपनी ओर से हुई भूल के कारण पछताना पडेगा, हरगिज़ उसे चैन और शांति न मिलेगा । मन में छिपी रहनेवाली अपराध भावना रह रहकर उसके मन को सताती रहेगी । ज़िन्दगी में सौन्दर्य को सब कुछ माननेवाली मधु अंत में यह सत्य समझ लेती है कि ज़िन्दगी में सौन्दर्य से भी बढ़कर मूल्यवान अन्य कुछ चीज़ें हैं । अपने सौन्दर्य पर गर्व करनेवाली मधु की बाद में मस्तिष्क की बीमारी से बुरी तरह ग्रस्त हो जाने के कारण क्या हालत होती है यह अमित के शब्दों में स्पष्ट है - "यह ज़िन्दगियाँ जैसे झेलने से भी बच रहती है, इसमें कुछ ऐसा है जिसे झेला नहीं जा सकता, कुछ अजीब है मधु, यही मधु तो है - - - आज से दस वर्ष पूर्व लगता था मोम और फूल को गला कर

इसका सारा जिस्म रचा गया था ।"[1] मधु का पछतावा भरा स्वर उसके अन्तर्मन के तनाव को बिलकुल स्पष्ट कर देता है - "मेरी शक्ल मत देखो, -- यह रूप, यह शरीर, यह सब सारे श्रृंगारों के बावजूद - - - सारे श्रृंगारों के बावजूद - - - शिरीष - - - शिरीष - - -"[2] एक क्षण भी मधु के मन में चैन नहीं मिलता । बीती हुई घटनायें उसके मन को रुग्ण बना देती है । उसी ने ही शिरीष को शशि से छीन लिया था । बेहोशी की अवस्था में उसे ऐसा लगता है - "शशि की आँखें मुझे निगलने को दौडी आ रही है - -"[3] उसमें इतनी अधिक बेचैनी है कि स्लीपिंग पिल्स निगलने से भी वह सो नहीं सकती । लाखों कोशिश करने के बावजूद भी वह अपने अतीत को भूल न सकती जो उसके शब्दों से ही स्पष्ट है - "कैसे भूल जाऊँ । अतीत तो भूत बनकर मेरे पीछे पडा है - - - ।"[4] जब व्यक्ति के मन की अपराध भावना चरम सीमा को भी लाँघती है तब वह अपने आपको अकेलेपन की स्थिति में महसूस करता है । डाक्टर से मिलने केलिए अमित के साथ ट्रेन में यात्रा करते वक्त मधु का बिलकुल परेशान हो जाना, उसे ऐसा लगना कि भयानक सपने आकर उसे घेरता है और उसे ऐसा डर लगना कि अमित उसे छोडकर खिडकी से कूदकर बाहर जा रहा है - उसके बेचैन मन का सूचक है । अंत में उसका वहम सत्य ही सिद्ध होता है । जैसे वह अपने अंधे पति को अकेले छोडकर भाग निकली वैसे अमित भी ट्रेन में उसे अकेले छोडकर कहीं भाग जाता है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 70
2. - पृ. 71
3. - पृ. 75
4. - पृ. 82

ठोस व्यक्तित्व रखनेवाले पात्र के रूप में शशि को दिखाया है। प्रयोगशाला की दुर्घटना में कुरूप होने पर भी वह निराश नहीं हो जाती है। इस विरूपता के कारण से ही वह अपने प्रेमी से भी उपेक्षित की गई थी। फिर भी वह चंचल नहीं हो जाती। बाद में वह प्रयोगशाला का काम छोडकर अस्पताल में नर्स बन जाती है। उस अस्पताल में रेल दुर्घटना में पडकर अंधा होकर आनेवाले शिरीष की शुश्रूषा में वह रत हो जाती है। पत्नी मधु से उपेक्षित शिरीष की जीवन भर शुश्रूषा करने का भार भी वह स्वयं लेती है। गाडी में अपने प्रेमी से उपेक्षित रोगग्रस्त मधु की सेवा का दायित्व भी अपने ऊपर झेल लेती है। अपने प्रेमी शिरीष को छीननेवाली मधु के प्रति प्रतिहिंसात्मक भावना के बदले उसने प्रेम ही दिखाया है। मधु से उसको कोई घृणा नहीं। मूल्य शोषण की दुनिया में मूल्यों को ऊँचे उठानेवाले इने गिने व्यक्ति भी हैं - लक्ष्मीकांत वर्मा ने शशि के द्वारा इसे व्यक्त किया है।

वास्तविक प्रेम बाह्य सौन्दर्य पर आधारित नहीं है। आन्तरिक सौन्दर्य की पहचान होने पर ही प्रेम यथार्थ हो जाता है। एकांकी के अधिकांश पात्र बाह्य सौन्दर्य को महत्व देनेवाले हैं। इनके बीच मात्र शशि में ही आन्तरिक सौन्दर्य की झलक मिलती है। शशि का प्रेम सच्चा है, निस्वार्थ है। वर्षों पुराने प्रेम संबंध के भंग होने का एकमात्र कारण शशि की जो विरूपता थी, बाद में शिरीष के उसी विरूपता के शिकार होते वक्त उससे प्रतिशोध लेने के बदले शशि उसकी सेवा शुश्रूषा करती हुई

अपने पवित्र प्रेम का आदर्श ही दिखाती है । निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मूल्यपातन के इस युग में भी, जहाँ प्रेम को मन बहलाव एवं समय काटने का उपाय मात्र समझनेवाले लोगों के बीच में पुनीत प्रेम के आदर्श को ऊपर उठानेवाले लोग भी मौजूद हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा ने प्रेम के इस नये स्वरूप को नये सिरे से टटोलने की कोशिश अवश्य की है ।

अर्थभावग्रस्त आदमी के बौने व्यक्तित्व की पहचान :

"रबर का बबुआ"

हर एक व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व होता है । व्यक्तित्व को बनाने में और बिगाड देने में परिवेश का बडा हाथ है । जिस सामाजिक परिवेश में व्यक्ति का पालन पोषण होता है उसका असर स्वाभाविक रूप से उस पर पडता है । आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ मानव ज़िन्दगी धीरे धीरे यान्त्रिक होती जा रही है, हम सब इस नंगे सत्य का गवाह बनते हैं कि हर एक आदमी का व्यक्तित्व सामाजिक परिवेश के दबाव से बुरी तरह ग्रस्त है । कुछ लोग जिजीविषा की प्रेरणा से अपना व्यक्तित्व गँवा देने केलिए मजबूर हो जाते हैं तो कुछ लोग स्वार्थ पूर्ति केलिए अपना व्यक्तित्व गिरवी रखने में भी हिचकता नहीं । ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में यह अराजकता घर कर चुकी है । अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने की इच्छा रखनेवाले आदमी को भी दूसरों के इशारे पर चलना पडता है । उसकी स्थिति उन कठपुतलियों की जैसी बन

जाती है जिसमें चाबी भर जाती है तो उछलता है, कूदता है, दौडता है, हँसता है, रोता है और चाबी खतम हो जाती है तो नीचे ढह जाती है । मानव की इस लाचारी की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति लक्ष्मीकांत वर्मा के एकांकी "रबर का बबुआ" में मिलती है ।

इस एकांकी में अर्थाभाव से पीडित मनुष्य की दयनीय स्थिति का चित्रण है । जिन्दगी चलाने केलिए अधिकारियों के सामने अपना अस्तित्व खोकर स्वयं रबर का बबुआ बन जाने केलिए अभिशाप्त लोगों की कहानी है ।

एक पेपर मिल में काम करनेवाले विनय, विपिन, सुरेन्द्र, बडे बाबू आदि कर्मचारियों के बॉस है फिलिप । बॉस और उसके कर्मचारी विनय एक ही क्लब के सदस्य हैं । क्लब के नाटक में विनय हीरो का पार्ट कर रहा है जबकि मिस शकुन हीरोयिन है ।

एक दिन नाटक का टिकट बेचने केलिए शकुन उनके दफ्तर आती है । टिकट लेने केलिए वे लोग तैयार नहीं है क्योंकि टिकट के दाम से वे अपने बच्चों को खिला सकते हैं । शकुन को कर्मचारियों का व्यवहार अच्छा नहीं लगता । उनके मत में इन लोगों को कर्टसी छू तक नहीं गयी है । वह सीधे फिलिप के पास जाकर शिकायत करती है और इसका दुष्परिणाम विनय को भोगना पडता है । फिलिप के मन में पहले से ही विनय के प्रति द्वेष था । क्योंकि वह जानता है कि विनय और शकुन का पूर्व परिचय था । प्रतिकूल

<u>बेकारी से पीडित शिक्षित वर्ग</u>

उच्च शिक्षा प्राप्त युवक-युवतियों केलिए बेकारी एक पेचीदी समस्या बन गयी है । बडी बडी उपाधियाँ अर्जित करनेवाले, उसी के अनुरूप नौकरी पाने में बिलकुल असफल बन जाते हैं । अपने आर्थिक अभाव की मजबूरी में आकर उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को कोई भी नौकरी अपनानी पडती है । जो काम वह करता है उसमें उसका मन तनिक भी न लग जाता है । मात्र कुछ सिक्कों केलिए ही वह काम करता है । यदि उसका अधिकारी लोग निरन्कुश हैं तो मन - पसन्द नौकरी की खोज में विफल होकर, प्राप्त नौकरी करने केलिए अभिशप्त व्यक्ति की हालत और भी बिगड जाती है ।

आज निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के दफ्तरों में अधिकारी लोग और निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के बीच एक गहरी दरार मौजूद है । निम्न श्रेणी के कर्मचारी अपना स्वतन्त्र विचार बनाये रखने केलिए भी असफल हो जाते हैं । दम घुटनेवाले ऐसे एक परिवेश में नौकरी करते हुए आदमी का व्यक्तित्व धीरे धीरे लुप्त हो जाता है और वह एक रबर का बबुआ बन जाता है ।

एक पेपरमिल में पचास रुपये मासिक वेतन पर काम करनेवाला क्लर्क विनय बी. ए. एल. एल. बी. उपाधिधारी है । उसका अपना कोई स्वतन्त्र विचार नहीं है, जैसे उसका कथन है - "मेरी आवाज़ तो उसी दिन खत्म हो गयी जिस दिन मैं ने पेपर मिल्स में नौकरी की ।"[1] दफ्तर के उसके

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 124

परिस्थिति के कारण विनय शकुन को छोडकर सुधा से शादी करने केलिए विवश हो जाता है । फिलिप के मन में शकुन के प्रति मोह है, लेकिन शकुन आज भी विनय के प्रति ही ममता दिखाती है । इसलिए फिलिप विनय से नफरता करता है । फिलिप ने विनय पर यह आरोप लगाया कि उसने अनुमति के बिना क्लब के निमन्त्रण छापने केलिए पेपर मिल्स से कागज़ दिया था । विनय इस आरोप का निषेध करता है । अस्थायी पद पर रहनेवाला विनय तो छुट्टी लिये बिना नाटक के रिहर्सल केलिए चल रहा है । इस कारण से भी विनय को फिलिप की डाँट-फटकार सुननी पडती है । फिलिप के ऐसे व्यवहार से विनय के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है । वह नाटक खेलने से इनकार कर देता है ।

अगले क्षण विनय को फिलिप का खत मिलता है । नाटक खेलने केलिए ड्यूटी लीव की अनुमति दे रहा है । और दूसरा खत यह है कि वह नाटक न खेलें तो उसे नौकरी छोडनी पडती है । वह इस्तीफा देने केलिए तैयार हो जाता है । लेकिन सुरेन्द्र, बडे बाबू, विपिन आदि लोगों ने ज़िन्दगी की याद दिलायी । ज़िन्दगी आगे चलाने केलिए, अर्थाभाव की बुरी पकड से बचने केलिए वह अंत में नाटक खेलने का और नौकरी जारी रखने का निश्चय कर लेता है । विनयकुमार बी. ए. एल. एल. बी. भी अंत में बॉस के इशारों पर नाचनेवाले रबर का बबुआ बन जाता है । अपने व्यक्तित्व पर बल देनेवाले मनुष्य स्वयं रबर का बबुआ बन जाने केलिए अभिशाप्त हो जाता है ।

सहकारियों ने, उसकी पत्नी ने उसे रबर का बबुआ माना है । साथ ही उन पर व्यंग्य भी करते हैं - "यह भी रबर के बबुए के समान हैं, इनका अपना कुछ नहीं है, सब दूसरों का है, दिमाग-फिलिप- मेरा मत फिलिप सुपरिण्टेण्डेण्ट है न दफ्तर का - - उसका है, दिल शकुन का है, घर आप का है, कलम ससुराल की है, मिज़ाज उत्साह का है ।" [1] विनय की सबसे बड़ी कमज़ोरी है कि वह अपने मन का मालिक रहने के लिए प्रयास करता है पर वह प्रयास व्यर्थ ही निकलता है । शकुन के साथ जो पूर्व प्रेम संबन्ध था वह इसलिए टूट गया कि नौकरी मिलने की ललक में उसने कुरूप सुधा से शादी की और ससुराल की आर्थिक सहायता से उसे नौकरी मिल गयी । अपने प्रेम को तिलांजलि देते हुए उसे जो नौकरी हाथ आयी वह उसके अतृप्त मन को और भी रुग्ण बना देनेवाली थी । एक ओर उसकी ज़मीर यही चाहती थी कि फिलिप जैसे निरंकुश अधिकारियों के सामने कभी भी अपना सिर न नवाये, जैसे उसका कथन है - "अपने मन का मालिक मैं हूँ, मुझ से यह मत छीनिए ।" [2] इसी प्रेरणा से वह अपनी नौकरी से इस्तीफा देने तक का निश्चय कर लेता है । दूसरी ओर बेकारी की समस्या मुँह बाये उसके सामने खड़ी रहती है और भूखे परिवार की याद आती है । इस अन्तर्द्वन्द्व में उसे अपनी अन्तरात्मा की पुकार को अनसुना करना पड़ता है । परिणाम यह निकलता है कि वह अधिकारी के इशारों पर नाचनेवाला रबर का बबुआ बन जाता है । इसी असलियत की ओर संकेत करते हुए दफ्तर का बड़ा बाबू जो कुछ कहता है वह बिलकुल सही लगता है - "इस पेपर मिल की नौकरी

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 121
2. - पृ. 128

में सेठ की मरजी, साहब के इशारे, फाइल्स का लेखा - जोखा, यही सब से बडा सत्य है ।"[1] नाटक न खेलने का दृढ निश्चय लेकर नौकरी से इस्तीफा देने का तैयार बैठे विनय को अंत में बडे बाबू से कहना पडता है - "डिसमिसल का खत वापस ले लीजिए । दीजिए, मुझे ड्यूटी लीव वाला आदेश दीजिए । मैं नाटक में अभिनय करूँगा ।"[2] क्योंकि नाटक उसकी नौकरी की शर्त बन गया । उसकी ज़िन्दगी में बडे साहब की सलामी हज़ार नियामत बन गई है । उसके पास अपनी भाषा न रह गई है । उसे दूसरों का लिखा हुआ डायलॉग बोलना पडता है ।

आर्थिक संकट की चक्की में पिसा आदमी

आर्थिक अभाव से बुरी तरह पीडित होकर आदमी रबर का बबुआ बनने केलिए मजबूर हो जाता है । विनय का, प्रेमिका शरन को छोडकर कल्प सुधा से शादी करना, पेपर मिल में अस्थायी पद पर काम करना और उस पर स्थायी रखने का निश्चय लेना - सब के प्रेरणा श्रोत आर्थिक कमी है । दफ्तर के कर्मचारी अर्थाभाव से इतनी अधिक आहत हैं कि किसी मनोरंजक कार्य केलिए खर्च करना वे नहीं चाहते हैं । उनकी विवशता उनके ही वाक्यों से स्पष्ट है - "सिर्फ दो वक्त दाल रोटी खाकर तीस साल से नौकरी कर रहा हूँ, घी के नाम पर पिछले दस सालों से एक बूँद नहीं नसीब हुआ है, आप

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 130
2. - पृ. 131

लोगों को ब्रेक फास्ट, लंच, टी, डिनर वगैरह मिलता है, हमारे बच्चे सिर्फ दाल - रोटी । बेबी - शो में पैसा देने से अच्छा तो है कि एक-एक आने हम अपने बच्चों को दो तो बत्तीस दिन तक कुछ खिला सकते हैं ।"[1]

अमानवीय दफ्तरी परिवेश

अस्थायी पद केलिए नियुक्त होनेवाले कर्मचारियों के साथ उन्नत अधिकारियों का व्यवहार अमानवीय है । उन लोगों के प्रति अधिकारियों का उदास भाव ही है । उनके देरी से आने में या छुट्टी लेने में व्यंग्य करते हैं । यहाँ एक नये क्लर्क ने छुट्टी केलिए दरखास्त भेज दी, उसकी बीवी सख्त बीमार से अस्पताल में पड़ी थी । इस पर फिलिप का कथन अधिकारी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है - "टेम्परेरी आदमी, छुट्टी है ही नहीं, उसे नोटिस भेज दीजिए । समझ में नहीं आता लोग बीवियों के पीछे इस कदर परेशान क्यों रहते हैं ?" [2]

पुरुष का खिलौना बनी नारी

प्रचार केलिए नारी का उपयोग करना आज फैशन हो गया है । लोग नारी की सहायता से हर क्षेत्र में लाभ उठाना चाहते हैं । क्लब के अधिकारी वर्ग टिकट बेचने केलिए शकुन को भेजती है जो स्वयं नाटक की हीरोयिन है । दफ्तर सुपरिण्टण्डेण्ट अपने क्लर्क विनय को दोषी ठहराने

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 101

2. - पृ. 108

केलिए शकुन को माध्यम बनाता है । उन्होंने कहा कि विनय को शकुन के कार्यों पर हाथ डालने की आवश्यकता नहीं ।

अपनी विवशता से ज़िन्दगी गुज़रने केलिए नाटक खेलनेवाली नारियों को भी अधिकारी वर्ग रबर का बबुआ बना लेता है । दरअसल विनय ने ही शकुन को ऐसी एक गिरती हुई हालत में धकेल दिया था । उसकी ज़िन्दगी शराबी फिलिप और शरीफ विनय के बीच टूट गयी है । शकुन अपनी विवशता यों व्यक्त करती है - "मेरी ज़िन्दगी अधूरी है, मेरे सपने टूट चुके हैं, शायद ज़रूरत से ज़्यादा निर्भीक होने के नाते, कहीं मुझमें कुछ ऐसा आ गया है जो बड़ा कटु है, जिसे देखकर लोग मुझे घृणा करने लगते हैं ।"[1]

पुरुष, नारी को अपना हथियार बनाते हैं । नारी विरोध करें तो उसका दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ता है । और स्त्री मजबूर होकर पुरुष का कथन मानने केलिए तैयार हैं तो उनसे अधिक लाभ उठाने का कार्य करते हैं । शकुन इसका उत्तम दृष्टांत है । उसकी ही वाणी में -"स्त्रियों केलिए और रास्ता ही क्या है, अगर वह आज़ाद बनने की चेष्टा करें तो उन्हें घृणा मिलेगी और अगर वह दबी-बुझी सी रहें, तो उन्हें प्रतारणायें मिलेगी ।"[2] शकुन केलिए यही सच निकलता है - "शराब की गंध में शराबोर फिलिप और उसका व्यंग्य ।"[3]

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 117
2. - पृ. 119
3. - पृ. 119

लक्ष्मीकांत वर्मा ने दफ्तरी परिवेश की सारी विडम्बनात्मक स्थिति को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देने केलिए नये प्रयोग को अपनाया है । नाटक के आरंभ और अंत में ठेले पर रबर के बबुए के खिलौने बेचनेवाले को दिखाते हुए एक बिंब - प्रतिबिंब भाव का सृजन किया है । खिलौनेवाला ठीक ही कहता है -

"ले लो बाबू चार आना
रबर का बबुआ चार आना
सस्ता मद्दा चार आना
नया आदमी चार आना
बिक गया बाबू चार आना
रबर का बबुआ चार आना
बिका आदमी चार आना ।" [1]

चरमराते हुए आर्थिक ढाँचा और प्रतिपल बढ़नेवाली बेरोजगारी ने आदमी की ज़िन्दगी को त्रस्त कर दिया है । ईमानदारी का जीवन जीना चाहते हुए भी उसे बेईमान बनना पडता है । आत्मसम्मान से युक्त जीवन यापन उसकेलिए एक चुनौती बन जाता है । इच्छा न होते हुए भी अंत में उसे व्यवस्था के कुचक्र में शरीक होना पडता है । रबर का बबुआ बनना उसकी नियति बन जाती है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 91

चिरस्थायी प्रेम की दर्दीली दास्तान

"परतों की आवाज़"

सामाजिक जीवन में प्रेम का पतन बहुत अधिक होने पर भी यह आशा की बात है कि पवित्र प्रेम पर बल देनेवाले कुछ लोग भी हैं। आजकल प्रेम कभी स्वार्थपरक हो जाता है, कभी आत्मीयता का स्थान तो नष्ट हो जाता है और केवल यौन संबन्धों तक सीमित हो जाता है। ऐसी दुनिया में निस्वार्थ प्रेम पर अडिग रहनेवाले व्यक्ति भी है जिसे हम इन स्वार्थियों के बीच देख सकते हैं। उन लोगों केलिए प्रेम का स्थान पवित्र है, उनका प्रेम वास्तविक है, निस्वार्थ है। उनके प्रियजनों को कोई कष्ट उठाना उनकेलिए सह्य नहीं। उनके दुःखों को वे अपने दुःख के रूप में स्वीकार करते हैं, सुखों में भी समान दृष्टि रखते हैं। प्रेमिका के दुःख से प्रेमी बहुत परेशान हो जाता है। दोनों में से किसी के वियोग से दूसरा तो पागल हो जाता है। साथी के बिना जीना उन केलिए संभव नहीं। उनकी पूर्वस्मृतियाँ हमेशा जागती रहती हैं। स्मृतियों से विवश होकर वह कभी कभी आत्महत्या की बात भी सोचता है। प्रिय के वियोग से व्यक्ति ज़िन्दा दफ्न बन जाता है। "परतों की आवाज़" के जैक्सन ऐसा ज़िन्दा दफ्न आदमी है। लक्ष्मीकांत वर्मा जैक्सन की कहानी उसके परिचित मित्र किटी की यादों से प्रस्तुत करता है।

जैक्सन विले में किराये पर रहने केलिए आनेवाले हैं रोहित और रश्मि। उस मकान में रात होते ही एक दर्द भरी आवाज़ सुनायी पडती है। चारों

और ढूँढने पर भी कोई भी उन्हें दिखलायी नहीं देता । उन्हें ऐसा लगता है कि उस मकान की नींव से यह आवाज़ उठ रही थी । बीच बीच में उठनेवाली परतों की आवाज़ से दोनों डर रहे हैं । एक दिन आधी रात में भयभीत दोनों के सामने पडोसिन मिस किटी आती है । उसे वहाँ की आवाज़ जैक्सन की सी लगती है । उसने दोनों के सामने जैक्सन की कहानी प्रस्तुत की है ।

जैक्सन एक विधवा का बेटा था । उसके पिता बचपन में ही मर गया । उसके बचपन की साथी थी अस्ना । वह रोज़ उसे देखने आती और दोनों सुनहली झील के किनारे आ जाते थे । एक दिन जैक्सन उसके जूडे में फूल लगाना चाहता था, लेकिन वह नहीं मानती । क्योंकि उन लोगों की जाति में जूडे में फूल सिर्फ दो दिन लगाये जाते हैं । एक तो विवाह के दिन और दूसरा जब सोहागिन मरती है । दोनों दिन पति ही जूडे में फूल लगाता है । एक फूल ज़िन्दगी का है तो दूसरा मौत का । फूल लगाने से उसने जैक्सन को रोक दिया । लेकिन उसने जूडे में फूल लगा दिया है । अस्ना रोती रहती है । यह देखकर वह उसके जूडे से फूल निकालकर स्वयं फेंक देता है । अस्ना को रोती छोडकर वह चला गया । अपनी जाति के अनुसार तब से वह अपने को सोहागिन मानती है । अपने को सोहागिन माननेवाली उस कुमारी के शरीर पर घरवालों से कोडे पडे हैं । पहले उसे घरवालों ने प्रताडित किया, फिर उसे घर से निकाल दिया । वह कई बार जैक्सन को देखने आयी, लेकिन जैक्सन ने उससे नहीं मिला । एक दिन रात में उसे लगा कि अस्ना उसे बुला

रही है । उसने आकर देखा तो अरूना आगे चली जा रही दिखाई पड़ती है । उसका रूप अजीब था । खुले हुए बालों के बीच माँग में उसने सिन्दूर लगा रखा था । जूड़े में वैसा ही सफेद गुलाब, माथे पर बिन्दिया, हाथों में फूलों के कंगन । जैक्सन के उसके निकट आने पर उसने बताया कि उसने धतूरे का फल खाया है । धतूरे का फल इसलिए खाया कि उसे सुनहली झील में जाना है । उस गाँव में उसकी तरह ब्याह रचानेवाली क्वाँरी लड़कियाँ चोटी पर आकर झील में कूद गयी है । वह भी चोटी में चढ़कर झील में कूद जाती है । इस दुर्घटना से जैक्सन पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया । तब से वह सौन्दर्य से डरने लगता है । हमेशा उसे ऐसा प्रतीत होता है कि पहाड़ियों पर गूँजती हुई नीली झील की आवाज़ें उसे बुलाती है । उस दुर्घटना और उसकी यादों को भूलने की कोशिश में वह आदिवासियों की बस्ती छोड़कर हज़ारों मील दूर के नगर में आया है । वहाँ किटी से उसकी मुलाकात गिरजाघर में हुई है । जैक्सन का उलझा व्यक्तित्व, बिखरे बाल, अजीब खायी सी मुद्रा आदि से वह बहुत अधिक प्रभावित हुई है । प्रथम भेंट में ही किटी ने "उसे अपनी क्वाँरी प्यास दी थी ।"[1] वह उसके वश में थी । किटी के प्रति जैक्सन का लगाव अवश्य होता है, लेकिन वह हमेशा किटी से दूर रहने का प्रयास करता है । कभी कभी किटी उसे अरूना सी लगती है । फिर भी वह अपने मन से चाहता है कि किटी उससे घृणा करें । क्योंकि वह किसी को भी अपने प्रेम का हिस्सेदार बनाना नहीं चाहता । तो भी किटी के मन में उसके प्रति विशेष आकर्षण है । उसका प्रेम विशेष प्रकार का है । जैक्सन का भाव समझते हुए भी वर्षों से उसके साथ रहती है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 156

उसकी सेवा करने में वह अपनी खुशी मानती है। जैक्सन अपनी वेदनाओं के साथ ज़िन्दगी गुज़रना चाहता है। लेकिन कभी कभी उसकी यादों के कारण वह बहुत परेशान हो जाता है। एकदम वह मानसिक और शारीरिक पीडा का शिकार बन गया है। वह कैन्सर के दर्द से और अपनी पूर्वस्मृतियों से तडप रहा है। वह इस ज़िन्दगी से ऊब चुका है और पलायन करना चाहता है। लेकिन आत्महत्या करने की ताकत उसमें नहीं है। शराब की नशे में अपनी पीडा को छिपाने के श्रम में भी वह असफल हो जाता है। लिवर कैन्सर से पीडित उसे किटी शराब पीने से रोकती है। किटी का दुःख वह पहचानता है और उस दुःख का जिम्मेदार खुद अपने को मानते हुए और एक रास्ता ढूँढ निकालना चाहता है। वह किटी से प्रार्थना करता है कि उसे मैन होल में डालकर लोहे के तवे लगा दें। किन्तु हर वक्त उसके वचन का पालन करनेवाली किटी इस केलिए तैयार नहीं हो जाती है। अचानक एक दिन रात में वह गायब हो जाता है।

आठ दिन से जैक्सन का कोई पता नहीं है। पुलिस उसकी तलाश कर रही हैं। उसी वक्त जैक्सन का एक आश्रित डॉ. मदन वहाँ आकर किटी पर दोषारोपण करता है कि किटी ने जैक्सन की जायदाद केलिए उसकी हत्या की है। पहले डा. मदन किटी से शादी करना चाहता था, किटी की उदासीनता देखने पर वह उसके प्रति घृणा रखता है। मौका मिलने पर प्रतिशोध भावना से पुलिस को ले आया है। पुलिसवाले आकर उसे गिरफ्तार करके ले जाते हैं क्योंकि तीन सालों किटी जैक्सन के साथ रहती है। उनके जाने के बाद जैक्सन वहाँ आता है, रोहित और रश्मि

के सामने यह बताता है कि वह मैन होल से वापस आ रहा है । आठ दिनों तक उस अंधकार में भटकने से उसका दर्द उससे रूठ गया है, उसे एक नयी रोशनी मिली है । जैक्सन को देखकर रोहित और रश्मि समझते हैं कि वह अंतिम घड़ियाँ गिननेवाला है । तब भी उसे रश्मि अस्ना सी लगती है । रश्मि को देखने पर उसे अस्ना समझकर अपने निकट आने को कहता है -"मेरे सिर पर हाथ रखो, झिझको नहीं, डरो नहीं, मैं मुरदा नहीं हूँ, मैं प्रेत नहीं हूँ, मैं ज़िन्दा आदमी हूँ ।"[1] वह अंतिम साँस लेते समय भी अस्ना की याद कर रहा है, अस्ना का नाम रटते रटते आखिरी साँस लेता है ।

भावुक मन की प्रतिक्रियायें

प्रियजनों के वियोग से मनुष्य बहुत परेशान हो जाते हैं । यह दु:ख उसे पागल बना देता है । वह कभी कभी अपने को भूल जाता है, ज़िन्दगी से पलायन करना चाहता है । खुदकुशी करने का साहस न होने के कारण वह पूर्वस्मृतियों की यादों में जीने के लिए विवश हो जाता है ।

प्रेमिका के नष्ट हो जाने पर जैक्सन बड़ा दु:खी होता है । वह प्रेमिका की अचानक मृत्यु के बाद उदास हो जाता है । हर परिचित वस्तुओं में उसे अपरिचित भाव लगता है । उसका मन हमेशा बेचैन रहता है । एकाकी मन कहीं कहीं वह अपनी बेचैनी स्पष्ट करता है । सुन्दरता के प्रति उसके मन में घृणा की भावना छा जाती है । वह डरता है कि सौन्दर्य देखने से वह घुट घुटकर मर जायेगा । क्योंकि उसे लगता है कि अपने चारों ओर असुन्दर

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 166-167

ही असुन्दर है, चारों तरफ गन्दगी ही गन्दगी, बिकती हुई ज़िन्दगियाँ, भ्रष्ट सौन्दर्य, खनकती हुई आवाज़ें, मुरदा हँसी, खामोश दीवारें, मज़बूरियाँ, मज़बूरियों से घुटती हुई साँसें हैं। वह कहता है - "हर सुन्दर चीज़ में एक छिपी हुई आग है जो जब दूसरों को नहीं जला पाती तो खुद को जला लेती है।"[1] इन सब को भूलने केलिए वह शराब पीने लगता है। हर कहीं उसे घुटन मालूम होती है। उसका यह कथन अधिक स्पष्ट करता है - "पता नहीं यह मेरे अन्दर है, यह बाहर। हर सुन्दर को जब मैं किसी असुन्दर के साथ देखता हूँ तो लगता है जैसे मैं नहीं मेरी सारी ज़िन्दगी ही बोझ बन गयी है - - - बोझ - - - महज़ बोझ।"[2] शान्ति की खोज में गाँव छोडकर नगर आने पर भी उसे चैन नहीं मिलता। वह हमेशा पूर्वस्मृतियों के घेरे में है। उस सुनहली झील की आवाज़ें उसे बुला रही है जिसके किनारे उसने अस्ना के साथ समय बिताया था। गिरजाघर में किटी उसे अस्ना सी लगती है। लेकिन किटी अस्ना नहीं - यह जानने पर वह चाहता है कि किटी उससे नफरत करें। क्योंकि वह अपने प्रेम को बाँटना नहीं चाहता। वह जीना नहीं चाहता है। ज़िन्दगी ने अपने साये से उसे दूर फेंक दिया। ज़िन्दगी उस पर भारी पड रही है। उसे कहीं सुकून नहीं मिलता, कहीं आराम नहीं मिलता। उसे लगता है - "मैं किसी ज्वालामुखी के बीच ज़िन्दा सुलग रहा हूँ - - सारी फिज़ा से यह रेंगनेवालों के हँसी, कहकहे और व्यंग्य मुझे घेर लेते हैं। मेरा दम घुटने लगता है।"[3] लेकिन वह किटी को रोक नहीं

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 152
2. - पृ. 140
3. - पृ. 146

सकता क्योंकि वह उसकी मजबूरी है । ज़िन्दगी से भागने की चाह में उसकी विह्वलता अधिक स्पष्ट है । वह किसी तहखाने में कूदकर ज़िन्दगी से छिपा रहना चाहता है । इसी उद्देश्य से ही उसने मैन होल में कूद लिया है । वहाँ से आनेवाली उसकी दर्द भरी आवाज़ उसकी मानसिकता स्पष्ट करती है - "मैं एक भटकती हुई आवाज़ हूँ, सुनो, अरे ओ सुनो - - । कोई नहीं सुनता ? कोई तो सुनो ? मैं ज़िन्दा दफ़न हूँ । यह नालियों का पानी, यह सडाँध, यह गलीज़, यह घुटन । अहँ, अहँ, अरे ओ सुनो, सुनो, कोई तो सुनो ।" [1]

एकांकीकार ने उसकी व्यथा को नेपथ्य की ध्वनियों द्वारा अधिक उद्दीप्त किया है । बीच बीच में पहली आवाज़, दूसरी आवाज़ आदि के रूप में चित्रित किया है, जैसे -

"पहली आवाज़ - दुनिया में क्या नहीं
खरीदा जाता मियाँ, चलो, यह हुस्न,
यह इश्क सब फरेब है ।
दूसरी आवाज़ - ला यह गुलाब का
फूल मुझे दे दे । देखूं तो मेरे जूडे
में यह भला लगता है ?" [2]

यहाँ जैक्सन के अन्तर्मन का संघर्ष व्यक्त होता है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 138

2. - पृ. 141

आदमी अपने मानसिक भाव प्रकृति में भी देखने के लिए तत्पर है । मनुष्य की मानसिकता की झलक प्रकृति में ही दिखायी पडती है । व्यक्ति अपनी खुशी की अवस्था में अपने चारों ओर सन्तोषजनक वातावरण देख सकते हैं । उसके दु:ख का भी प्रतिबिंब प्रकृति में दिखायी पडता है । व्यक्ति अपनी अवस्था प्रकृति में आरोपित करता है ।

अस्ना की मृत्यु के बाद उसे सारा दृश्य असुन्दर प्रतीत होता है । फूलों से भरा लॉन और साँझ की रंग बिरंगी धूप आदि उसे आन्तरिक घुटन लगती है । उसे लगता है - "मैं घुट घुट कर मर जाऊँगा । ये फूल, यह रंग - बिरंगे फूल, ये माहताबी, सुनहले, सुर्मई फूल - यह सब हज़ार - हज़ार आँखों से मुझे घूरने लगते हैं ।" [1] किटी जैक्सन के प्रति विशेष ममता रखती है । किन्तु जैक्सन अपना प्रेम बाँट नहीं सकता । उसका ही कथन है - "तुम्हारा जिस्म जो मेरी पुतलियों में है जाने क्यों इसमें तुम्हारी सुन्दरता बिलकुल बर्फ सी ठण्डी लगती है । लेकिन यह है इसलिए क्योंकि मैं अपने होश में नहीं हूँ ।" [2] वह किटी से इसका सुख छीनना नहीं चाहता । जब वह किटी को देखता है तब वह उसकी बडी बडी आँखों में उदास मछलियों की प्यास महसूस करता है । तब उसे लगता है उसकी इन पुतलियों का एक तूफान चला आ रहा है । और उसे लगता है वह उसकी पुतलियों के घने बादल, सारा उजाला, सारी रोशनी पी जाना चाहता है । अपने दु:ख के कारण से ही वह प्रकृति में भी दु:ख महसूस करता है ।

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 140

2. - पृ. 144

पवित्र प्रेम का यशोगान

लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस एकांकी में प्रेम का जो नया रूप प्रस्तुत किया है वह विलक्षण ढंग का है । प्रेम की विचित्रता नाटक के तीनों पात्रों में लबालब भरी हुई है । इनकी तुलना इतिहास की लैला-मजनू, रोमियो-जूलियट आदि से ही की जा सकती है । प्रेमिका की मृत्यु होते वर्षों बाद भी उसकी यादों में जीनेवाले जैक्सन के अजीब व्यक्तित्व से आकर्षित किटी, अपने पवित्र प्रेम की बलिवेदी पर अपने आपको कुरबान करनेवाली अस्ना आदि में उनकी अपनी विशेष प्रकार की मानसिकता झलकती है ।

प्रथम दर्शन से ही किटी जैक्सन पर आकृष्ट हुई । उसकी अजीब मुद्रा, उलझा व्यक्तित्व, खामोशी आदि में उसे आकर्षित करने की क्षमता अवश्य थी । उसका ही कथन है -"जैक की लापरवाहियों में उसकी गहरी उदास आँखों में जाने कैसी कोशिश थी जो मुझे बाँध ले रही थी ।" [1] दोनों के बीच अधिक जान पहचान हुई । जैक्सन के प्रति उसके आकर्षण को वह अपनी मजबूरी समझती है । जैक्सन से उसकी ऐसी मुद्रा का कारण जानने पर प्रेमिका की स्मृति में जीनेवाले जैक्सन के प्रति उसका प्यार बढ़ता जाता है । वह यह भी जानती है कि जैक्सन के मन में उस के लिए कोई स्थान नहीं, पूर्वस्मृतियों के साथ जीनेवाला वह चाहता भी है कि किटी उससे घृणा करें । किन्तु वह अपना प्यार देती रहती है । ऐसा होने पर भी उसकी ममता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है क्योंकि जैक्सन उसकी मजबूरी बन

1. आदमी का ज़हर - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 139

गया था । लिवर कैन्सर से पीड़ित जैक्सन की शुश्रूषा में वह रत हो जाती है । उसकी ममता जैक्सन तक सीमित है, उसकी जायदाद से नहीं । विडम्बना की बात यह है कि किटी पर जैक्सन की हत्या का दोष आरोपित कर गिरफ्तार किया जाता है ।

अपनी प्रेमिका की मृत्यु के बाद उसकी यादों में जीनेवाला प्रेमी जैक्सन एक अजीब ढंग के प्रेम का सन्देश ही सुना रहा है । विरह के मारे रो रोकर अपनी ज़िन्दगी को खुद तबाह करनेवाली प्रेमिकायें विरलें नहीं, बल्कि प्रेमी पुरुष इने गिने हैं, जैक्सन इनमें से एक है । पूरे एकांकी में लक्ष्मीकांत वर्मा ने प्रेम की इसी पवित्रता को उजागर करने का प्रयास किया है.

महानगरीय परिवेश में मूल्यहीनता का तीखा एहसास

"अपना अपना जूता"

आज का सामाजिक जीवन नैतिक और मानवीय मूल्यों से क्रमशः पतित होता जा रहा है, विशेषकर यह पतन महानगरीय ज़िन्दगी में प्रतिदिन गहरा होता जा रहा है । डकैती, शोषण, लूटमार आदि के रूप में भ्रष्टाचार की जड़ें समाज में जम गयी है । यहाँ मनुष्य दोहरे व्यक्तित्व में जी रहे हैं । वह अति भौतिकता और जीवन की कृत्रिमता से त्रस्त है । उनकी कथनी और करनी में अन्तर है । ये "होशियार किस्म" के लोग समाज के रक्षक के नकाब पहनते हैं, पर वे समाज के भक्षक ही निकलते हैं । ऐसे लोगों को

बेनकाब करने केलिए लक्ष्मीकांत वर्मा ने विसंगत शैली में इस नाटक का सृजन किया है ।

शहर के अमन कायम करनेवाले कान्सटेबिल लैम्पपोस्ट के नीचे लेटा हुआ है । वहाँ शराबी, तमंचावाला और थैलीवाला नकाब लगाये निकलते हैं । चोरी की सामग्री बाँटने की तैयारी कर रहे हैं । लैम्प पोस्ट से आनेवाली रोशनी से वे डरते हैं, लेकिन उसके नीचे लेटनेवाले कान्सटेबिल से नहीं । नेपथ्य से आनेवाली आवाज़ इसकी सूचना देती है - "रोशनी बड़ी खतरनाक होती है ------ रोशनी में सिर्फ आदमी ही आदमी रहते है ------ ।" [1] कान्सटेबिल उन्हें नहीं पकडते हैं, नहीं पीटते हैं, नहीं मारते हैं क्योंकि वे लोग एक एक हिस्सा उसे भी देते हैं । डिगा ने इसे स्पष्ट वाक्यों में बताया है - "क्योंकि उन सबने वहाँ पहुँचकर उस सिपाही की पगडी को डण्डे पर से उतारा फिर उसमें कुछ डाल दिया था - - - जब वे चले गये - - - तब उस सिपाही ने अपनी पगडी उठाई और चला गया ---।" नियम के पहरेदार यहाँ आँखें मूँदकर अपना अपना हिस्सा लेकर मौन धारण करते हैं । तीनों नकाबवाले रोज़ आधी रात के बाद वहाँ आते हैं, इसी लैम्पपोस्ट के नीचे बैठते हैं । सब की जेब से इकट्ठा करके रात में बाँट लेते हैं । तीनों लडते हैं, झगडते हैं, आपस में एक दूसरे को पटकते हैं, पीटते हैं और पराजित होकर अपना अपना हिस्सा लेकर चले जाते हैं ।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 9

2. - पृ. 21

इतने अत्याचार करने पर भी वे लोग पकड़े नहीं जाते हैं। पगला साहब जैसे निरीह व्यक्ति नियमपालकों के शिकार बन जाते हैं। ईमानदार रहने पर भी ये लोग पकड़े जाते हैं। मन्दिर से जूते की चोरी करने के कारण वह पुलिस द्वारा पकड़ा गया। पुलिसवालों ने जूते को चोरी की वस्तु कहकर स्वीकार किया और आदमी को छोड़ दिया। ये लोग चोरों से भी जूते जैसे निम्न वस्तु तक हड़पने की इच्छा रखते हैं।

डिगी को एक बूढ़े आदमी को पति के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। अपने असंतृप्त ज़िन्दगी से ऊब जाने के कारण महानगर के एक दूसरे पुरुष जानी से प्रेम करने लगी। लेकिन वह रिश्ता मात्र जिस्म तक सीमित है। धोखे का फल था वह बच्चा। बूढ़े को छोड़कर जानी के साथ जाने पर भी बूढ़े के मन में उसके प्रति आकर्षण है, वह उसे चाहता है। फलस्वरूप बूढ़े की मृत्यु उस युवक द्वारा हुई है।

अपने प्रियतम की खोज में नगर जाने की इच्छा प्रकट करनेवाली डिगी को डिगा रोकता है। उसने समझाया कि "ज़रूरत से ज़्यादा रोशनी अँधा बना देती है।"[1] उनके उपदेशों को अनसुना करके डिगी महानगर जाती है।

तीनों से प्रतिशोध करने के लिए डिगा कटार लेकर घूमता है। नकाबवाले लोगों से छिपकर जाते हैं। पगला साहब और डिगी भी ध्यान से चल रहे हैं।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 30

नकाबवाले चारों ओर घूमकर लेम्पपोस्ट के नीचे आते हैं। उनमें से एक तो जेब से दस रुपये लेकर कान्सटेबिल की पकडी में रख देता है। और तीनों नकाब हटाकर सत्य, शान्ति, हिन्सा आदि की बातें करते हैं। वे लोग दुहराते हैं कि "हमारा सब का सब किसी का है।" [1] वास्तव में उन लोगों के पास जो कुछ हैं वह सब उनका नहीं है, दूसरे लोगों से चुरायी गयी वस्तुयें हैं।

नकाबवाले जानते हैं कि डिगी उनका पीछा करती है। डिगी तो अपने प्रियतम की तलाश में आती है। लेकिन उन लोगों के कार्यों में वह बाधा हो जाती है। तब वे लोग उसकी हत्या करते हैं।

डिगी घायल होकर कान्सटेबिल के सामने गिर पडती है। आँखें खोलने पर चारों ओर देखकर वह लाठी पर टिकी पगडी उठाकर उससे नकाबवाले द्वारा रखे गये नोट निकाल कर देखता है। पगला साहब से डिगी की मृत्यु की बात जानने पर वह नियमपालक पूछता है कि वह क्या करें? और पगला साहब की हँसी उडाता है, फिर लाठी पर टिकी पगडी से नोट निकालकर पगडी सिर पर रखता है। जाते समय खून में तर डिगी को देखकर वह चिल्लाकर भागता है। तब पगला साहब हँसकर डिगी की लाश के पास जाता है और कहता है -

"अपना खून - सबका खून
सबका खून - अपना खून
अपना खून - सबका खून" [2]

....

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 33
2. - पृ. 38

और नेपथ्य से ही यही आवाज़ आती है -

"रामराज्य को लाना है

अक्लमन्द कहलाना है

सबका जूता अपना जूता

अपना जूता सबका जूता

राम राज्य -" [1]

अन्धी न्याय व्यवस्था

वर्तमान समाज में नियमपालकों की आँखों के सामने कई अपराध हो रहे हैं। वे इन अपराधों पर चुप्पी धारण करते हैं। लेकिन अपराधियों को प्रस्तुत करना उनका कर्तव्य रह गया है। यथार्थ अपराधियों से प्रतिफल लेने के कारण अपराधि के रूप में निरीह व्यक्ति को पकड़ना पड़ता है। पगला साहब जैसे व्यक्ति इनके शिकार बन जाते हैं। लोगों ने उसे बाँधा और पकड़ा। अभियोग में जकड़ा कर लांछन लगाया। उसे रस्सियों में बांधकर पालतू बन्दर के समान गली - गली में, नगर-नगर में घुमाया। चाहने पर उन्होंने उसे उठाया और बिठाया। किसी ने उसे रामराज्य का नागरिक कहा और किसी ने स्वराज्य का नागरिक और किसी ने गिक। वह सबकी बात सुनता रहा। वह जानता था कि कभी न कभी वह सुनते सुनते बहरा हो जायेगा। अब तो वह अपने पीठ पर यह लिख कर चल रहा है - "मैं गूँगा नहीं हूँ।" [2] उसे गूँगे का सा व्यवहार करना पड़ता है।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 38

2. - पृ. 22

वह कुछ नहीं बोल सकता है ।

थानेदार की डायरी में चोरी और शराबी का जुर्म नहीं मिलता तो वह अफ्सर की निगाह में छोटा हो जाता है । अपनी क्षमता दिखाने के लिए किसी व्यक्ति को शराब पिलाकर फिर शराब के जुर्म में कैद करता है । दूसरों से जूते तक हड़पने के लिए ये लोग हिचकते नहीं । मन्दिर से जूते की चोरी करने का कारण बताकर पुलिस द्वारा पगला साहब पकड़ा गया । पुलिसवालों ने जूते को चोरी की वस्तु कहकर आदमी को छोड़ दिया । वे चोरों से भी जूते जैसी वस्तु हड़पने की इच्छा रखते हैं ।

व्यक्ति के भीतरी तहों की परख

आज की संस्कृति जो बिलकुल संकट में डूब चुकी आदमी को मुखौटेवाली ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर कर देती है । आदमी बाहर से कुछ और भीतर से और कुछ है । विसंगत नाटकों में आदमी के इस खंडित व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करने का प्रयास हुआ है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने भी ऐसे कुछ खंडित व्यक्तित्ववाले पात्रों का चयन किया है । नकाब डालकर जो तमंचावाला, थैलीवाला, शराबी रात के अंधकार की ओट में अपनी अपनी तिजोरी भरने की कोशिश में लगे हुए हैं, वे दरअसल उच्चपदों पर विराजमान व्यक्ति ही हैं ।

तमंचावाले को, दूसरों को तमंचा दिखाकर लूटनेवालों का प्रतीक मानते हैं और थैलीवाला तो दूसरों से सब कुछ हडपकर अपनी थैली भरनेवालों का प्रतीक है। समाज की असंगत व्यवस्था का कारण बने शराबी, डकैत और शोषक का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। समाज की अवनति का कारण ये तीनों हैं। उनकी दृष्टि में "सब चीजें सब की होती हैं।" [1] वे ऐसे रामराज्य की कल्पना करते हैं कि वहाँ कोई चीज़ किसी की नहीं होती। थैलीवाला स्पष्ट रूप से बताते हैं - "हमेशा दूसरों की ही पीना चाहिए।" [2] आज हर व्यक्ति दूसरों से सब कुछ हडपने की ताक कर रहे हैं, जूते तक दूसरों से छीन लिये हैं।

मनुष्य जो कुछ कहता है उससे बिलकुल भिन्न है उसकी क्रियायें। मौके के अनुसार वह कुछ भी बोल सकता है लेकिन उसका पालन करना उन लोगों के वश की बात नहीं।

इस एकांकी द्वारा लक्ष्मीकांत वर्मा मनुष्य की कथनी और करनी में जो अन्तर है उसे दिखाते हैं। एकांकी के पात्र शराबी, तमंचावाला, थैलीवाला मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति की सूचना देते हैं। वे जो कार्य करते हैं वे सब उनकी कथनी से कोसों दूर है। इसलिए एकांकिकार उन्हें नकाब लगाते हैं।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 25
2. - पृ. 25

समाज की उन्नति पर बड़े ध्यान रखनेवाले लोगों के मत में राज्य को रामराज्य के रूप में लाना ज़रूरी है । वे हमेशा सत्य, अहिंसा आदि की बातें करते हैं । सब लोगों को भाई - भाई समझते हैं । अपना सब कुछ दूसरों का मानने केलिए भी वे तैयार हैं - "हमारा सब का सब किसी का है ।" [1] वे लोग कहते हैं कि "हमें अहिंसात्मक ढंग से व्यवहार करना है ।" [2] अपने को रामराज्य का नागरिक कहते हैं और स्पष्ट करते हैं कि "सत्य और अहिंसा हमारा हथियार है ।" [3] हमेशा सत्य के पक्ष बोलते हैं और असत्य स्वीकार करते हैं । धन कमाने केलिए किसी भी मार्ग को अपनाने में वे हिचकते नहीं ।

सत्य और अहिंसा को अपना हथियार माननेवाले तमंचावाला ने तीन मंजिले मकान से बहुत धन कमाया । शराब के नशा में घर के लोग मग्न हो गये तब तिजोरी खोलकर अपनी थैली भर ली ।

सबको एक परिवार के बतानेवाले थैलीवाले ने जो हीन कार्य किया है वह प्रेम से किया । शहर के जुएवाले अड्डे जाकर दस रुपये की बाजी लगाकर जीत हुई लेकिन और लगाने पर हार गया । फिर नालवाले के पास जाकर बातों से उन्हें प्रभावित किया । वह चुपके से दस सौ सौ के नोट सरका कर वहाँ से चला गया और नालवाला तो उसे पहुँचाने केलिए दरवाज़े तक आया ।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 33

2. - पृ. 33

3. - पृ. 36

हमेशा सत्य की जयकार करनेवाले शराबी तो रोगी बनकर रात बारह बजे अस्पताल गया । नर्स को धोखा देकर वहाँ स्टोर रूम में रखे कीमती इन्जेक्शन की फाइलें चुरायीं । दुवाखाना जाकर फाइलें दिखाने पर पहले वहाँ का आदमी नाराज़ हो गया । फिर उसे हज़ार रुपये दिये । तब शराबी ने पिस्तौल दिखाया और हज़ार रुपये भी माँगा तब उसने वह भी दे दिया ।

वे दूसरों की चीज़ें हड़पने का कार्य ही नहीं मनुष्य की हत्या भी करते हैं । पहले डिंगी के बूढे पति की हत्या भी करते हैं । और अंत में अपने प्रियतम की खोज में आनेवाली डिंगी को भी मृत्यु का दंड देता है ।

स्त्री पुरुष संबन्धों में आत्मीयता का सडन

महानगर के भ्रष्ट परिवेश में स्त्री - पुरुष संबन्ध बिगडता जा रहा है। नर-नारी के आपसी रिश्ते में जिस आत्मीयता की अनिवार्यता होती है वह कहीं लुप्त होती जा रही है । प्रेम के संबन्ध में परंपरा से प्रचलित सारी मान्यतायें बदल गयी हैं । "प्रेम" शब्द महानगरीय भ्रष्ट परिवेश में अपना अर्थ खो चुका है । प्रेम की क्षणिक संवेदना के जोश में नारी पुरुष पर जी खोलकर भरोसा रखती है, समर्पण करती है, पर पुरुष नारी के जिस्म पर अधिक अधिकार चाहता है । इन युवकों केलिए पारिवारिक संबंध एक चुनौती बन गया है । रूढ संबन्धों के प्रति आस्थावान बने रहना उनकेलिए

संभव नहीं । उन संबन्धों के प्रति ये युवक कहीं भीतर से जुडा महसूस भी नहीं कर पाते ।

नारी की दयनीय स्थिति का प्रतीक है नाटक की डिगी । गरीब घर की बेटी होने के कारण डिगी को एक लंगडे बूढे के साथ शादी करनी पडती है । सोहागरात से ही उसे असन्तुष्ट जीवन बिताना पडता है । प्रेम प्रकट करने में असमर्थ होने पर भी डिगी के मन पर हाथ लगाने में वह समर्थ हो जाता है । लेकिन उससे निराश होकर डिगी किसी युवक से प्रेम करने लगी । वह तो मात्र उसके जिस्म के प्रति आकर्षण रखनेवाला है । स्वार्थपूर्ति के बाद वह उसे छोडकर चला गया और प्रियतम द्वारा बूढे पति की भी हत्या की गयी । डिगी अपने जानी की खोज कर रही है । आज वह अकेलापन महसूस कर रही है । अपनी अवस्था को डिगी स्वयं बताती है, उसकी निराशा भरी वाणी है - - -

मैं अकेली हूँ
यहाँ जहाँ रातें लंबी होती हैं
और आदमी सोते हैं
मेरी सोहागरात
उस लापरवाह के साथ हुई थी
जो रोज़ रोज़ एक फूल कोटे में लगाकर
मेरे पास आता था
मेरे मन पर उसके हाथों के स्पर्श हैं
जिसने मुझे प्रेम करने के बदले में

बाइबिल, गीता, कुरान, शैली, कोट्स
की यादें दिलाई थी
मेरी धड़कनों में वह साँस है
जिसमें ये सबके सब सूक्ष्मगन्ध बनकर रहते हैं ।" [1]

डिगी का मोहभंग और अधिक स्पष्ट हो जाता है - - -

" पास खेलते हुए शिव पार्वती
आँखें भटकाती राधा
अशोक वन में बन्दी सीता
मैं हूँ ।
एक अजन्मे सन्तान की माँ
क्यों हूँ - - - - नहीं जानती
कैसे हूँ - - - नहीं जानती ।" [2]

पारिवारिक जीवन संजोने की बड़ी तमन्नायें लेकर अपने प्रियतम की खोज में निकल पड़ी डिगी को अपने प्रेम के उपहार के रूप में मृत्यु ही मिलती है, वह भी अपने प्रियतम के हाथों । अतः प्रेम की क्षणिक अनुभूति और उससे उत्पन्न मोहभंग की स्थिति तथा उसकी दर्दनाक परिणति की तस्वीर एकांकीकार ने खींची है ।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 13 - 14
2. - पृ. 14

दरअसल *प्रतीति* में लक्ष्मीकांत वर्मा ने विसंगत शैली को अपनाते हुए महानगरीय जीवन की असंगतियों और विडम्बनाओं को उधेड़ कर रख दिया है। इन्होंने अपनी शैली में व्यंग्य की धार को तेज़ किया, और न्याय व्यवस्था पर विशेषकर पुलिस अधिकारियों पर बड़ी मार्मिकता से छींटाकशी की है। स्त्री - पुरुषों के बीच के थके और चुके हुए रिश्तों को भी बारीकी से उभारा है।

पनाह खोजती नारी की बेपनाह ज़िन्दगी

" तीसरा आदमी "

लोग नौकरी की खोज में गाँव छोड़कर महानगरों में आने लगे। नगरों में वे किसी न किसी काम करने केलिए मजबूर हो जाते हैं। गाँवों से आनेवालों की संख्या बढ़ने से नौकरी के साथ ही आवास स्थान की कमी भी हो गयी है। वे लोग बस्तियों में रहने लगे जहाँ उन्हें अवश्य सुविधायें न मिली। उनकी ज़िन्दगी नाले में रहनेवाले कीड़े से भी बदतर है। उन्हें कोई लक्ष्य नहीं हो जाता। वे काम करते हैं, भोजन खाते हैं, एक व्यक्ति दूसरे को नहीं पहचानता है, एक ऐसी ज़िन्दगी जी रहा है। दिन भर काम करके लौटनेवाले ये लोग शराब की बोतलों में और वेश्याओं की बिस्तरों में सुख ढूँढ निकालते हैं। "तीसरा आदमी" में लक्ष्मीकांत वर्मा ने ऐसी बस्तियों में रहनेवाले कुछ लोगों की खंडित ज़िन्दगी प्रस्तुत की है।

मोना दीदी, पहला, दूसरा आदि एक ही बस्ती में रहनेवाले हैं । वे मिल में काम करनेवाले हैं । मोना दीदी एक वेश्य है जिसके बारे में उससे संबन्धित लोगों को कोई पता नहीं । वास्तव में वह केतु की पत्नी और बबलू की माता है । दोनों उसके साथ नहीं है । पुत्र किसी के संरक्षण में रहता है । केतु तो बडा डकैत है । वह हमेशा लूटते, चोरी करते अपना जीवन बिताता है । कभी कभी उसे जेल भी जाना पडता है । घर में टिकने केलिए उसे फुरसत नहीं मिलता है । मोना दीदी के पास आनेवाले "पहले" "दूसरे" आदि के समान केतु भी यौन संबन्ध केलिए कभी कभी उसके पास आता है । "पहला", "दूसरा" आदि को केतु से कोई परिचय नहीं । केतु को वे जानते हैं - मोना के पति के रूप में नहीं, मात्र एक "तीसरे" के रूप में । उनकी दृष्टि में मोना दीदी "तीसरे" के प्रति अधिक ध्यान देती है । "पहले" का कथन यह स्पष्ट करता है - "उस दिन रात में जब तीसरा बोखार से बीमार था - - - - मोना परेशान थी - - - - बार बार चीखती चिल्लाती थी - - - - मुझसे बोली - - - - पहले देख - - - - पहले इसकी जान बचा - - - ।"[1] "पहला" तो अपनी पत्नी को छोडकर मोना दीदी के पास आनेवाला है । वह पत्नी के बुरे आचरण बर्दाश्त नहीं कर सकता । घर में बीवी ने उसे खाना बन्द किया है, जेब के पैसे खतम होने पर डाँट देकर घर से निकाल दिया है । उस पर चोरी का इलज़ाम लगानेवाली और शक करनेवाली है । वह उसके ऊपर अपना अधिकार ज़माना चाहती है । ऐसी पत्नी को छोडकर वेश्या के साथ जीवन बिताने केलिए "पहला"

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 63

विवश हो गया। किन्तु मोना दीदी इन लोगों की अपेक्षा "तीसरे" पर अधिक इच्छा रखती है। उस के लिए खाना रखती है, उसकी शुश्रूषा करती है। इसी कारण दोनों में "तीसरे" के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। इसी वक्त जेल से केतु का खत मोना के नाम पर आया है। उसने जेल से छूटकर, कल आने की और बबलू को वापस लेने की बात लिखी है। उसमें जेल से छूटकर, कल आने की और बबलू को वापस लेने की बात लिखी है। उसमें प्रिय मोना लिखा है - यह देखकर "पहला" तो बहुत नाराज़ हुआ। उसके मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि यह "तीसरा" और "केतु" एक ही व्यक्ति है या नहीं। वह केतु के आगमन की प्रतीक्षा में रास्ते में छिपकर खड़ा होता है। पतलून और चेक कमीज़ पहनके आनेवाले केतु को देखकर उसका सन्देह दृढ हो गया है कि केतु "तीसरा" ही है और मोना दीदी का पति है और बबलू के पिता। केतु के आने पर उससे "पहले" की मुठभेड़ हुई। केतु ने "पहले" का खून किया है। हत्या के तुरन्त बाद ही वह मोना से हत्या की बात कहता है और मोना के हाथ पकड़कर अन्दर आने को कहता है। उस वक्त भी वह मोना दीदी के जिस्म का जायका लेने की बात सोचता है। मोना इनकार कर देती है। सहसा पुलिस प्रवेश करके केतु के हाथ में हथकड़ी पहनाती है और उसे लेकर चली जाती है।

आत्मीयता का अभाव और बिगड़ते संबन्ध

पारिवारिक जीवन की दो महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं नर और नारी। स्त्री-पुरुष दोनों परस्पर पूरक हैं। पारिवारिक संबन्धों में समझौते की

भावना अवश्य होनी चाहिए । दोनों में परस्पर प्रेम होना चाहिए । पति और पत्नी अपने अपने व्यवहार से घर को स्वर्ग बना सकते हैं । उसी प्रकार प्यार के अभाव और बुरे आचरण से दोनों पूर्ण रूप से अलग हो सकते हैं । पति - पत्नी अपना कर्तव्य न निभाने पर, गैर जिम्मेदार बनने पर दोनों अपना अपना रास्ता ढूँढ निकालते हैं । दोनों पर दोष आरोपित करने से कोई फायदा नहीं ।

मिल का मजदूर "पहला" गरीबी से बुरी तरह आहत है । उसकी स्थिति नरक से ही कम नहीं है । "पहले" और "दूसरे" का संवाद सूचित करता है -

"दूसरा - यह दुनिया क्या जहन्नुम से कम है ?
पहला - हरगिज़ नहीं ।" [1]

"पहला" पत्नी की बुरी आदत सह नहीं सकता । प्यार की खोज में वह अन्य स्त्रियों के पास जाता है जहाँ उन्हें कोई डाँटता नहीं, समय समय पर खाना खिलाता है । पत्नी को छोडकर अन्य स्त्रियों के साथ जीने के लिए मात्र उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता । पत्नी की गैर जिम्मेदारी एवं प्यार का अभाव "पहले" को ऐसी एक ज़िन्दगी जीने के लिए विवश कर देता है ।

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 47

नारी की स्थिति भी ऐसी है । नारी पति के सामने अपने को सुरक्षित मानती है, आश्रित मानती है । लेकिन उसकी प्रतीक्षाओं के असफल हो जाने पर वह अधिक निराश हो जाती है और अपनी कामनाओं केलिए अनैतिक राहों को अपनाती है ।

मोना दीदी को डकैत पति से बुरा आचरण ही मिलता है । पति से उसे हमेशा धोखा खाना पडता है । घरवालों की देखभाल किये बिना उसका पति घर से भी चोरी करने का प्रयास करता है । घर में भी उसका एक चोर का सा व्यवहार है । मात्र अपनी शारीरिक भूख मिटाने केलिए ही कभी कभी पत्नी के सामने आता जाता है । प्यार के अभाव और पति के गैर जिम्मेदार आचरण के कारण मोना दीदी पूर्ण रूप से निराश हो जाती है । उसे गरीबी और अभावग्रस्तता से घिरी हुई ज़िन्दगी भी गुज़ारनी पडती है । उस केलिए कोई उचित मार्ग न दिखाई पडने पर अनैतिक राहों को अपनाने केलिए मजबूर हो जाती है । यही मजबूरी मोना दीदी को एक वेश्या बना देती है । अपनी ज़िन्दगी के अनुभव पर मोना दीदी ने यह सत्य सीख लिया कि रूपवती नारी की सज - धज को देखने केलिए पुरुष लालायित रहते हैं । ऐसे पुरुषों के संबन्ध में मोना दीदी ने जो बताया है वह बिलकुल ठीक है कि "औरत जो पाश्मी की तरह होती है पाश्मी ----

महानगर में ज़िन्दगी यान्त्रिक बनती जा रही है । वहाँ के शोरगुल में, आपाधापी में, भागदौड में एक दूसरे को पहचानता नहीं, वे बिलकुल

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 7।

अपरिचित हैं, अजनबी हैं । सारे के सारे रिश्ते बिलकुल औपचारिक बनते जा रहे हैं । रिश्तों की वह बुनियादी चीज़-आत्मीयता-गायब हो चुकी जिससे सारा संबन्ध अपना अस्तित्व खो चुका है । दोस्ती में भी यही विसंगति दिखाई पड़ती है । समाज में दोस्ती का भी कोई स्थान नहीं है । अपनी स्वार्थ-पूर्ति केलिए मनुष्य किसी को भी अपना दोस्त बना लेता है और उसके बाद उसे दुश्मन समझता है । आज दोस्ती का असली अर्थ लुप्त हो गया है । पहले दोस्ती का सच्चा अर्थ था, लेकिन आज दोस्ती केवल स्वार्थ का पर्याय बन चुका है । मोना दीदी केलिए खत लानेवाले पोस्टमैन और "पहले" की बातचीत में यही प्रश्न उठता है कि "दोस्त कौन किसका है ?" [1] यह प्रश्न बिलकुल सही है । अब तो कोई भी किसी का भी दोस्त नहीं है । दोस्ती का अर्थ एक साथ बैठकर खाना खानेवालों तक सीमित हो जाता है । यहाँ "पहले" का कथन लागू हो सकता है - "चलो तब तो मेरे दोस्त सारे कैन्टीनवाले सारे होटलवाले हो गए ।" [2] जिगरी दोस्त हरगिज़ अपनी यार को धोखा नहीं देगा । अपनी सुख सुविधाओं को गिरवी रखते हुए भी वह अपने मित्र की मदद करने केलिए हमेशा तैयार रहेगा । लेकिन अफसोस की बात है कि आज के मूल्य-विघटन के इस युग में ऐसे मित्र इने गिने ही मिलते हैं दोस्ती के मुखौटा ओढकर जहाँ तक हो सके अपनी स्वार्थ - पूर्ति में लगे हुए मित्र लोग ही आज हर कहीं मौजूद है । ऐसे व्यक्तियों को बेनकाब करने की कोशिश भी लक्ष्मीकांत वर्मा ने की है । मोना दीदी के घर में आनेवाले

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 58

2. - पृ. 58

पोस्टमैन ने अपने मित्रों से धोखा खायी है । वह व्यंग्य रूप में बताता है कि घर का भोजन वह खुद नहीं खाता क्योंकि उनके मित्र उसे खाने न देते हैं । पत्नी के साथ उनके मित्रों का जो अनैतिक यौन संबन्ध है वह तो स्पष्ट हो जाता है ।

हिंसात्मक परिवेश और परिस्थितियों से टकराकर आदमी कैसे टूटते बिखरते हैं इसका चित्रण एकांकी में मिलता है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने "तीसरा आदमी" में ऐसी एक नारी को चुन लिया है जो परिस्थितियों के दबाव से अपनी मान मर्यादा तक बेचती है । हर एक नारी की अपनी कामना होती है कि उसका अपना एक घर हो, अपने बाल-बच्चे हों और एक पुरूष के हाथों में वह सुरक्षित रहें । लेकिन जब उसे ऐसा एक पुरूष मिलता है जो उसे मात्र शारीरिक सुख-पूर्ति का साधन मानते हुए कुछ सिक्कों की लालच में उसे अन्य पुरूषों के साथ यौन संबन्ध केलिए भी प्रेरित करता है तो उसके सारे अरमान टूटते बिखरते हैं । मोना दीदी की ज़िन्दगी का यही अभिशाप था । मोना और पति के बीच का रिश्ता इतना शिथिल हो गया है कि पति उसकेलिए मात्र एक "तीसरा आदमी" रह गया है । यही अभिशाप कई नारियों को वेश्यावृत्ति केलिए अब भी प्रेरित करता रहता है । इस मुद्दे पर एकांकीकार ने ज़ोर दिया है ।

कथ्य की विभिन्न भंगिमायें

वर्तमान युग के विसंगत और भ्रष्ट परिवेश तथा जीवन में व्याप्त होते निरर्थकता और अवसाद की अनुभूति ही लक्ष्मीकांत वर्मा के एकांकियों का कथ्य बनी है । विसंगत परिवेश और शोषित मनुष्य की पीडा एकांकियों में गूँजती है । कथा कहने के मोह से लेखक मुक्त हैं । नाटकों के समान एकांकी में भी उन्होंने विसंगत शैली अपनायी है ।

उनके एकांकियों में उन्होंने अभावग्रस्तता से उत्पन्न विसंगतियों का और प्रेम के क्षेत्र में आनेवाली विसंगतियों का वर्णन किया है । "आदमी का ज़हर" और "रबर का बबुआ" दोनों एकांकियों में अभावग्रस्तता और उससे उत्पन्न बेचैनी, निम्न मध्यवर्गीय लोगों के जीवन बिताने की मजबूरी आदि का चित्रण है । "आदमी का ज़हर" में उन्होंने आर्थिक अभाव से दमित लेखकीय संवेदना को प्रस्तुत किया है । ज़िन्दगी की निराशा मनुष्य को पागल बना देती है और उसकी बर्बरता मूर्धन्य हो जाती है । मनुष्य की इस शोचनीय अवस्था को आदमी के कुत्ते को काटने की घटना द्वारा प्रस्तुत किया है । "रबर का बबुआ" में अभावग्रस्तता से पीडित आदमी को चित्रित करने केलिए दफ्तरी परिवेश लाया है । बेकारी की समस्या से उत्पन्न विसंगति का भी अंकन किया है ।

"उस रात के बाद", "आकाशगंगा की छाया में" और "परतों की आवाज़" तीनों एकांकियों में प्रेम के क्षेत्र में आनेवाली विसंगतियों को प्रस्तुत किया है । "उस रात के बाद" में प्रेम की नष्ट होती पवित्रता की प्रस्तुति है।

प्रेम के क्षणिक आवेश में पडे लोगों की कथा है जिसमें नारी का आत्मसमर्पण, कटु यथार्थ भोगने की इच्छा आदि को भी महत्त्व दिया है । इसमें पारिवारिक संबंधों में आनेवाली शिथिलता व्यक्त है । नैमित्तिक सुख के पीछे भटककर, निरीह कौशल्या एवं प्रमोद की जिन्दगी के सारे चैन -सुकून को छीननेवाले संतोष - कमला, जीवन के सारे यथार्थ को चुपचाप सहनेवाले प्रमोद - कौशल्या - ये सब समाज के जाने पहचाने चेहरे से लगते हैं । "आकाशगंगा की छाया में" बाह्यसौन्दर्य को महत्त्व देनेवाले प्रेमियों की चंचल मानसिकता का चित्र प्रस्तुत करता है । इसमें सौन्दर्य के नष्ट होने पर मुरझानेवाले प्रेम का चित्रण है, साथ ही आन्तरिक सौन्दर्य को महत्त्व देनेवाले पात्रों के अमर प्रेम का भी । यहाँ एकांकीकार चंचल चित्तवाले लोगों द्वारा प्रेम के क्षेत्र में आनेवाली विसंगति दिखाते हैं । "परतों की आवाज़" प्रेम की पवित्रता पर आस्था रखनेवाले लोगों की कहानी है । निस्वार्थ प्रेम की बलिवेदी पर खडे रहनेवाला जैक्सन, प्रेमिका के दुःखद देहान्त के बाद भी उसकी स्मृति में मृत्यु की कडियों को गिनकर जिन्दगी बिताता है जिसके द्वारा अमर प्रेम का उदात्त स्वर एकांकी से गूँजता है ।

"अपना अपना जूता" में लक्ष्मीकांत वर्मा कानूनी क्षेत्र की हास्यास्पद स्थिति और पुलिस लोगों के बुरे आचरण पर व्यंग्य करते हैं । एकांकीकार ने डकैती, शोषण आदि से अपनी जेब भरनेवाले लोगों के दोहरे व्यक्तित्व दिखाकर उनके मुखौटों को उतारने की कोशिश की है ।

"तीसरा आदमी" में परिस्थिति के शिकार बने मनुष्य की कथा को प्रस्तुत किया गया है । नारी कमाने केलिए वेश्या न बनती, लेकिन परिस्थितियों के कारण वेश्या बनने केलिए मजबूर हो जाती है । मोना ऐसे एक परिवेश का शिकार बनी हुई थी । तन और मन की भूख मिटाने केलिए वेश्याओं के पास आनेवाले पुरुषों में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने घर में प्यार केलिए तरसता है । एकाँकी के "पहले" को यह प्यार मोना की झोंपडी से मिलता है । मोना दीदी को पति से सुरक्षा न मिलने पर आशा खोकर बैठनेवाली बेपनाह नारी के रूप में प्रस्तुत किया है । असुरक्षा के साथ अभावग्रस्तता से भी घिर जाने पर ही उसका पैर फिसल गया है । ऐसी एक नारी के माध्यम से परिवेश का बुरा प्रभाव स्पष्ट किया है ।

शिल्प

एकाँकियों का शिल्प एक बंधे - बंधाये मानदण्ड में नहीं चलता । एक प्रयोगशील शिल्प ही इसमें उभरता है । एकाँकी के पात्र महान गुणों से युक्त नहीं । सामान्य जन की पीडामय जिन्दगी को मूर्त करने केलिए उन्होंने अधिकांश रूप से लघुमानव को ही अपने एकाँकियों में स्थान दिया है । ये पात्र अपनी विक्षिप्तता और बिखराव के साथ एकाँकियों में प्रस्तुत होते हैं । कथ्य, चरित्र योजना, संवाद और भाषा, मंचीयता आदि पर एब्सर्ड नाट्यधारा का प्रभाव स्पष्ट है ।

"अपना अपना जूता" में समाज में व्याप्त असंगतियों को स्पष्ट करने के लिए शराबी, तमंचावला थैलीवाला आदि पात्रों की प्रस्तुति है । समाज की

कुरीतियों को देखने पर भी प्रतिरोध लिये बिना आँखें मूँदनेवाले और बेगुनाहों पर दोष आरोपित करनेवाले पुलिस लोगों का शिकार बने हुए आदमियों का रूप "पगला साहब" का चरित्र व्यक्त करता है । स्त्री - पुरुष संबंधों की सड़ी हुई अवस्था का चित्रण "डिग्री" के द्वारा दिया है । "तीसरा आदमी" की "मोना दीदी" जीवन बिताने केलिए परिस्थिति का शिकार बनी नारी है । "पहला" प्यार के अभाव में उसकी खोज में आनेवाले परिवेश का शिकार है । "आदमी का ज़हर" के "शरण" और भीतरी नाटक "टूटा आदमी" के महिम के चरित्रों से साहित्यकार की दयनीय स्थिति का सूक्ष्म वर्णन मिलता है । अमानवीय परिवेश में आनेवाले साहित्यकार की दयनीय स्थिति व्यक्त करने केलिए दोनों पात्र सक्षम निकले हैं । "उस रात के बाद" के प्रमोद, संतोष कला, कौशल्या और सुधा का चित्रण विघटित पारिवारिक संबंधों को स्पष्ट करता है । यहाँ "प्रमोद" और "कौशल्या" का चित्रण विघटनों के बीच मूल्यों को महत्व देनेवाले पात्रों के रूप में है । "आकाशगंगा की छाया में" "शिरीष" और "मधु" का चरित्र बाह्य सौन्दर्य पर आधारित प्रेम की क्षणिकता को स्पष्ट करने केलिए प्रस्तुत किया गया एकांकी है । एकांकी के "अमित" को एक चंचल मानसिकतावाले व्यक्ति के रूप में और शिरीष की पहली प्रेमिका "शशि" को त्याग और ममता की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है । "रबर का बबुआ" में विनय, विपिन, बड़े बाबू आदि अधिकारियों के सामने रबर के बबुए बन जाने केलिए अभिशप्त समाज के विवश आदमी के प्रतिनिधि हैं । यौन संबंधों को प्रधानता देनेवाले प्रेमियों के बीच निस्वार्थ प्रेम को महत्व देनेवाले इने गिने व्यक्तियों को मूल्यहीनता के इस युग में भी समाज में हम देख सकते हैं, ऐसे व्यक्तियों का मूर्त रूप है "परतों की आवाज़" के जैक्सन,

अस्ना, किटी आदि पात्र ।

भाषा में जहाँ एब्सर्ड शिल्प का प्रभाव पडा है वहाँ प्रतीकात्मकता, अधूरे और ऊल जलूल संवाद की भरमार हैं । लेकिन इन ऊल जलूल संवादों का एक आन्तरिक अर्थ भी है । "अपना अपना जूता" का संवाद -

"पगला साहब - तेरी थैली मेरी है
डिगा - मेरी थैली तेरी है
पगला साहब - सब की थैली सब की है
डिगा - सब की थैली सब की है ।" [1]

में लेखक ने दूसरों की चीजें हडपने की मनुष्य की इच्छा की ओर संकेत दिया है । "आदमी का ज़हर" में मनुष्य के कुत्ते को काटने की घटना द्वारा आदमी की बर्बरता की ओर संकेत किया गया है । "रबर का बबुआ" के बबुआ आज के उस मानव का प्रतिरूप है जो अपने स्वार्थ लाभ केलिए अधिकारियों के सामने अपना अस्तित्व खोकर स्वयं रबर का बबुआ बनने केलिए अभिशाप्त हुआ है । "परतों की आवाज़" में परतों से आनेवाली आवाज़ से व्यक्ति की आन्तरिक घुटन का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है । "अपना अपना जूता" में जूते का प्रयोग अपने लाभ केलिए दूसरों के जूते तक छीननेवाले मनुष्य की स्वार्थवृत्ति को सूचित करता है ।

"आदमी का ज़हर"में नाटक के भीतर और एक नाटक को प्रस्तुत करने की रीति है । इसमें अभावग्रस्त साहित्यकारों की लेखकीय संवेदना को

1. अपना अपना जूता - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 37

गहराई से स्पष्ट करने केलिए एकांकी के भीतर और एक नाटक "टूटा आदमी" का प्रणयन रेडियो नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । "उस रात के बाद" में सुधा की यादाश्त के रूप में पारिवारिक विघटन की कहानी प्रस्तुत की गयी है । "आकाशगंगा की छाया में" का कथ्य शिरीष की पत्नी और अमित की प्रेमिका मधु की स्मृति द्वारा प्रस्तुत किया गया है । "परतों की आवाज़" में जैक्सन की कहानी का अवतरण उसके परिचित मित्र किटी की यादों से है ।

"तीसरा आदमी" में "केतु" और "पहले" के बीच की मुठभेड़ की सूचना देने केलिए नेपथ्य की ध्वनियों का सहारा लिया गया है । "उस रात के बाद" की वर्षा और "आकाशगंगा की छाया में" के प्रयोगशाला के वातावरण की प्रतीति कराने केलिए भी ध्वनि का सहारा लिया गया है । "आदमी का ज़हर" के भीतरी नाटक की प्रस्तुति केलिए रेडियो नाटक के रूप में ध्वनियोजना का प्रयोग किया गया है ।

"अपना अपना जूता" के तमंचावला, शराबी, थैलीवाला रात में मुखौटा धारण करके दिखाई पड़ते हैं । क्योंकि दिन में वे सत्य और अहिंसा के पक्ष पर बोलनेवाले हैं । रात में वे बदल गये हैं, दूसरों से सामग्री हड़पने केलिए, छीनने केलिए व्यस्त होते हैं । यहाँ मुखौटा उनके दोहरे व्यक्तित्व को सूचित करता है । इस एकांकी के कॉंस्टेबिल भी रिश्वत लेते वक्त मुखौटा धारण करते हैं ।

यों एकांकियों के विश्लेषण की सूक्ष्मताओं पर उतरने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने एकांकियों में समाज की विसंगति और मानव मन में छिपी पाशविकता, स्वार्थलिप्सा से प्रेरित होकर अपने व्यक्तित्व को गिरवी रखनेवाले मानव के असलियत आदि को उघाडकर रख दिया है ।

चौथा अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास
====================

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास अपने पूर्ववर्ती और परंपरित उपन्यासों से संवेदना और दृष्टिकोण के स्तर पर कई भिन्नतायें रखते हैं । इन उपन्यासों में नये परिवेश के प्रति सशक्त प्रतिक्रिया का अंकन है । यथार्थवाद की सशक्त परंपरा का सूत्रपात प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया था । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने उसे आधुनिक भावबोध के परिप्रेक्ष्य में आगे बढाने की कोशिश की । सामाजिक यथार्थ के प्रति जितना आग्रह प्रेमचन्द में दीखता था उतना परवर्ती उपन्यासकारों में नहीं था । व्यष्टि सत्य की सूक्ष्मता की ओर वे उन्मुख हुए । व्यष्टि के अन्तः सत्यों की ओर समग्र रूप से उन्मुख होनेवाले उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण उन्होंने अपनाया उसमें अवश्य एक नयापन है । व्यक्तिमन के आन्तरिक खुर्दरापन का विश्लेषण करनेवाले मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शुरुआत स्वतंत्रता के पहले ही हुई है, फिर भी इसकी प्रौढता का दर्शन स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में ही होता है । जैनेन्द्र और जोशी के उपन्यासों में मनोविज्ञान के बहुतेरे रंग बिखरे पडे हैं । उन्होंने व्यक्ति की मानसिक अवस्था की परत खोलकर मानव मन की कुंठा, संत्रास और घुटन का विश्लेषण किया है । व्यक्ति के अलगाव, अकेलेपन, और अजनबीपन के बोध को अज्ञेय ने अपने उपन्यासों की व्यापक फलक पर कलात्मक ढंग से उकेर दिया है । "अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियों से ही संपूर्ण हिन्दी उपन्यास का दूसरा और नया मोड शुरू होता है ।" [1]

....

1. प्रकर विशेषांक - 1973 - पृ. 47

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों की एक अत्यन्त सशक्त नई दिशा आंचलिकता के रूप में उभरी है । फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, राही मासूम रज़ा, शिवप्रसाद सिंह और रामदरश मिश्र ने किसी न किसी आंचल विशेष या जनपद की संवेदनाओं और मनोभावनाओं को उभार दिया है ।

सामाजिकता के विभिन्न आयामों को उभारनेवाले उपन्यासों की रचना हुई है । राजनीतिक स्तर पर सामाजिक मूल्य तथा व्यवस्था को आधारभूत मानकर सामाजिक वैषम्य और राजनीतिक अव्यवस्था पर प्रहार करने का प्रयास करनेवाले उपन्यासकारों में यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन, रांगेयराघव, अमृतलाल नागर आदि की देन महत्त्वपूर्ण हैं ।

स्वतंत्रता के बाद का काल हिन्दी उपन्यास के संबन्ध में प्रयोगशीलता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । फिर भी सन् साठ के बाद ही इस क्षेत्र में उपन्यासकारों ने प्रयोगशीलता के नये स्तर अपनाये हैं । आज़ादी के बाद देश के पूरे माहौल में मोहभंग की जो स्थिति उत्पन्न हुई उसकी सशक्त अभिव्यक्ति आधुनिक उपन्यासों में हुई है । जीवन के अनछुए पहलुओं को विषयवस्तु बनाकर उपन्यासों का सृजन होने लगा जिसमें व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्व परिवेश में भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति हुई है । नई पीढी के उपन्यासकारों ने मानव मन की कुंठा, अनास्था, संत्रास और बिखराव की स्थितियों को संवेदनात्मक स्तर पर पहचाना और उसको शब्दबद्ध किया ।

कथ्य और शिल्प के प्रति उपन्यासकारों की धारणा में बहुत बडा बदलाव आ गया । अतः उपन्यास का ढाँचा ही बदल गया । उपन्यासों में कथा का मोह न होकर आधुनिक व्यक्ति की वेदना, संत्रास और घुटन को एक विशिष्ट शैली में परिभाषित करने का प्रयास किया गया । चरित्र चित्रण की अवधारणा बदल गयी । नयी भाषा की संरचना, नित नये बिंबों की तलाश और प्रतीकों की खोज होने लगीं ।

कथ्य और शिल्प के स्तर पर प्रयोगशीलता का आग्रह जिन उपन्यासकारों में पुरजोर रूप में दिखायी पडता है उनमें प्रमुख हैं मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, रमेश बक्षी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, नरेश मेहत्ता, श्रीलाल शुक्ल, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस, बदी उस्मान, गोविन्द मिश्र, कृष्ण बलदेव वैद, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास हैं - "एक कटी हुई जि़न्दगी एक कटा हुआ कागज़", "कोयला और आकृतियाँ", "खाली कुर्सी की आत्मा", "टेराकोटा", "तीसरा प्रसंग" और "सफेद चेहरे" ।

जमे हुए जीवन की पीडा

"एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़"

चिन्तनशीलता के अतिरेक में आदमी प्यार, ममता आदि से बहुत दूर चला जाता है । दूसरों को प्यार देने में ही नहीं दूसरों के प्यार को समझने में भी वह असमर्थ निकलता है । इसका यह बुरा परिणाम निकलता है कि आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते में उलझपन पैदा होता है और वे लोग मोहभंग के शिकार बनते हैं । मोहभंग से उत्पन्न मन:स्थिति के शिकार बननेवाले आदमी के अंदर एक रेगिस्तान बसा हुआ है । मानवीय आस्थाओं के प्रति एक नकारात्मक रुख ही वह अक्सर अपनाता रहेगा । यान्त्रिक जीवन की व्यस्तता उसकी रुग्ण मानसिकता को अधिक बिगाडती है । वह हमेशा महसूस करेगा कि एक अजीब किस्म की जडता और निष्क्रियता उसके सारे अस्तित्व को दबोचे हुए हैं जिससे वह चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाता । स्वाभाविक रूप से उसकी ज़िन्दगी में ऊब और एकरसता घरकर बैठेगी । ऐसी स्थिति में उसका जीवन शुष्क होता जा रहा है । दरअसल मनुष्य का ऐसा शुष्क आस्थाहीन जीवन कटा हुआ जीवन है । "एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़" उपन्यास ऐसे एक विक्षिप्त आदमी के लक्ष्यहीन जीवन की विडम्बनात्मक परिणतियों की बेहत्तर तस्वीर है । उस आदमी को उपन्यासकार ने कोई नाम नहीं दिया है । अत: वह पूरे उपन्यास में "अनाम" ही रहता है ।

अतिशय बौद्धिकता से ग्रस्त जाने माने साहित्यकार "वह" अपनी पत्नी निशि की मृत्यु से बिलकुल संत्रस्त है। निशि की चौथी वर्षी में पुरानी स्मृतियों की खोज में फिर एक बार वह "नाइलवैली" आ जाता है जहाँ पहले उसने दस वर्ष पत्नी के साथ बिताये थे। निशि क्षय रोग की मरीज़ थी। इसलिए उसे लेकर उस पहाडी में आया था। उस घर में रहते ही अतीत की एक एक घटना उसके मन में दौड आती है और उसके मन को नोचती है। इस विक्षिप्तावस्था में वह कभी अपने आपको शब्दहीन भी पाता है। घर की हर एक चीज़ के साथ निशि की याद जुडी हुई है। निशि को उस घर की जिन चीज़ों से अधिक मोह हो गया था अनाम को भी अब उन चीज़ों के प्रति अधिक मोह होने लगा। पहले उसे निशि की उन प्यारी चीज़ें - सफेद और काले खरगोश, गिलहरी, पुसी, चिडिया, बबूल के काँटे लगे फ्लवर बेसिन, जूतानुमा एष्ट्रे आदि में तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। जूतानुमा एष्ट्रे निशि ने खास तौर से नुमाइश में खरीदा था। जब निशि जीवित थी तो मात्र उसके मन को रखने के लिए उसने खरगोशों को देखना शुरू किया था। लेकिन अब वह इन खरगोशों से इतना परिचित हो गया है कि सुबह सुबह बिस्तर से उठते ही यदि वे खरगोश पगडण्डी पर न दीख पडते तो उसे कुछ चिन्ता हो जाती।

उस कमरे की कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, फ्लवर बेसिन, अलमारियाँ - ये सब देखकर उसे ऐसा लगता है मानो ये चीज़ें पिछले चार - पाँच वर्षों से उस कमरे में इस तरह से जम गये हैं जैसे उनका कुछ अस्तित्व हो ही नहीं,

वे सारी चीज़ें ज़मीन फोड़कर उग आयी हो । दिन भर वह अपने कमरे में निशि के पोर्ट्रेट के सामने चुपचाप बैठकर चिन्ता में डूबता रहता है । वह इतना विक्षिप्त है कि कमरे में होनेवाली छोटी सी हलचल भी वह सहन न कर पाया । कमरे के आईने में उसे अपनी शक्ल अचीन्ही मालूम हुई । नौकरानी के रूप में एक गूँगी को उसने इसलिए रखा है ताकि कमरे में, घर में कहीं कुछ शोर न हो । बार बार उसे ऐसा लगता था कि उसका कोई अलग अस्तित्व है ही नहीं, कमरे के बाहर की दुनिया छोटी है, तीन साल से वह बाहर की दुनिया में नहीं गया है बल्कि दुनिया को ही अपने कमरे में बुला लेता है । उसे बीच बीच में इस बात की भी याद आती है कि जब निशि पहली बार माँ बनी थी वह उस नवजात केलिए गाडी लाया था, लकडी के छोटे छोटे मकान लाया था, प्लास्टिक के बहुत से पेडों को इकट्ठा करके जंगल बनाया था । उसी के बीच रेलवे लाइन दौडाकर उसने टोफी से लदी मालगाडियाँ चलायी थीं । उन यादों में डूबकर फिर एक बार अपने कमरे में वह सारी दुनिया बसाता है । "निशि नहीं है" - यह बात ज़ुबान पर आते ही अनाम को लगातार जैसे ज़ोर का चक्कर आ जाता है ।

"वह" को इस बात में बहुत अफसोस है कि वह निशि को कभी तोडना नहीं चाहता था, लेकिन वह टूट गयी । निशि को वह खोना नहीं चाहता था, लेकिन वह खो गयी । निशि को वह माध्यम बनाना कभी नहीं चाहता था लेकिन वह माध्यम बन गयी । उसके दिमाग में एक गहरी स्मृति की जो सलाख तपती गरम सी दाग डालती चली जाती थी उससे राहत मिलने केलिए "वह" शराबों की खुमारी में रहता था । एक बार अनाम को शराबों की

खुमारी में अचानक दिल का दौरा पड गया था, ज़मीन पर अनजान सा गिर पडा था तो पासवाले मकान मे अकेली रहनेवाली युवति दीप्ति ने उसे बचाया, डाक्टर के पास ले गयी । अनाम की ठण्डी, नीरस और बेतरतीब ज़िन्दगी को दीप्ति ने थोड़ी सी आँच देना शुरू किया । लेकिन वह दीप्ति को जितना अधिक निकट पाता है उतनी ही दीप्ति उससे दूर हो जाती है । दोनों के बीच एक विचित्र प्रकार का संबंध ही पनप रहा है । दीप्ति खुद जानती थी कि "वह" कहीं अपने से लड रहा है, टूट रहा है और स्वयं उसके अपने अन्दर में कहीं कोई तेज़ धारवाली तीखी तराशनेवाली पीडा है जो उसको मथ कर चूर चूर कर रही थी । दीप्ति "वह" से अलग होना चाहती है, लेकिन अलग न कर सकती । बार बार वह अपने आप से प्रश्न करती है कि क्यों शराब में बेहोश एक अजनबी आदमी को न मर जाने दें । क्यों उसे उठाया ? लेकिन इस प्रश्न का उत्तर उसे खुद न मिलता था । वह महज़ इतना जानती है कि उसे ऐसा करने में एक सुख और आनन्द मिलता है जिसे वह अनिर्वचनीय मानती है । "वह" से दूर हटने की कोशिश के बावजूद भी कभी कभी दीप्ति को लगता है कि उसकी नशीली आँखें और घुँघराले बाल, मोटे गीले ओंठों का मिश्रित रूप उसके ऊपर हावी हो जाता है ।

दीप्ति एक बडे व्यवसायी केवल की पत्नी है । दीप्ति और केवल का प्रेम - विवाह था । "रैन बसेरे" उपन्यास के नायक की शक्ल से मिलते जुलते पडोसी नौजवान केवल के प्रति दीप्ति का आकर्षण विवाह में परिणत हो गया । केवल और दीप्ति का संबंध पूर्ण रूप से टूट चुका है । केवल ऐसे एक आदमी है जो शराब की बोतल में और नारी की जिस्म में सुख

ढूँढता है । दीप्ति जानती थी कि केवल उसे चाहता है लेकिन उसका चाहना महज प्यास है । जीवन के प्रति केवल का दृष्टिकोण इन शब्दों में स्पष्ट है - "मैं ने जीवन को भोगा है, उससे जितना रस संभव था मैं ने उसे निचोड लिया है । मैं जानता हूँ अनुभूति को गहराइयों को भोगा कैसे जाता है ?" [1] दीप्ति को केवल अजनबी लगता है और केवल को दीप्ति भी । दीप्ति दिल्ली की शोरगुल से भरपूर ज़िन्दगी को छोडकर एक अनजान पहाडी में अकेले तीन वर्षों से रहती है ।

केवल के प्रति दीप्ति की सबसे बडी शिकायत यह थी कि उसमें नारी की मांसलता में डूबने की पाशविक प्यास थी जिसे दीप्ति क्रूरता ही मानती थी । दीप्ति के गाल में घाव का जो दाग है वह दीप्ति के लिए केवल की एक यादगार है, वह केवल जो कभी दीप्ति का सब कुछ था और फिर एक अजनबी बन गया । इसलिए ही दीप्ति कहती है - "वह दाग भी एक इतिहास --- है - - वह जानती है कि पुरुष जब आवेश में होता है और उसकी उष्णता जब एकदम से उससे बडी बनकर उस पर छा जाती है, तो स्त्री केवल एक प्रतिमा बनकर ही रह जाती है - - एक ऐसी प्रतिमा जो किसी भी वासना का पात्र बनने का सामर्थ्य रखती है ।" [2]

"अनाम" के हर व्यवहार से स्पष्ट है कि उसके मन में अपनी पत्नी की मृत्यु को लेकर आत्मग्लानि है । अपने वैवाहिक जीवन में निशि ने पति से

1. "एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 138
2. पृ. 136

जो अपेक्षायें रखी थी वह उसकी पूर्ति न करा सका । उसके सूखे तर्कों से वह ऊब चुकी थी । उसे हमेशा ऐसा लगता था कि पति उसकी चिन्ता कभी नहीं करते । अनाम तो अच्छी तरह जानते थे कि निशि ने उसे नहीं उसके विचारों को प्रेम किया है । उसके नाम, सम्मान और यश जब सारे देश में फैल रहा था और हर जगह उसका आदर स्वागत हो रहा था तो एक बार निशि ने उसे अपने घर पर बुलाया था, वह घण्टों बातें करता रहा । पन्द्रह दिन के भीतर ही कुछ ऐसा हुआ कि जब वह पन्द्रह दिन के बाद चलने लगा तो निशि ने भी उसके साथ चलने का प्रस्ताव किया । "वह" निशि को अपने साथ नहीं ले गया । लेकिन एक महीने बाद निशि अपने आप उसके साथ आ गयी । लेकिन विवाह के तुरंत बाद उसने समझा कि उसका चयन गलत निकला है ।

एक बार आपस में बातें करते समय निशि को यह जानते हुए धक्का सा लग गया कि अनाम को अपने आसपास की सारी चीज़ें बासी बासी और फीकी फीकी लगती है और निशि भी इसका अपवाद नहीं । शादी के बाद वह धीरे धीरे महसूस करने लगी कि जीवन के अनेक पथों से जिस पथ को उसने चुन लिया वह किसी भयंकर रेगिस्तान में आकर खो गया । अपने पति के शुष्क नीरस, बौद्धिक वाग्जाल में निशि को कहीं भी तरलता न दीख पडी । अपने पति के अर्थहीन, लक्ष्यहीन जीवन की दौड से वह तंग आ गयी थी । निशि ने कई बार उससे इन बकवासों को छोडने की प्रार्थना भी की थी । निशि ने उसके साथ जीवन के संपूर्ण रस को भोगना और भोग के माध्यम से एक अनुभूत सत्य को जानना चाहा था । निशि जीवन को टुकडों टुकडों में

न देखकर उसको समग्रता में देखना चाहती थी । वह अपने जिस्म की स्निग्धता और समस्त रस को अनाम के प्रौढ बाँहों मे अर्पित करने की आकांक्षा से तिलमिला जाती थी । लेकिन अनाम की दुनिया एक अनोखी दुनिया थी । नीरस किताबों में नये ढंग से सोचने के प्रवाह में, नयी परिभाषाओं में मग्न होते वक्त उसने अपनी पत्नी की आँखों की मादकता और आँखों की प्यास को नहीं समझा । पलंग पर लेटकर करवटें लेती हुई निशि ने प्रतीक्षा की कि वह मुर्दे किताबों, शुष्क तर्कों को छोडकर उसको ओर देखेगा । लेकिन ऐसा कभी न हुआ । निशि यह भी नहीं चाहती थी कि वह ज़बर्दस्ती पति के ध्यान को आकृष्ट करें । अपनी जीवन पद्धति को अपने तक सीमित रहना वह चाहती थी । शादी के बाद दस वर्ष दोनों एक साथ रहने के बावजूद भी वे एक दूसरे को समझने में असफल रहे ।

तीन वर्षों बाद केवल पहली बार दीप्ति के पास लौट आता है, इसलिए कि "अनाम" और दीप्ति के संबंधों को लेकर अखबारों में फैली अफवाहों को उसने भी पढा था । अपनी पत्नी में आये परिवर्तन वह बहुत जल्दी समझ लेता है । वह यह भी जानता है कि दीप्ति उस आदमी को एक अद्वितीय प्रतिभा समझकर पूजती है । दीप्ति को उस आदमी से अलग करने के लिए उसे यह भी समझा देता है कि उस चरित्रहीन और आवारा आदमी ने अपनी पत्नी की हत्या की है ।

दिन बीतते बीतते अनाम का अजीब यथार्थबोध चरम सीमा में पहुँचता है । उसे बार बार ऐसा लगता है कि वह अनंत शून्य में अपने हाथ पैर मार

रहा है । उसके अंदर भी न कुछ है न बाहर भी कुछ है । अचानक एक रात बड़ी बारिश और जलप्लावन होता है और अपने कमरे में बैठे बैठे उसे ऐसा लगता है कि बाहर दूर बादलों और वृक्षों में निशि भीगी खड़ी है और अपना हाथ बढ़ाकर उसे बुला रही है । जलप्लावन से सभी लोग परेशान हैं और घरों में पानी घुस जाने से लोग निकल नहीं पा रहे हैं । अनाम पागल सा विक्षिप्त होकर उस अनंत जलराशि की ओर चला जाता है । और उस अनंत जलराशि में ही उसकी समाधि हो जाती है । अनाम के घर का पुराना नौकर वृद्ध पेंटर उसकी लाश लेकर आता है । लाश देखकर विक्षिप्त हो दीप्ति नाइल-शैली में लौट जाती है तो उसे वहाँ से एक कटा हुआ कागज़ मिल जाता है । जिस पर लिखा था -

"There is only one man in the world
And his name is all men
There is only one woman in the world
And her name is all women
There is only one child in the world
And the child's name is all children" [1]

दीप्ति केवल के वक्ष पर सिर रख कर फूट पड़ती है और केवल उसके माथे को अपने दोनों हाथों से संभालकर ऊपर उठाता है - यहीं उपन्यास समाप्त होता है ।

1. एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 204

आत्मघाती बिन्दु को छूती बौद्धिक रुझान

"एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़" उपन्यास के सारे माहौल में जीवन की ऊब, एकरसता, अर्थहीनता, संदर्भहीनता आदि फैले हुए हैं। नायक की ज़िन्दगी एकरसता से घिरी हुई है। उसकी ज़िन्दगी में रोशनी का कोई महत्व नहीं था। शायद इसलिए अंधेरापन उसे कभी खलता नहीं था। वह जानता था कि अंधेरापन उसी को खलता है जिसे रोशनी का मोह होता है। लेकिन नायक "अनाम" को रोशनी से न मोह है अंधकार से न घबराहट। उसे हमेशा अपने चारों ओर अंधकार का सागर ही दीख पडता है। उसे दूर का पुल टूटता हुआ तथा ताड का पेड गिरता हुआ लगता है। आस्मान की नीली रोशनी धीमे धीमे सफेद सी लगने लगती है। स्वयं लेखक की दृष्टि में नायक अनाम आधुनिक युग के अनभिव्यक्त जीवन की गहनता को भोगनेवाले हम सबके व्यक्तित्व का अंश है - अतः वह सूक्ष्म, अमूर्त और मूक है। उन्होंने लिखा है - "मैं ने अनाम की संज्ञा इसलिए दी है क्योंकि इस क्षण का यथार्थ कहीं न कहीं हम सब भोगते हैं। किसी से उलझकर यह क्षण फिसल जाता है और किसी के साथ अन्तरमन की गहराइयों की पर्त दर पर्त को खोलता चला जाता है - फिर जिस मानव अनुभूति के सहभोगी सब हों उस अनुभूति के भोक्ता को कोई एक नाम कैसे दिया जाय, सच तो यह है कि इस उपन्यास का नायक न तो मर्यादा पुरुषोत्तम है, और न कोई हीरो। वह हम सब के व्यक्तित्व का अंश है इसलिए सूक्ष्म है, अमूर्त है, अमूर्त है इसलिए सब का है, अनाम है।"[1]

1. एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 4

लेखक का यह कथन मात्र उपन्यास के नायक के प्रति ही नहीं बल्कि समस्त मानव चेतना की समस्या है । "उपन्यास के नायक का जीवन उस पात्र विशेष का जीवन नहीं है और न ही उसकी समस्यायें उसकी अपनी है । वह आज के वैज्ञानिक युग के चिन्तनपरक जीवन गुजरनेवाले सभी व्यक्तियों का जीवन है । साथ ही नायक की समस्यायें आज के व्यक्तियों की समस्यायें हैं ।" [1]

उपन्यास के नायक का जीवन कटा हुआ है कि उसके जीवन में वर्तमान के साथ अतीत एवं भविष्य की कोई कडी नहीं रह गई है । भविष्य के प्रति उदास नायक में वर्तमान स्थिति के निर्णय लेने की भी क्षमता नहीं है । अतीत की सहायता से वह जी रहा है । राजमल ब्यौरा की दृष्टि में "ऐसा जीवन बौद्धिक अनुभूतियों का जीवन इस अर्थ में कि वर्तमान जीवन के प्रत्यक्ष क्षण, जिनका उपयोग पात्र कर रहा है, वे क्षण विश्लेषणात्मक हो गये हैं । विश्लेषणात्मक अनुभूतियाँ बौद्धिक ही हो सकती हैं । साथ ही ऐसी स्थिति जिसमें निर्णय लेने की क्षमता समाप्त हो जाय, वह स्थिति बौद्धिक अनुभूतियों की स्थिति ही होती है । ऐसा पात्र जिसे अपने कार्यों के प्रति आस्था समाप्त ही जाए या वह असमंजसता में क्षणों का विश्लेषण मात्र करता रहे, उसका जीवन शुष्क एवं बौद्धिक मात्र होगा ।" [2] व्यक्ति इसलिए विक्षिप्त होता है कि वह सोचता है कि उसके विचार आम जनता से भिन्न है और उनको मान्यता नहीं मिल रही है । दूसरों के विचारों का आदान

1. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण - राजमल ब्यौरा - पृ. 180
2. - पृ. 186

प्रदान करते हैं तो व्यक्ति विक्षिप्त नहीं होंगे। दूसरों के विचारों को टालकर अपने विचारों को महत्वपूर्ण मानने लगता है तो उसे विक्षिप्त कहा जा सकता है। नायक के अपने स्वतंत्र विचार हैं, वह दूसरो के विचारों को मानता नही। उसकी आस्था इतनी बढ गई कि वह अपने विचारों से भी कुछ भी नहीं कर पाता। उसकी भाषा भी अपने विचारों को व्यक्त नहीं कर सकती। इसलिए वह चुप हो गया है। पत्नी निशि के स्नेह का मूल्य ज़िन्दा रहने पर वह समझ न सका। लेकिन निशि ने उसके विचारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया था और जीवन में कुछ पाने में उसे अवश्य सहायता दी थी। मृत्यु के बाद ही वह निशि के स्नेह का मूल्य पहचानता है। निशि की मृत्यु के बाद, वास्तविक मूल्य पहचानने पर उसके जीवन मे भी भटकाव आता है। वह भी कर्महीनता का शिकार बन जाता है। यह "कर्महीनता भारतीय बुद्धिजीवि की विशिष्ट स्थिति है। यह स्थिति नितांत वैयक्तिक नहीं है, सार्विक भी नहीं है, देशकाल के विशिष्ट संदर्भ में ही समझी जा सकती है। "कटी हुई ज़िन्दगी" का नायक इसी कर्महीनता का शिकार है। वह कुछ करता नहीं, मात्र चिन्तक और विचारक है।"[1]

बुद्धिजीवि मध्यवर्ग की मानसिकता का विश्लेषण उपन्यास मे सही ढंग से हुआ है। अकर्मण्यता के शिकार बने साहित्यकार "अनाम" अपने भीतर से बिलकुल आहत है। अनाम के जीने का आधार उनके विचार हैं जो उन्हें पुस्तकों से उपलब्ध होते हैं। अपने इस चिन्तन के अनुकूल कुछ भागों को कटे

1. कल्पना पृ. 59

हुए कागज़ों पर लिखता है और उसी के अनुरूप ज़िन्दगी बिताने का व्यर्थ परिश्रम करता है । भावों से कटकर विचारों में जीनेवाले जी नहीं सकते । अनाम की मृत्यु इसका स्पष्ट प्रमाण है ।

रिश्तों की दरारें

आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते में अक्सर फासला इसलिए बढ़ता है कि चिन्तन के धरातल पर दोनों समान्तर रेखाओं में आगे बढ़ते रहते हैं । निशि और अनाम के बीच, दीप्ति और केवल के बीच संबंध विघटन का यही कारण है । निशि परंपरागत संस्कारों से आबद्ध रहती है । शायद इसलिए वह शालीनता या सौम्यता की सीमा पार करके अधकचरी आधुनिकता का वरण करना कभी नहीं चाहती । वह अपने इरादे पर अटल रहती है । व्यक्तित्व के अंग बन चुके परंपरागत संस्कारों से वह अपने आप को मुक्त न कर सकती । जीवन के प्रति अनाम का रुख इससे बिलकुल भिन्न है । जीवनगत यथार्थ का साक्षात्कार करने की कोशिश अनाम कभी नहीं करता । निशि की मृत्यु के बाद जीवन में घुस आयी अजीब ढंग की जडता और निष्क्रियता से अपने आपको मुक्त करने की चाह भी उसे नहीं । अपने परिवेश की हर चीज़ में उसे अपने खंडित व्यक्तित्व और रुग्ण मानसिकता का प्रतिफलन ही दीख पडता है । रंगीन चिडिया की आँखों में आँखें डालकर देखो वक्त वहाँ भी एक अनोखे किस्म का उदास ठण्डापन वह महसूस करता है । बार बार उसे तीखा एहसास होता है कि उसका अलग कोई अस्तित्व नहीं । उनके इस एहसास में उपन्यासकार ने आधुनिक युग के दुविधाग्रस्त मानवीय अस्तित्व के आकांक्षित रूप की कुंठा का चित्रण किया है ।

केवल और दीप्ति का वैवाहिक जीवन भी समझौते के अभाव के कारण टूट जाता है। दोनों की जीवन पद्धतियाँ भिन्न कोटि की हैं। केवल महानगर की अनन्त ज़िन्दगी और वहाँ के क्षणिक सुखों में अपने को डुबो देना चाहते हैं। लेकिन दीप्ति के लिए उस ज़िन्दगी में कहीं कुछ नहीं। तेज़ गतिवाली ज़िन्दगी से दीप्ति को सख्त नफरत है। दीप्ति अनाम के विपरीत, भावों में जीनेवाली है। उसके लिए भाव है सब कुछ। "वह वर्तमान, भूत और भविष्य से कट जाता है, परंपरित मूल्यों में अपना विश्वास खो बैठता है तथा स्वयं अपने जीवन से और इस संसार से कटकर अजनबी बन जाता है।" [1] विचारों से कटकर भाव के बल पर जीनेवाले विक्षिप्त होने पर भी मर नहीं सकते। दीप्ति की ज़िन्दगी इसलिए कटी हुई ज़िन्दगी बन जाती है। दीप्ति एक विचित्र प्रकार की मानसिकता झेलनेवाली है। बाहर से चट्टान जैसी दीख पडनेवाली दीप्ति की दृढता क्षण भर में मोम जैसी पिघलनेवाली है। एक अनिर्णयात्मक मानसिकता उसके चरित्र की एक कमज़ोरी है। उसका मन हमेशा प्यार के लिए तरसता है। अनाम के प्रति सहानुभूति रखने के तथा उसके साथ जिस्मीय तौर पर संबंध रखने के बावजूद भी वह पूर्ण रूप से अनाम के लिए अपने आपको सौंप देना नहीं चाहती। यही कारण है कि वह बार बार अपने आप को टटोलती है और उसे ऐसा लगता है कि वह रिश्ता बेमतलब है। अपने पति से अलग होने का निर्णय लेने के बाद भी वह अपने निश्चय पर अटल नहीं रह सकती। वह ऐसी एक उलझन में पडती है कि विवाह रूपी सामाजिक बंधन को वह तोड नहीं पाती, स्वीकार भी नहीं पाती। "केवल" की ज़िन्दगी से कोसों दूर हट जाने का निश्चय लेनेवाली दीप्ति को हम उपन्यास

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन - विद्याशंकर राय - पृ. 124

के अंत में अनाम की मृत्यु से बिलकुल विक्षिप्त होकर केवल के वक्ष पर अपना सिर रखकर फूट पडते हुए देखते हैं। दरअसल वह सहारा खोजनेवाली नारी ही है।

बेफिक्र जीवन की खोयी हुई दिशायें

"कोयला और आकृतियाँ"

मनुष्य आधुनिकता के मोह में परंपरागत मूल्यों और पुरानी व्यवस्थाओं को नकारकर स्वतंत्र रहना चाहते हैं । वे अपनी हर प्रवृत्तियों में पूरी तरह स्वतंत्र व्यवहार करना चाहते हैं । समाज का नियन्त्रण उन्हें स्वीकार्य नहीं । समाज में व्याप्त नैतिकता से उन्हें घृणा है । पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण में भारतीयों में भी मूल्यों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है । संबंधों की परंपरित सीमा तोडने से अराजकता का उदय हुआ है । स्त्री पुरुष संबंधों में आयी हुई शिथिलता ने एक अनैतिक पीढी को सृष्टि की है । विवाह की पवित्रता नष्ट हो गयी है । वे यौन संबंधों को शादी के बंधन से जोडना नहीं चाहते हैं, पूर्ण रूप से स्वतंत्र विहार करना चाहते हैं । ऐसी ज़िन्दगी बितानेवाले जीवन में कहीं भी न पहुँचते हैं । वे जीवन में सफल नहीं होते हैं, लेकिन उन्हें पराजय से तनिक दु:ख भी नहीं होता । "कोयला और आकृतियाँ" में ऐसे अनेक पात्रों की कहानी प्रस्तुत की गयी है ।

उपन्यास का प्रमुख पात्र है मोना । वह कानूनी प्रोफेसर चाटर्जी तथा मिसेज़ शर्मा की अवैध संतान है । प्रो. चाटर्जी के कुत्सित अहं का अभिशाप मोना ज़िन्दगी भर भोगती रहती है । अपने पिता की संतानों

में वह हमेशा उपेक्षित रही । दुनिया की नज़रों में वह मि. शर्मा की संतान है । वहाँ से उसे अपनत्व नहीं मिला । असल में वह जिसकी संतान है वह आदमी उसे स्वीकार करने केलिए या एक क्षण केलिए भी अपनत्व देने केलिए तैयार नहीं था । मोना ज़िन्दगी में इसी अपनत्व की प्रतीक्षा में थी । लेकिन यह अपनत्व उसे कहीं भी नहीं मिला । जिस पुरुष {जीवन} को उसने अपने जीवन का सब कुछ समर्पित किया उस पुरुष से भी उसने चोट खायी । जब वह माँ बननेवाली थी और जीवन के साथ विवाह करके शान्तिपूर्ण जीवन बिताने का सपना देख रही थी अचानक एक दिन "जीवन" गायब हो गया । उसे मालूम हुआ कि "जीवन" को नितान्त व्यवस्थित जीवन बिताना और जिम्मेदारी संभालना पसन्द नहीं । धीरे धीरे मोना मनुष्य की बुनियादी अच्छाइयों में विश्वास खोने लगी । उसने एक दूसरा कटु सत्य भी समझ लिया कि समर्पित जीवन बिताने का भार केवल औरतों पर ही है । लेकिन मोना की राय में जिम्मेदारियाँ पुरुष और स्त्री दोनों की है । लगातार जीवन में चोट खाने के फलस्वरूप उसकी मानसिकता बिलकुल बदल गयी थी । उसे लगता है कि किसी भी घटना को जन्म भर तक फाँसी की रस्सी की तरह लगाये रहना गलत बात है । अत: ज़िन्दगी के प्रति उसका दृष्टिकोण बिलकुल बदल गया । फिर जीवन में एक ही लक्ष्य की पूर्ति केलिए उसने अपनी जीवन यात्रा शुरू की ।

जीवन के चले जाने के बाद मोना ने डाक्टरी का पेशा शुरू कर दिया, मेडिकल सर्विस में उसने अपनी बड़ी प्रतिष्ठा बना ली । भुआली के सानिटोरियम में जीवन के घनिष्ठतम मित्र जयन्त से उसका परिचय हुआ । वह मोना का संबल बना रहा । जीवन के अभाव में जयन्त का सहज स्नेह मोना के निजी

व्यक्तित्वका अंश बनता जा रहा था । उसने जीवन का स्थान जयन्त को दे दिया । घर, बाहर, समाज कोई नहीं जानता था कि उसका और जयन्त का क्या संबंध है ? जयन्त मीना की निजी कामिक आवश्यकता थी । कई बार अपने मन को टटोलने के बाद उसे लगा कि जयन्त के प्रति वह ऐसा स्नेह देने में असमर्थ रही जो उसने जीवन को दे दिया था । "फिसिकल नेससिटि" के रूप में जयन्त उसका सब कुछ था । लेकिन एक सामाजिक रूप में वह कुछ नहीं था । समाज के नैतिक प्रतिबंधों को ललकारने का साहस इस कदर तक बढ जाता है कि बिना विवाह के रूढ सूत्रों में बंधे कई पुरुषों के साथ कई दिन उनके घर में रहती है । आत्मसुख की अंधी दौड में वह और भी कई पुरुषों - जिम, शेखर, मि. दास आदि से जिस्मीय तौर पर संबन्ध स्थापित करती है । मीना खुद जानती थी कि जिन जिन पुरुषों के साथ उसने जो क्षण भोगे हैं वे सब झूठे हैं । वह कभी भी पराजय स्वीकार नहीं करती । पराजय का भय उत्पन्न होने पर उस स्थिति से अपने को बचा लेने में वह समर्थ निकलती है । यहाँ तक कि अपने बेटे के पिता जीवन को भी वह अपनी पराजय के रूप में पुन: स्वीकार नहीं करती । जीवन जैसे अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति को अपनी स्मृति से ही निकाल देना उचित मानती है । अंत में स्वयं साधारण शक्ल मि. मेहरोत्रा का पत्नी पद स्वीकार करती है । उसका समूचा व्यक्तित्व विद्रोह से भभक उठता है । वह अपनी किस्मत पर रोती नहीं । अपनी अवैध संतान के भविष्य के प्रति वह चिन्तित भी नहीं । यद्यपि मीना में एक प्रकार का विस्फोटक अहं था जो उसे किसी के सामने न झुकने देता फिर भी वह अंदर ही अंदर एकाकी था । उसके मन में अपने घर बसाने की, बच्चों को दुलारने की अदम्य कामना थी ।

बेलगाम ज़िन्दगी

अपने जन्म के जारजत्व की छाया ही मीना के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित होने से दबाये रही है । इस दृष्टि से देखें तो दरअसल इस जारज संतान को जन्म देनेवाले प्रो. चाटर्जी ने ही मीना के जीवन को रेगिस्तान बनाया है ।

बेफ़िक्र ज़िन्दगी बितानेवाले प्रो. चाटर्जी अपनी ज़िन्दगी में पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं । चाटर्जी का जीवन एक सादे कागज़ के समान है । वे मरते मरते एक मज़ाक कर गये । उनकी लाश भी न नदी के किनारे जलायी गयी, न कोई रोया, न गाया । "जो जीवन में ही मुक्ति पा गया था उस केलिए मरने के बाद मुक्ति का सवाल ही नहीं उठता ।" [1] चाटर्जी की ज़िन्दगी कभी बुझी नहीं रहीं । चाटर्जी का अपना एक जीवन दर्शन था । यह जीवन दर्शन देखने में सरल तो था लेकिन निभाना बहुत कठिन था । अक्सर वह कहा करता था, "दुनिया में राई - रत्ती बराबर भी दिलचस्पी, खुशी या आनन्द नहीं है - - अगर मैं चाहूँ तो एक मिनट में एक निहायत, घामड किस्म का मुँह बनाकर दुनिया को कोसता हुआ बैठ सकता हूँ - - लेकिन मैं ने दुनिया की इस निराशा को कभी स्वीकारा ही नहीं - - खुशी मैं इस नीरस दुनिया में से निचोड लेता हूँ ।" [2] चाटर्जी को अपने मित्र भगत जैसे मनहूस व्यक्तियों से सख्त नफरत थी जिनमें व्यवस्था के प्रति मोह, नियमबद्धता, नैतिकता के प्रति आग्रह है । प्रो. चाटर्जी की

1. कोयला और आकृतियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 10

2. - पृ. 18

राय में ऐसे लोग इन सारी परंपराओं को केवल कवच की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। उनकी इच्छायें मरते दम तक बूढ़ी नहीं हुई। हर नौजवान के साथ, उसकी धड़कन के साथ वे सदैव से हो नयी ताज़गी लेकर जीते आये हैं। उनका सिद्धान्त है - "Live the life and not the memory."

चाटर्जी की दृष्टि में शादी - विवाह अमानवीय है। चाटर्जी की प्रकृति में व्यवस्था का कोई अर्थ नहीं है। उसे व्यवस्था और ऑर्डर, वैसे ही प्रिय थे जैसे जापान में ट्रिम्ड पेड़ों को लोग देखकर प्रसन्न होते हैं। उनके कई मित्र थे, कई सहेलियाँ थी। मि. भगत, मिस. उपरेती, मि. और मिसेज़ शर्मा, वासला कुन्तल आदि इनमें थे। प्रो. चाटर्जी की मृत्यु काफी गहरे अर्थों में कई व्यक्तियों को इसलिए छू गई थी। मौत के संबन्ध में वह अक्सर कहा करता था - "मौत को खुले दिल से मिलेगा। मौत से बराबर घिरा रहा, लेकिन उसने आसपास फटकने नहीं दिया।"[1] सुरक्षा बोध के प्रति उसे कोई मोह नहीं था। --- वह हमेशा उससे चिढ़ता था। वह सिर्फ जीना चाहता था जिसे अंतिम समय तक वह निभा गया।

ज़िन्दगी की तेज़ी में विश्वास करनेवाले लोग कहीं भी नहीं पहुँचते। ऐसे लोग ज़िन्दगी को जीते नहीं, एस्केप करते हैं, अपनी ज़िन्दगी को खोखला कर देते हैं, दूसरों की ज़िन्दगी को भी बरबाद कर देते हैं। हर

1. कोयला और आकृतियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 12

सुन्दर वस्तु को उसके क्षणिक आवेश में भोगने की जो लालसा प्रो. चाटर्जी जैसे लोगों में दीख पडती है उसकी खतरनाक परिणति अगली पीढियों की जिन्दगी के लिए भी एक अभिशाप बन जाती है । प्रो. चाटर्जी जो खोल ओढे रहते हैं वह खोखले और खाली है और उसका असली रूप नहीं ।

वैभव और ऐशो आराम से भरी हुई जिन्दगी के होते हुए भी क्षणिक सुख की खोज में अनैतिक राहों में भटकनेवाली नारी मानसिकता का विश्लेषण भी उपन्यास में मिलता है ।

अपनी इच्छा के विपरीत एक बडे बिज़िनेस मेन मि. मेहरोत्रा से विवाह करने के लिए विवश मधु विवाह के तुरंत बाद ही समझ लेती है कि पति - पत्नी दोनों के रास्ते अलग अलग हैं । लेकिन मधु निराश नहीं होती । वह भी अपने सुख के लिए अनैतिक राहों को स्वीकार करती है । मि. मेहरोत्रा और मिसेज़ मेहरोत्रा दोनों कभी एक दूसरे के रास्ते में आने की कोशिश नहीं करते हैं । मिसेज़ मेहरोत्रा अपने क्षणिक सुख के लिए मैनेजर पोल से लेकर माली तक के लोगों का इस्तेमाल करती है । मिसेज़ मेहरोत्रा और पोल के बीच का एकमात्र समझौता पैसे का है । मिसेज़ मेहरोत्रा पोल के रूप पर आकृष्ट है और पोल उससे लाभ उठाना इसलिए चाहता है कि उसके पास कोई और चारा नहीं था । वह पढा लिखा आदमी अपनी घर गृहस्थी संभालने के लिए नौकरी की खोज करता रहा । उसी समय मिसेज़ मेहरोत्रा ने उसे अपने फर्म में नौकरी दी । उसका कृपा पात्र बनकर वह टाइपिस्ट के पद से मैनेजर तक बना । मिसेज़ मेहरोत्रा पोल की ख़ूबसूरती

का लाभ उठाना चाहती है । उसे हर खूबसूरत चीज़ किसी भी कीमत पर मिलनी चाहिए थी । वह जानता है कि मिसेज़ मेहरोत्रा हर साल जिस तरह मोटर बदलती रहती है और उस पर हज़ारों रुपये खर्च कर देती हैं, या जिस प्रकार उनके ड्राइंग रूम के मेन्टलपीस पर रखी हुई मूर्तियाँ अद्वितीय होने के नाते बेशकीमती हैं या जिस तरह उनके मकान हर साल नये पैमाने पर बनते हैं उसी प्रकार जिस दिन पोल से ज्यादा खूबसूरत आदमी मिसेज़ मेहरोत्रा को मिल जायेगा तो उसी दिन उसे बाहर निकाल करेगी । इस समझौते को स्वीकार करने से पोल के जीवन में बहुत बडा अन्तर आ गया है । वह संपन्न जीवन बिताता है । पोल को ज़िन्दगी में किसी ने दया या प्रेम नहीं दिया है, उसी प्रकार वह भी हमेशा बिज़िनेस में विश्वास करता है । "ज़िन्दगी को भरपूर जीना और लगातार पराजय की स्थिति में भी अपने को समेटना" पोल का जीवन लक्ष्य बन गया है । इस प्रकार इस्तेमाल का तंत्र अपनानेवाला पोल बिलकुल मशीन बन गया है ।

रूप के पारखी पुरुष की स्वार्थ लिप्सा

मिसेज़ मेहरोत्रा के हृदय का कोमल तार झंकृत करनेवाला दूसरा पुरुष है शेखर नामक चित्रकार । उनका भी अपना कोई नहीं । दुनिया के जितने नाते रिश्ते हैं वह उन सबसे अनभिज्ञ है और नाते रिश्तों के बंधन का मूल्य नहीं जानता था । उनके जन्मते ही माँ का स्वर्गवास हो गया । पिता की मृत्यु के साथ वह बिलकुल अनाथ हो गया । चित्रकार शेखर रंगों और रेखाओं के बीच संबंध स्थापित करके आकृतियाँ बना लेता है लेकिन जीवन के प्रवाह और उसकी गति में वह उन संबंधों और बंधनों को नहीं स्वीकार करना

चाहता था । बिना किसी सामाजिक कर्म काण्ड के ही रूपवती नारियों को अपने साथ रखने में वह दिलचस्पी रहता है । मोना भी ऐसी एक दिलचस्पी थी, कुछ दिनों केलिए । उनकी ज़िन्दगी में घुस आयी अनेक लडकियों में से नीकी भी ऐसी एक उपलब्धी थी जो शेखर के जीवन और व्यक्तित्व को सर्वथा नया मोड देती है । "जिन दिनों वह शेखर के मोडल के रूप में काम करती थी और पेडस्टल पर खडी होती थी और शेखर उसके अंगों को छूकर एक नितान्त सजीव पोज़ केलिए प्रस्तुत करता था तो उसे लगता था कि उसके शरीर में जो हल्के हल्के राये हैं वह जैसे उस रस स्निग्धता के परिचायक हैं जो नितान्त ऊष्म रूप में उसके अन्तस् में तरलायित होकर प्रवाहमान है ।"[1] उस इलाके के लोग शेखर और नीकी की हँसी उडा रहे थे । कुछ लोगों ने नीकी को रण्डी या रखैल कहकर उसकी बेइज्ज़ती की । लेकिन नीकी इसकी तनिक भी परवाह न करनेवाली थी । नीकी को सबसे पहला धक्का लगा जब कि उसे शेखर की नितांत स्वार्थी एवं संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय मिला । बच्ची को जन्म देने के बाद नीकी को फालिज़ का दौरा हो गया और वह लंगडी हो गयी । शेखर ने उससे कहा कि बच्चे को उसके पास छोडकर मंसूरी में अपनी माँ के पास चली जाय ।

जिस नीकी को शेखर ने अपने सपनों की प्रतिमा बनायी थी वह लंगडी नहीं थी । खुद उसके ही शब्द है - "मैंने नीकी को चाहा था इसलिए नहीं कि वह इन्सान है वरन् इसलिए कि वह सुन्दर है - - उसके सौन्दर्य में

1. कोयला और आकृतियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 108

जीवन देने की शक्ति है ।" [1]

रंगों और रेखाओं की दुनिया में रहनेवाले शेखर जैसे आदमी का जिन्दगी के नाते रिश्ते, अपनत्व, आत्मीयता आदि से कोई सरोकार नहीं । रूप के ऐसे पारखी पुरुष इनसानियत और आदमियत्व को तिलांजलि देते हैं ।

कुल मिलाकर यह उपन्यास क्षणिक सुख और जीवन की तेज़ी के पीछे भटकनेवाले पात्रों की जीवन गाथा प्रस्तुत करता है ।

1. कोयला और आकृतियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ 300-301

मानव की लघु हस्ती का परिचय

"खाली कुर्सी की आत्मा"

आज मनुष्य की कथनी और करनी में बहुत बडा अंतर आ गया है । मनुष्य जो कुछ कहते हैं वह करते नहीं, और जो कुछ करते हैं वह अपने कहने के अनुसार नहीं । सारा कार्य दिखावा मात्र रह गया है । अपने स्वार्थ केलिए वह कुछ भी करने केलिए तैयार है । समाज के किसी भी क्षेत्र में हो, यह रीति चलती रहती है । समाज सेवा करने के बहाने लोग अपनी सेवा ही कर रहे हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा "खाली कुर्सी की आत्मा" नामक उपन्यास द्वारा ऐसी स्वार्थ लिप्सा से प्रेरित कुछ होशियार किस्म के लोगों की पोल खोलते हैं । इसमें लेखक एक कुर्सी के माध्यम से कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं ।

उपन्यास की मूल कथा चन्दनपुर रेल दुर्घटना से संबंधित है । उपन्यासकार ने इसमें दुर्घटनाग्रस्त चन्दनपुर रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम के लोगों की टूटी हुई ज़िन्दगियों को प्रस्तुत किया है । दुर्घटना के बाद स्टेशन की ज़िन्दगी किस प्रकार की हो सकती है, इसका चित्रण सूक्ष्म ढंग से किया गया है । दुर्घटनाग्रस्त जनता, उद्धारक वर्ग, स्टेशन के अधिकारी वर्ग, पत्रकार, पीडितों की सेवा करने केलिए आनेवाले डाक्टर और नर्स, भागनेवाले कैदी, पुलिस अधिकारी, नेता लोग, यात्री लोग आदि की भिन्न भिन्न प्रतिक्रियायें व्यक्त की गयी हैं । इसी समय स्टेशन पर पहुँचनेवाली "ग्रेट इंडिया सर्कस और महामानवों की टोली" की कथा को मूलकथा के साथ जोड दिया गया है ।

रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम में पडी कुर्सी अपनी आत्मकथा सुनाती है। अपने जीवन में जो अनुभव प्राप्त किये हैं उसे कुर्सी अपनी कथा के रूप में व्यक्त करती है।

चन्दनपुर रेलवे स्टेशन कुर्सी की आखिरी जगह है। हीरपुर फर्नीचर मार्ट के व्यवस्थापक से हैवलोक ने हवल्दार की सिफारिश से कुर्सियाँ खरीदीं जो चौदह की लडाई के ज़माने में फौजवालों से छोडी गयी हैं। इससे संतुष्ट होकर फर्नीचर मार्ट के कण्ट्रैक्टर ने शुक्राने में हवलदार को जो कुर्सी दी है वह है उपन्यास की खाली कुर्सी। यह किसी एक जगह टिकती नहीं। कई व्यक्तियों के हाथ से होकर उसकी यात्रा जारी रहती। इस चक्र में हैवलोक की पत्नी से उसे बन्दर, रीछ, लोमडी जैसे तीन लोहे के खिलौने भी प्राप्त होते हैं। हवलदार के यहाँ से कुर्सी, तीन खिलौनों के साथ अगम पंडित के यहाँ पहुँच गयी है। वहाँ उसे एक लौह पुरुष को भी साथी के रूप में प्राप्त होता है। उनसे कुर्सी और साथियाँ एक शायर "बरबाद दरियाबाद" के पास लायी जाती है। कुछ दिनों बाद शायर विक्षिप्त हो गया। घर में कुर्सी, खिलौने और बन्दूक के अलावा कुछ नहीं बचा था। यहाँ हवलदार के आगमन होने पर उससे भेंट होती है। वह मवेशी डाक्टर वनडोले को बहुत मानता था, उसने नये घर में आने के तुरंत ही कुर्सी, खिलाने आदि वनडोले को दिये। उनके यहाँ से ये सब दिव्या देवी के नाद मंदिर में आ जाते हैं। फिर डॉ संतोषी के पास और उनके यहाँ से महिम के पास पहुँचती है। वहाँ केवल कुर्सी ही आ जाती है। तब तक उसके साथ सारे साथी थे। साथियों को डॉ संतोषी की पत्नी से कबाडी डाक्टर खरीद लेता है। महिम

के घर में उसकी मुलाकात उनके उपन्यास -"अधूरे आदमी"- और "कैक्टस के फूल" से होती है। फिर कुर्सी कबाड़ी के यहाँ ली जाती है। कबाड़ी से उसे नीलाम पर जनार्दन गार्ड खरीद ले गया। लेकिन टूटी फूटी समझने पर उसने कुर्सी की नीलाम की बात नोटिस बोर्ड पर लिखी। वहाँ एक नेता ने मजदूरों से चंदा करके कुर्सी खरीदी। स्टेशन के नौजवान पैंटमैन को आदेश दिया गया कि कुर्सी को मौके से पार्टी दफ्तर में पहुँचा दियें तो चेयरमैन बैठ सकें। लेकिन कुर्सी पार्टी दफ्तर तक नहीं पहुँच जाती। स्टेशन के वेटिंग रूम पर रखी हुई कुर्सी की मृत्यु भी वहीं हो जाती है। रेल दुर्घटना के कारण घाव से पीडित अज्ञात यात्रियों के साथ कुर्सी भी नष्ट भ्रष्ट हो जाती है।

पुल टूटने के अपराध में तीन व्यक्तियों - हवलदार, डाक्टर नवाब और मास्टर दादा - को गिरफ्तार किया गया है। ये वास्तव में अपराधी नहीं हैं। इन्हें दंड देने के पीछे समाज का क्रूर हाथ है। उनकी दयनीय दशा का कारण समाज ही है। हवलदार का अपराध यह है कि पुल टूटने पर वह बंधन मुक्त होकर दौड गया है। मास्टर दादा पर आरोप लगाया कि उन्होंने ही पुल तोड दिया है क्योंकि पुल की कमज़ोरी से परिचित होने के कारण उसने पहले ही पुल टूट जाने की संभावना सूचित की है। दुर्घटना से पीडित लोगों की शुश्रूषा में रत डॉ नवाब पर खान की हत्या का जुर्म लगाया है।

समाज के हितैषियों की भी ऐसी दशा है। यहाँ व्यक्ति का दोष नहीं है। समाज का दोष है जिसने इनको दंड दिया है। समाज का यथार्थ

रूप समझने पर मनुष्य की आस्था बदल जाती है । तब हमें चारों ओर का व्यवहार व्यंग्य सा लगता है । समाज तो अपने स्वार्थों केलिए जो भी करने केलिए तैयार है । दूसरों की हानि या नष्ट से उसे कोई चिन्ता नहीं । हर एक को अपने लाभ की ही चिन्ता है । वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने के कारण कुर्सी अंत में अपनी संवेदना व्यक्त करती है - "मैं आज भी जिन्दा हूँ क्योंकि मेरी पीडा ज़िन्दा है, क्योंकि मेरी वेदना ज़िन्दा है । मैंने जीवन और उसके व्यंग्यों को जिया है - - - आदमी की तस्वीरों और उसकी भाग्य रेखाओं के बीच की उठती दुविधाओं और आस्थाओं को भी परखा है । मैं उन क्षणों में ज़िन्दा रही हूँ जहाँ मनुष्य ने नये मोड लिये हैं । जहाँ मनुष्य ने अपनी किसी भी कुंठा को अविवेकपूर्ण ढंग से जीने की चेष्टा की है ।" [1]

बच्चे की रुदन से उपन्यास का अंत कर देता है । इस बच्चे की चीख उस लावारिस संतान की ही नहीं बल्कि सारी मानवता की चीख है ।

कुर्सी जिन जिन व्यक्तियों के साथ रहती है उनकी ज़िन्दगी का चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है । उपन्यासकार का लक्ष्य समाज में फैली हुई असंगतियों को व्यक्त करना है । स्त्री - पुरुषों का अनैतिक संबंध, अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए कुछ भी करने केलिए तैयार मानव जाति, समाज में व्याप्त कृत्रिमता, सच्ची भावनाओं की रुकावट आदि को तीखे और पैने व्यंग्य के साथ उभार दिया है ।

1. खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 413

व्यंग्य

"खाली कुर्सी की आत्मा" व्यंग्यात्मक तथा प्रतीकात्मक उपन्यास है। इस में दुर्घटना ग्रस्त लोगों पर समाज की जो प्रतिक्रिया है उसका व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य के सहारे दुर्घटना स्थल पर सहायता केलिए आनेवाली जनता का पोल खोलता है। इन लोगों का वास्तविक उद्देश्य सहायता करना नहीं। वे लोग अपनी अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए पहुँचते हैं। इनमें सरकार के आदमी हैं, जननेता हैं और चन्दनपुर के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी हैं।

स्टेशन मास्टर से लेकर पत्रकार तक का चित्रण करके समाज की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। दुर्घटना के कारण स्टेशन मास्टर बहुत परेशान हैं। उन्हें डर है कि सारा दोष उन पर आरोपित किया जायें। इसलिए वह डाक्टर वनडोले से जनार्दन गार्ड को बचाने की, दस मिनट तक उसे होश में लाने की प्रार्थना करता है। स्टेशन पर अनेक डाक्टर मौजूद हैं, लेकिन उनके पास आवश्यक दवा नहीं है। काली मोटी नर्स दुर्घटना से पीडित लोगों पर कोई ध्यान नहीं देती है, वह निश्चित समय पर अपने दोस्तों से मिलने जाती है। नेता अपने साथियों के साथ आये हैं। वे पीडितों की सान्त्वना करने केलिए नहीं आये हैं, बल्कि अपनी शक्ति दिखाने केलिए आये हैं। वे ज़ोर से नारा बुलन्द कर रहे हैं। थानेदार को रिपोर्ट लिखने केलिए सामग्री नहीं मिलती है। शक होने पर मेजर नवाब से प्रश्न किया जाता है। वह समझता है कि मेजर का कोई दोष नहीं है, फिर भी अपनी इच्छानुसार रिपोर्ट तैयार करता है और उसे कैद कर लेता है। पत्रकार कैलाश तार पर तार समाचार दे रहा है। उसे समाचार पत्रों की बिक्री में

वृद्धि करने का उद्देश्य है । उसमें मानवीय संवेदना का कोई स्थान नहीं है । उनकी मनोवृत्ति का प्रमाण है - "इस खौफनाक दुर्घटना में आदमी की कैसी दुर्दशा हुई - - वह केंकड़े की तरह रेंगता है या पर कटे चींटे की तरह, वह दीमक की तरह पिस गया है या सिर्फ एक सैण्डविच बनकर रह गया है । उसकी दिलचस्पी आदमी में नहीं है । वह टूटे हुए रेल के डिब्बों की तस्वीर ले रहा है । टूटे हुए पुल की तस्वीर ले रहा है - - - सुबह से अब तक वह नदी के किनारे केवल इसलिए बैठ रहा है ताकि वह उन लाशों की तस्वीर ले सके जो कल रात अंधकार में पुल के किनारे के साथ बीच नदी में गिर गई है - - - आदि आदि ।" [1] पत्रकार विनय की शिकायत है कि स्टेशन पर अपने ढंग की सिगरेट नहीं मिलती है । "इस तरह वेटिंग रूम में जिस समाज का चित्र दिखाया गया है, वह यथार्थ होते हुए भी समाज पर बड़ा भारी व्यंग्य करनेवाला है ।" [2]

ग्रेट इंडियन सर्कस और महामानवों की टोली की कहानी उपन्यास में संलग्न और एक कथा है । इसमें व्यंग्य का अधिक तीखा रूप देखने को मिलता है । इसके द्वारा नगर की जनता की प्रतिक्रिया व्यक्त होती है । रेल दुर्घटना होने पर भी चन्दनपुर में सर्कस चलती है और जनता सर्कस देखने आती है, "लगता था स्टेशन पर न कोई घटना हुई है और न दुर्घटना । जैसे पुल टूटा ही नहीं, आदमी मरे ही नहीं - - ज़िन्दगी को झटके लगे ही नहीं ।" [3]

1. खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 223
2. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण - राजमल ब्यौरा- पृ. 165
3. खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 390

पुल टूटने के जुर्म में मास्टर दादा, हवल्दार, और मेजर नवाब को कैद कर लेता है । अपराध किये बिना ही इन पर दोष आरोपित किया गया है । पुल टूटने पर बंधन मुक्त होकर दौड जाने से हवलदार दोषी ठहराया गया । मास्टर दादा पर पुल तोडने का आरोप लगाया है क्योंकि उन्होंने पुल की अवस्था देखकर पुल टूट जाने की संभावना सूचित की है । घायल लोगों की सेवा में लीन डॉ. नवाब पर खान की हत्या का आरोप लगाया है । इन्हें अपराधी कहनेवाले समाज पर यहाँ तीखा व्यंग्य किया गया है । समाज का दूसरा रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है ।

प्रतीकात्मकता

"खाली कुर्सी की आत्मा" में प्रतीकात्मकता शीर्षक से ही दिखायी देती है । वर्माजी ने उपन्यास में अपने पात्रों के माध्यम से इसका संकेत देने का प्रयत्न किया है । यहाँ कुर्सी खाली है तथा उसे आत्मा भी है । कुर्सी ने अपना परिचय भी दिया कि वह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग नहीं है, मात्र एक न्यूट्रल है । उसके शरीर का नीलाम हो सकता है, लेकिन उसकी आत्मा पूर्ण रूप से स्वतंत्र है । कुर्सी नष्ट होने पर भी उसकी आत्मा ज़िन्दा है । "खाली कुर्सी की आत्मा" आज के युग में मानव की लघु हस्ती का परिचय करानेवाली आत्मा का प्रतीक है । जैसे, कुर्सी खाली है, वैसे ही आज का व्यक्ति भी अपने आपको खाली अनुभव कर रहा है । जैसे कुर्सी नीलाम होती है वैसे ही आज का व्यक्ति भी नीलाम हो रहा है । किन्तु नीलाम तो केवल शरीर का होता है, उसी तरह आज व्यक्ति इस शरीर की रक्षा केलिए

ही अपने को नीलाम कर रहा है । कुर्सी की आत्मा स्वतंत्र है उसी तरह व्यक्ति की आत्मा भी स्वतंत्र है किन्तु इस स्वतंत्रता का संबंध समाज में शरीर से ही है ।"[1]

रेल दुर्घटना का उल्लेख करते समय भी प्रतीकात्मकता का सहारा लिया है । उन्होंने संसार केलिए वेटिंग रूम का प्रतीक अपनाया है । वेटिंग रूम के अजनबी लोग कुछ समय ठहरने के बाद लक्ष्य की ओर जाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य भी इस संसार में कुछ समय तक रहते हैं । वेटिंग रूम के लोग अजनबी हैं और उनका परिचय अपने घेरे में सीमित है । वर्तमान समाज के ढीले बंधनों की ओर वर्माजी यहाँ इशारा कर रहे हैं । पुल, दुर्घटना आदि भी प्रतीक हैं, कुर्सी का कथन इसे स्पष्ट करता है - "यह दुर्घटना - - पुल का टूटना, यह अनन्त मानवों का अन्तर्जगत में समा जाना, किसी प्रवाह में लाश सा बह जाना - - कहीं न कहीं उस मुर्दे के समान है जो ठहराव से जन्मता है - - रूढ़ि में पनपता है - - मनुष्य के बिके हुए, अल्पज्ञ, अंधकार में खपता है ।"[2] राख का पुतला, ज्वालाप्रसाद केलिए उचित विशेषण है । राख का पुतला यहाँ व्यक्तित्वहीनता का प्रतीक है । राख के पुतले का कोई व्यक्तित्व नहीं। दिव्या देवी से प्रेम, धन, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त होने पर भी उसके सारथी के रूप में ही रहनेवाले ज्वालाप्रसाद का व्यक्तित्व भी

1. खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 167

2. पृ. 413

ऐसा है । "राख के पुतले" के समान "आदमी और चूहे" नामक उपशीर्षक में भी प्रतीकात्मकता है । डॉ. संतोषी चूहों और आदमी के बीच रहते हैं । चूहों के प्रतीक द्वारा मानवीय व्यवहारों की तुलना करते हैं । वैसे लौह पुरुष और बन्दर, गीदड, रीछ के तीनों खिलौने भी प्रतीक हैं । जो मनुष्य के व्यक्तित्व की विभिन्न पहलुओं को सूचित करते हैं । यों उपन्यास में हर कहीं प्रतीकात्मकता देखने को मिलती है ।

कर्तव्य और स्वतंत्रता के बीच छटपटाती नारी मानसिकता

"टेराकोटा"

स्वतंत्रता के पहले समाज में नारी की हीनावस्था का एक प्रमुख कारण यह था कि आर्थिक रूप से वह स्वतंत्र नहीं थी । बदली हुई परिस्थितियों में शिक्षित नारी ने नौकरी करके अपने आपको आर्थिक दृष्टि से निर्भर बनायी । नौकरी की खोज में उसे घर की चहारदिवारी के बाहर आना पडा । अपने अस्तित्व को बनाये रखने केलिए घर और बाहर के छोटे छोटे मोर्चों पर लडनी पडी । पढी लिखी और नौकरी पेशा नारी कभी कभी परंपरागत संस्कारों के तन्तुओं को तोड देने केलिए मजबूर हो गयी । समाज के हर मोड पर जब धोखा ही धोखा मिला तो वह परंपरागत मान्यताओं से विद्रोह करने लगी । नौकरी पेश नारी के ऊपर कई बंदिशें हैं । पारिवारिक बोझ ऐसे कुछ नारियों के ऊपर हैं । पूरे परिवार का दायित्व निभाते निभाते उनके यौवन के दिन चले जाते हैं, साथ ही उसके सुनहले सपने भी टूट जाते हैं ।

"टेराकोटा" अपने घरवालों को अभावग्रस्तता से बचाने के उद्देश्य से दूर नगर जाकर नौकरी करने केलिए विवश आधुनिक नारी मिति की कहानी है । देहरादून में उनके पिता पंगु रायसाहब, अंधी माता, पति द्वारा उपेक्षित बडी बहन शोभा, छोटी बहन उमा और भाई राम है । इस बडे परिवार की जीविका चलाने केलिए वह दिल्ली में मि. खन्ना के यहाँ

नौकरी करती है । वहाँ हस्तिनापुर की खुदाई में नियुक्त रोहित से उसका परिचय हुआ । अपनी प्रतिबद्धताओं और सीमाओं में संघर्षरत होने के कारण तीन वर्ष के बाद भी उनका संबंध विवाह में परिणत नहीं हुआ । रोहित ने मिति को नौकरी छोडने केलिए विवश कर दिया । लेकिन मिति केलिए नौकरी छोडना बिलकुल असंभव है क्योंकि नौकरी ने ही उसके परिवार को दरिद्रता से मुक्त कर दिया है । माँ की बुरी तबियत की खबर पाकर देहरादून जानेवाली मिति परिवारवालों की दयनीय अवस्था देखकर अधिक विवश हो गयी । उपेक्षित बहन शोभा की प्रकाश के प्रति आकर्षण की बात जानकर मिति ने दोनों का विवाह करवा लिया ।

नौकरी करते हुए मिति ने अपनी पढाई भी जारी रखी । आई ए एस परीक्षा उत्तीर्ण कर सहायक कमीशनर बन जाने पर, बिगडी हुई पारिवारिक परिस्थितियाँ बिलकुल सुधर गयीं । इसी बीच मिसेज़ खन्ना ने खुदकुशी की, मिस्टर खन्ना विक्षिप्त होकर कहीं भाग गया । उनके दो बच्चों - विकी और सिमी - का दायित्व मिति स्वयं संभाल लेती है । माँ-बाप सुखी और स्वस्थ हो गये । उमा डाक्टर तथा राम इंजिनीयर बन गये । मिति उमा की शादी पूरी ठाठ बाठ से करवाना चाहती है, सभी मित्रों को आमंत्रित करती है । लेकिन शादी के बाद विदाई के समय मिति की दमित इच्छाओं से उत्पन्न मानसिक विक्षुब्धता उसे घर से गायब हो जाने तक पहुँचा देती है । मिति की इस मानसिक विक्षुब्धता की चरम सीमा पर उपन्यास समाप्त होता है ।

परिस्थिति से उत्पन्न आत्मविद्रोह की शिकार बनी नारी

परिस्थिति का शिकार बनना मनुष्य की नियति है । यह बात आज की नहीं, सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य परिस्थिति का शिकार है ।

अपने परिवार की जीविका चलाने केलिए दिल्ली आकर मि. खन्ना के साथ काम करने केलिए विवश मिति की आर्थिक तंगी ने उसे आत्मविद्रोह की स्थिति तक पहुँचाया है । खन्ना के फर्म में मिति की नौकरी जितनी उसकी योग्यता के कारण है उससे अधिक उसके अपने रूप और सौन्दर्य के कारण है । मिति भी खन्ना के दिमाग में एक हल्की सी गुदगुदी पैदा करके एक नये मिथ्या-भ्रम में अपनी अस्थायी नौकरी को कायम रखना चाहती है क्योंकि गरीबी में पिसे जा रहे एक परिवार का पूरा दायित्व मिति के ऊपर है । खन्ना के साथ काम करते करते मिति ने भी खुद महसूस किया था कि ज़रा सी ढील देने पर खन्ना का व्यक्तित्व अपने ऊपरी सभ्य आवरण को चीरकर अपने असली रूप धारण कर जायेगा । घरबार, मुनाफेदार बिसिनेज़, पत्नी, बाल बच्चे सभी प्रकार के ऐशो आराम से घिरे रहने के बावजूद भी व्यक्ति अपने आप को अकेला महसूस करता है । अपनी ज़िन्दगी की रिक्तता को भरने केलिए वह कई उपाय ढूँढता है, उसका भूला भटका मन कभी कभी विवेक भी खो बैठता है । दूसरों के साथ उच्छृंखल व्यवहार करता है । खन्ना इसी मानसिकता के शिकार हैं । खन्ना और मिसेज़ खन्ना के रिश्ते में आपसी समझौते के अभाव के कारण दरारें पडी हैं । अपने सूखे और नीरस जीवन को रससिक्त बनाने के लिए अपनी सेक्रेटरी मिति के जिस्म का रस पी लेना वह चाहता है । खन्ना

के संबंध में सारी बातें जानने के बावजूद भी मिति ने उनके फार्म में नौकरी की क्योंकि उसे पैसों की सख्त जुरूरत थी । और खन्ना से ज़्यादा पैसा भी मिल रहा था ।

अमिताभ के साथ मिति का पहला प्रेम संबन्ध भंग हो गया था । एक आहत मन से नौकरी की खोज में वह दिल्ली आयी थी । वहाँ रोहित के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता बढती है । तीन वर्षों की घनिष्ठतम मित्रता के बाद भी रोहित मिति को समझ पाने में असमर्थ है । रोहित जानता है कि मिति के भीतर कुहासा का घना आवरण है, मिति का जटिल व्यक्तित्व उसे एक पहेली दीख पडती है । मिति के अधूरे जीवन के घुटन को समाप्त करने का इरादा लेकर रोहित आता है, लेकिन मिति पूर्ण रूप से अपने आप को रोहित के हाथों सौंपने केलिए तैयार नहीं है । जो भी हो, मिति में अकेले ही संघर्ष करने का साहस है । पारिवारिक जीवन के अवरोधों के बीच वह घिरी हुई है, फिर भी वह हँसती हँसती इन सब का सामना करती है । मिति मन ही मन यही चाहती है कि रोहित उसे अपने बाँहों में कस लें, अपने जिस्म का रस पी लें । लेकिन मिति की दुविधा तो यही है, उसे नौकरी और रोहित इन दोनों में से किसी एक को चुनना है ? मिति की खन्ना के यहाँ की नौकरी रोहित को न भाती है । रोहित मि. खन्ना के संबंध में बिलकुल अवगत है कि मि. खन्ना ने मिति को केवल सेक्रेटरी का काम करने केलिए नहीं, उनकी अपनी जुरूरतों की पूर्ति केलिए नौकरी में रखा है । रोहित की यह वहमयुक्त दृष्टि मिति से छिपी नहीं । रोहित की मानसिक बनावट में

गहराई के साथ जड़ें जमा चुकी मध्ययुगीन धारणा से मिती को शिकायत है। अपने आपको आधुनिक उदार चेता व्यक्तित्ववाली मान बैठी मिति नारी के आत्मानुशासन पर अधिक बल देती है। नारी की इच्छा शक्ति को नारी का कवच मानती है। इसलिए वह रोहित से कहती है - "यह तुम्हारा गलत ख्याल है। रोहित, तुम समझते हो कि औरत महज़ एक ऐसी चीज़ है जिस को हर कोई जब चाहे तब परेशान कर सकता है - - मैं समझती हूँ कि औरत तभी परेशान होनी चाहती है।" [1] उसकी स्पष्ट मान्यता यही है केवल शारीरिक हिंसा में स्त्री कुछ कमज़ोर पडती है लेकिन यदि उसके पास अपनी स्वतंत्र इच्छा शक्ति है तो फिर वह शारीरिक कमज़ोरी भी कोई अर्थ नहीं रखती।

मिति शादी को एक पाखण्ड मान बैठती थी। वह उसे एक प्रकार का बन्धन मानती है। इसलिए वह शोभा से कहती है, "विवाह एक शारीरिक आवश्यकता मात्र है, इससे और कुछ नहीं।" [2] मिति ज़िन्दगी को आश्रित होकर बिताना नहीं चाहती। अपनी स्वतंत्रता की कीमत देकर किसी भी भूख को शांत करना नहीं चाहती। दूसरों को दुःख से राहत देने में उसे एक प्रकार की खुशी महसूस होती है। यही कारण है कि मिति अपनी विधवा बहन शोभा की शादी प्रकाश बाबू से करवाकर, नातेदार रिश्तेदारों के विरोध की परवाह न करके, रूढीवादी परंपरा को चुनौती देते हुए, अपनी बहन को अभिशाप्त जीवन से मुक्ति देने का संकल्प लिया है।

1. टेराकोटा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 41
2. - पृ. 179

रोहित के प्रति भी मिति की कई शिकायतें थीं । इसके अपने कारण भी हैं । मिति हर क्षण अपने परिवार की गरीबी के खिलाफ लड़ने में ही अपनी ज़िन्दगी बिताती है, उसे यह तनिक भी पसंद न आया कि रोहित घर से अपनी विधवा माँ से इस बहाने रुपये माँगते रहे कि वह कोई बड़ा व्यवसाय करने जा रहा है । यहीं नहीं घर से आये रुपयों को वह फिज़ूल खर्च भी करता है । रोहित के साथ निकट संबंध रखते हुए उसने महसूस किया कि रोहित कहीं नितान्त पुरुष होने के साथ कायर और कमज़ोर है, उसका साहस केवल एक सीमा तक आगे बढ़ता है, उसके बाद वह मौन हो जाता है । बाथरूम में मिति के नहाते वक्त रोहित का धक्के से बाथरूम का दरवाज़ा खोल देना और क्षण भर बाद उसको लगना कि उसने अनुचित कार्य ही किया है उसकी निष्क्रियता का ही सूचक है ।

मिसेज़ खन्ना की आत्महत्या और फिर मि. खन्ना के पागलपन की स्थिति मिति की मानसिकता को और भी बिगाड़ देती है । मिति ने रोहित से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह विवाह के प्रश्नों को अपने जीवन से बिलकुल निकाल चुकी है । रोहित के चरित्र की इस सीमा से मिति बिलकुल अवगत है कि रोहित जिस चीज़ को अपनाता है उसे पूरी तरह अपनाना चाहता है, वह निर्मम होकर अपनाता है । रोहित के व्यक्तित्व की यह निर्ममता मिति की सहेली शीला को पहले ही भाती थी । क्योंकि शीला की ज़िन्दगी में सबसे बड़ा अभाव भी यही था । वह जिस किसी आदमी के संपर्क में आयी थी वह उसे अपना पूरा स्नेह नहीं दे पाया था । प्रत्येक ने उसे एक सीमित दायरे में रखकर, उसकी सीमा में उसके रूप, शरीर और

सौन्दर्य को अपनाया था । किसी ने उसे निर्ममता नहीं दी थी जिसमें उसका पूरापन निखर था । रोहित के साथ मिति ने अपना सारा रिश्ता तोड दिया । मिति की ही प्रेरणा से शीला के साथ रोहित ने अपनी ज़िन्दगी का दूसरा सिलसिला शुरू किया ।

रोहित को मिति पर संदेह भी है । रोहित समझता है कि मिति के मन में खन्ना के प्रति आवश्यकता से अधिक स्नेह है । मि. खन्ना को देखने केलिए रोज़ अस्पताल जाने में मिति का पुराना संबंध प्रेरणा देता है । मिति रोहित की इस धारणा का प्रतिवाद देना भी नहीं चाहती । मि. खन्ना के प्रति मिति के इतनी ममतालु बनने का कारण शायद यह हो सकता है, कि मिति ने खन्ना के फेर्म में तीन साल नौकरी करके अपने संत्रस्त परिवार को एक दावाग्नि से निकाला । जब मिति मि. खन्ना के परिवार को संत्रस्त होते हुए देखती है, अपनी ओर से उस परिवार केलिए कुछ न कुछ करना वह अपना दायित्व समझती है । मि. खन्ना की बहन मिसेज़ कपूर ने मिति के प्रति यह आरोप लगाया था कि खन्ना के पूरे परिवार को तहस नहस करने में मिति का ही हाथ है । मिति इन अफवाहों की परवाह नहीं करती । वह जानती थी कि मिसेज़ कपूर की दिलचस्पी मि. खन्ना के बैंक बेलेन्स में अधिक थी । पागलखाने से मि. खन्ना के गायब हो जाने के बाद मिति को साल भर के कठिन परिश्रम के बाद दोनों बच्चे -सिमी और विकी - का संरक्षण मिल पाया ।

अपने डूबते हुए परिवार को डूबने से बचाकर ऊपर खड़ा करना यही मिती का प्रबल आग्रह था, उसने इसकी पूर्ति की । छोटी बहन डाक्टर बन

गयी, राम इंजिनीयर, छः साल लगातार अपाहिज की स्थिति में पडे हुए पिता की रक्षा की, माता की आँखों में रोशनी आ गयी, उमा की शादी डॉ. शरण के साथ संपन्न हुई । उमा की शादी में भाग लेने आये रोहित ने मिति के मन के मर्म को छू लिया कि सारी जिम्मेदारियों को निबाहने के बावजूद भी उसकी ज़िन्दगी में एक खालीपन है । इसी खालीपन के कारण ही वह अपनी नौकरी की बदली किसी पहाडी इलाके में करना चाहती है । अब तक मिति की ज़िन्दगी का कोई न कोई मकसद था । वह मकसद परिवार के इर्द गिर्द घूमता था । लेकिन अब परिवार निश्चित स्थिरता में आ चुका था ।

जीने की ललक

आर्थिक सुरक्षा की समस्या मनुष्य केलिए सबसे बडी समस्या होती है । लेकिन इस समस्या का हल पा लेने के बाद भी जैसे इसके अतिरिक्त बहुत कुछ ऐसा बचा रहता है जिसके बिना जीवन का चलना कठिन होता है । "इस बहुत कुछ" को मिति ने अपने जीवन से अपनी मर्ज़ी से ही त्यागने का संकल्प लिया था । एक समय ऐसा था कि मिति किसी ब्याह की परवाह किये बिना अपने आप को स्वतंत्र और मुक्त रख सकती थी । अफवाहों में उसे मज़ा मिलता था । आधी रात मि. खन्ना के साथ रोहित के कैंप में जाने में, रोहित के फ्लेट में समय बिताने में, रोहित के जिस्म से लिपटकर अनुभूतियों के क्षणों को बाँटने में, रूढीवादी समाज को ललकारती है । अपनी विधवा बहन की शादी संपन्न कराने में तनिक भी न डरती थी । लेकिन समय के परिवर्तन के साथ उसका व्यक्तित्व भी परिवर्तित हो गया । आज वह समाज

के ढाँचे को जैसे को तैसा सुरक्षित रखना चाहती है । पहले वह नये विचारों का समर्थन करती थी और पुरानी दकियानूसी तरीकों को समाप्त करने के पक्ष में थी । लेकिन उसकी मन:स्थिति बिलकुल बदल गयी है । यद्यपि मिति दूसरों के सामने यह दावा करती है कि उसका जीवन उसका स्वयं का स्वीकारा हुआ जीवन है । "जहाँ से मिति सामाजिक-पारिवारिक मिशन पूरा करती हैं वहीं से एक वैयक्तिक मिशन के छूटे छोर का आरंभ कुंठित खालीपन के साथ होता है ।"[1] उसके अन्दर अवश्य कुछ न कुछ घुटन है जो उसकी दबी हुई इच्छाओं के कारण उपजी हुई है । रोहित के साथ घर बसाने की, बाल बच्चों को पालने पोसने की सहज इच्छा को ही उसने दबोच लिया है । "रोहित के संदर्भ में बिना ब्याहे नारीत्व और सिमी - विकी (खन्ना के बच्चों) के संदर्भ में बिना जनमे मातृत्व की आरोपित अनुभूति मिति केलिए जीने के संबल बन जाते हैं । परंतु सब मिलाकर उसकी मूर्ति गहन करुणा में डूबी हुई मिलती है ।"[2] अंत में इस सत्य को खुद वह स्वीकारती भी है, रोहित से उसका यह कहना कि "मैं इस बदरंग ज़िन्दगी में थक गयी हूँ ।"[3] मिति के संबंध में रोहित का कहना बिलकुल सही है कि मिति के अंदर एक भयंकर घुटन है जो पछतावा बनकर मिति को अक्सर प्रताडित करता है ।

1. हिन्दी उपन्यास उत्तर शती की उपलब्धियाँ - विवेकी राय - पृ. 195
2. - पृ. 195
3. टेराकोटा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 262

पौराणिक परिवेश

महाभारत युद्ध के बाद उपजे विसंगतिमय परिवेश की पृष्ठभूमि में लक्ष्मीकांत वर्मा ने उपन्यास की घटनाओं और पात्रों को रखकर अतीत और वर्तमान में समन्वय लाने की चेष्टा की है । जहाँ अधिकांश लेखक अपनी रचना के कथ्य केलिए पुराण के पन्ने पलटकर गरिमामय पात्रों को चुनते हैं वहाँ वर्माजी की दृष्टि इससे बिलकुल भिन्न है उन्होंने ऐसे अधूरे पात्रों को ही चुन लिया जो युद्ध की यातनायें युद्ध के बाद भी भोगते रहे । लेखक को ऐसा लगता है कि पुराण के ये अधूरे पात्र अब भी समाज के पूरे क्षेत्र में कहीं न कहीं मंडरा रहते हैं । उनकी अपनी राय में, "यह कथा बिलकुल आज की है, आज के जीवन की है, उसकी विसंगतियों की है ।" [1]

पुराण के उच्छिष्ट पात्र हैं कंबोज सेनापति, उनकी तीनों पुत्रियाँ - श्रुतिमिता, ऋतुमिता, ज्योतिमिता और उनकी अंधी माँ, सामन्त रोहिताश्व सेनापति कैशिकेय, पांडुरंग । अपने पिता कंबोज की प्रतिहिंसात्मक भावना तथा कौरवों के समर्थन में विवश ऋतुमिता का पूरा व्यक्तित्व टूट फूट जाता है । सौन्दर्य उसका सबसे बडा अभिशाप था । उसे अपमान, दरिद्रता, अवहेलना एवं उपेक्षा का शिकार होना पडा । अपने अस्तित्व की रक्षा भी जब संभव नहीं हो पाती तो वह कहीं न कहीं समझौते केलिए विवश हो जाती है । पारिवारिक दायित्वबोध से बुरी तरह आहत आधुनिक मिति भी यों समझौते केलिए लाचार हो जाती है ।

1. टेराकोटा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 6

श्रुतिमिता के मन में अपने वृद्ध अपाहिज पिता के प्रति एक सहज और स्वाभाविक स्नेह और सेवा का भाव था । वह नहीं चाहती थी कि उसके देखते देखते उसके माता पिता एक वैभवपूर्ण जीवन छोडकर नितान्त नारकीय जीवन व्यतीत करें । वास्तव में सेनापति कंबोज पाण्डवों के पक्ष में लडने केलिए आये थे, लेकिन हस्तिनापुर में पहुँचकर कंबोज सेनापति को लगा कि अन्याय पाण्डवों का है, इसलिए कौरवों को मदद देने का संकल्प लिया ।

युद्ध की समाप्ति के बाद भी कंबोज सेनापति का विश्वास था कि युद्ध समाप्त नहीं हुआ क्योंकि अनैतिकता तब भी जारी रहती है । हस्तिनपुर राजमार्गों पर कंबोज सेनापति की पुत्रियों को पाण्डव सेनापतियों से हमेशा व्यंग्य, भर्त्सना, गालियाँ, अपमान और अभद्रता भोगना पडता है । पाण्डव सैनिक इनके साथ मनमाना अत्याचार करते हैं, सैनिकों के मनोरंजन केलिए इनको आज्ञा दी जाती है कि "गरम सलाखों पर खडा करके नृत्य करें, कभी कभी नृत्य देखते देखते कोई बर्बर सैनिक मदिरा पात्र लिये बिलकुल निकट आ जाता है, मुँह पर कुल्लाह करके हँसता है, चला जाता है, कभी कभी मदिरा का घड लेकर उनके सिर पर अर्घ देने की मुद्रा में सारी मदिरा उण्डेल देता है । मदिरा से भीगे वस्त्रों में उनसे नृत्य करने केलिए कहता है ।" [1]

ऋतुमिता की बहन श्रुतिमिता कौरव सेनापति की विधवा थी । वह, और एक बार जीवन में प्रवेश करना चाहती, लेकिन रूढीवादी धर्म और समाज प्रतिबन्धक बनता है । छोटी बहन ज्योति की नसीब में भी वैधव्य ही लिखा

1. टेराकोटा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 21

अपने पति कौरव सेनानायक पाण्डुरंग की मृत्यु के बाद ज्योतिमिता के जीवन में भी पुन: जीने की ललक पैदा होती है । कंबोज परिवार के साथ पाण्डव सेनापति कैशिकेय की सहज सहानुभूति ज्योति के जीवन में रससिंचन करने लगी । इस रिश्ते के कारण कंबोज सेनापति पर पाण्डव सेनापति उपहास की बौछार करते हैं ।

युद्ध के बाद उपजनेवाली ह्वासोन्मुख संस्कृति प्रतिशोध, रक्तपात, बर्बरता और अमानवीयता को जन्म देती है । ऐसी बर्बरता के शिकार बने गान्धार सैनिक रोहित युद्ध की यन्त्रणाओं एवं विभीषिकाओं को भोगनेवाले पात्र हैं । उनके चेहरे के बडे जख्म, बुरी तरह झुलसे हाथ, वक्ष से लेकर कमर तक झुलसे हुए चकते, जख्म से भरे हुए शरीर युद्ध की बर्बरता के स्पष्ट प्रमाण हैं ।

श्रुतिमिता ने नर्तकी होकर सोचा था कि कला के नाम पर उसे कुछ राहत मिलेगी, लेकिन बाद में उसने महसूस किया कि पाण्डव सेनापतियों के कुचक्र से और उनकी विषैली दृष्टियों से बचना असंभव है । सत्य और मर्यादा केलिए युद्ध करते करते उन सामन्तों और सेनापतियों की दृष्टि और उनकी कामनाओं में केवल हिंसा, बलात्कार और बर्बरता ही शेष बची है । आर्य-कुल पुण्डलीक के हाथ से एक लाख स्वर्ण मुद्राओं को उपहार के रूप में श्रुतमिता इस शर्त पर स्वीकार करती है कि वह आजीवन किसी से विवाह नहीं करेगी और नगरवधू के पद को सुशोभित करती रहेगी । इन लाख स्वर्ण मुद्राओं से वह अपने घायल अपाहिज पिता को, अंधी माँ को, अकेले असहाय, अनाथ सा भटकनेवाले भाई रामभद्र का सम्मान देना चाहती है ।

कैशिकेय की पत्नी महाश्वेता स्वयं किये हुए अपराध की आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या करती है। जब उसका पति कैशिकेय युद्ध में भाग लेने गये महाश्वेते का संबंध राज्य के मंत्री से हो गया। होनेवाली अपनी जारज संतान के कारण ही उसने खुदकुशी की थी। फिर भी जनसमूह इस आत्महत्या का दायित्व ज्योतिमिता पर डालता है। कंबोज सेनापति के साथ उनके अपाहिज सैनिकों ने मिलकर आग लगायी। शादी के बाद कैशिकेय और ज्योतिमिता को कोई मानसिक चैन नहीं मिलता। पूरे राज्य में वे दोनों महाश्वेते के हत्यारे जाने जाते हैं। कैशिकेय सन्यास ग्रहण करता है, बाद में ज्योति एक कलाकार शिल्पी की प्रेमिका बन जाती है। उस कलाकार ने भी उसे धोखा दिया। नगरवधू बनने के बाद ऋतुमिता हस्तिनापुर छोड़कर इन्द्रप्रस्थ चली गयी। उसे लगा कि जीवन का समझौता जो उसने इस आशा से किया था कि वह अपने परिवार को स्वाभिमान दे सकेगी गलत निकला। इस बात से वह बिलकुल तंग आ गयी कि प्रत्येक विजयी पक्ष का सैनिक उसे अपनी संपत्ति की तरह इस्तेमाल करना चाहता है।

"टेराकोटा" में "मूल कथा के समानान्तर महाभारतोत्तर शान्तिपर्व के पात्रों को लेकर ऋतुमिता और रोहिताश्व की कथा चलती है, जो अनेक संदर्भों में मूल कथा से साम्य रखती है।"[1] "इस प्रकार आज के संदर्भों में मानवीय दृष्टि से देखी गयी यह पौराणिक कहानी कहीं फैन्टसी के रूप में, कहीं समानान्तर कथा के रूप में विकसित होती है।"[2]

1. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - पारूकांत देशाई - पृ. 50
2. प्रकर संयुक्त विशेषांक (मई - जून) - पृ. 43

क्षण के मोह में डूबी नारी की विवशता

"तीसरा प्रसंग"

मन की चंचलता व्यक्ति के जीवन को खतरनाक बना रही है। मनुष्य को हर कार्य में स्थिरता होनी चाहिए। अस्थिर मन हमेशा इधर उधर भटककर व्यक्ति को परेशान करते हैं। ऐसे लोगों को जीवन में कभी चैन नहीं मिलता, कभी शांति नहीं मिलती। वे हमेशा बेचैन ही रहते हैं। मनुष्य को चंचल और अशांत बनाने के पीछे उसकी परिस्थितियाँ काम कर रही हैं। घर के दम घुटनेवाले वातावरण से मुक्ति पाने केलिए उसे बाहर राह देखनी पडती है। प्यार के अभाव से संतप्त आत्मा प्यार को खोजने केलिए विवश हो जाती है। कहीं न कहीं आत्मीयता न देखने पर मनुष्य की चंचलता अधिक बढ जाती है।

"तीसरा प्रसंग" उपन्यास की नायिका जयन्ती के मन की चंचलता उसकी चरम सीमा पर है। समर्थ और धीर नारी होने पर भी उसे कभी ज़िन्दगी में चैन नहीं मिलता। हर कार्य में उसे आशंका ही है। उसकी ज़िन्दगी की पराजय का कारण उसकी चंचलता ही है। प्रारंभ से ही वह ऐसी नारी के समान दिखायी पडती है। इसका कारण शायद उसकी पारिवारिक स्थितियाँ होंगी। बचपन से ही वह उपेक्षित थी। उसकी देखभाल मामा ने ही की। उसकी ज़िन्दगी में चार पुरुषों - शंकर, दामोदर, केवल और कपूर - का अपना स्थान है। बचपन के साथी शंकर से उसका व्यवहार उदार है। उसके प्रति जयन्ती के हृदय में ममता है। उसे लगता है "शंकर केवल एक भावुक मित्र हो

सकता है, पति या नायक प्रकार का व्यक्ति नहीं हो सकता था ।"[1] वह शंकर से शादी करना कभी नहीं चाहती थी । दामोदर में वह स्वप्निल संसार के नायक का रूप देखने लगी । उसका पूरा व्यक्तित्व जयन्ती केलिए आकर्षण का केन्द्र बन गया । धीरे धीरे दामोदर उसकी कमज़ोरी बन गया । इस कमज़ोरी को वह अपनी नियति मानती थी । केवल की पत्नी बने पाँच वर्ष बीत जाने पर भी दामोदर को देखने पर न चाहते हुए भी उसके मन में पुरानी यादें उभरने लगीं । दामोदर के साथ के संबन्ध का दुष्परिणाम है वीना । और इसी कारण से ही केवल को जयन्ती का संबंध छोडना पडता है । जीविका चलाने केलिए कपूर के स्कूल में प्रिंसिपली का काम करनेवाली जयन्ती कपूर को अपना सब कुछ मानती है । कपूर के सामने अपने को समर्पित करने में वह कभी हिचकती नहीं । जब स्कूल की कमिटी ने कपूर को मैनेजर के पद से हटा दिया तब वह बीमार पड गई ।

ज़िन्दगी के कटु अनुभवों ने उसे इतना साहसी बना दिया कि वह अपनी कहानी अपने दामाद बननेवाले दीपक के सामने प्रस्तुत करने केलिए भी तैयार हो गयी । बाद में पुत्री वीना को कोई कष्ट न पहुँचाने के उद्देश्य से वह दीपक से अपनी ज़िन्दगी की गलतियाँ बताती है । अपनी इकलौती बेटी की शादी के दिन ही वह घर छोडकर चली गयी । पटना में दामोदर के साथ शेष ज़िन्दगी बिताने केलिए आने पर देरी हो गयी । उसकी शादी हो चुकी है । लेकिन उसकी खोज में आये शंकर के साथ जाने केलिए वह तैयार न थी । उसके विचारों में ये चारों - दामोदर, शंकर, केवल, कपूर - उसे ज़िन्दा नहीं रहने

1. तीसरा प्रसंग - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 15

देते - "मेरा अपमान, मेरे जख्म, मेरी चोटें, मेरी मसलनों को ये उभार कर रख देती है और मैं चूर चूर हो जाती हूँ।" [1] वह जीवित रहना चाहती है, जीवन से भागना नहीं चाहती। जयन्ती की कथा जानने पर दामोदर की पत्नी रेखा उसकेलिए अपना पत्नी पद त्याग करने केलिए तैयार हो गयी। वह यह त्याग सहन नहीं कर सकती। इसलिए दीपक और वीना के स्वागत में प्रबंध किये गये पार्टी के सही अवसर पर वह घर से गायब हो गयी। अपनी पहाडवाली कोटेज में आने पर भी उसे शांति नहीं मिलती। जीवन में पराजय स्वीकार कर उसने कपूर को आश्रय मांगकर पत्र भी लिखा। तब उसकी सहायता केलिए आनेवाले शंकर को देखकर उसने पत्र फाडकर फेंक दिया। शंकर के आने पर ही उसे थोडी शांति मिली है। अशांत मन से इधर उधर घूमनेवाली जयन्ती को सांत्वना देने केलिए उसके बचपन का साथी शंकर मात्र था।

विश्वास के अभाव में टूटा हुआ संबन्ध

पारिवारिक जीवन की दृढता केलिए स्त्री पुरुषों के बीच परस्पर विश्वास होना चाहिए। विश्वास के स्थान पर वहम आने पर संबन्ध टूट जायेगा। स्त्री - पुरुष दोनों को परस्पर एक दूसरे के अतीत को कुरेदना अच्छा नहीं है। उन्हें अतीत छोडकर वर्तमान ज़िन्दगी पर ही ध्यान देना चाहिए। लेकिन इसके विपरीत यह देखा जा सकता है कि कभी कभी व्यक्ति अपनी कमज़ोरी भूलकर दूसरे की गुनाहों को ढूँढ रहे हैं। इससे पारिवारिक

1. तीसरा प्रसंग - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 184

जीवन में शिथिलता आ जायेगी और निकट भविष्य में संबन्ध भी टूट जायेगा। माता - पिता के विघटित संबन्धों का असली प्रभाव बच्चों पर ही पडता है। हर टूटे आदमी के पीछे टूटे परिवारों की कहानी है।

उपन्यास के केवल और जयन्ती का वैवाहिक संबन्ध टूट जाने का कारण केवल के मन का वहम है। जयन्ती को विवाह के पहले शंकर और दामोदर से निकट संबन्ध था। शंकर से आत्मीय संबन्ध है तो दामोदर से शारीरिक संबन्ध लेकिन विवाह के बाद वह केवल पर अडिग विश्वास और श्रद्धा रखकर ज़िन्दगी बिताती है। दोनों ने विवाह के दिन ही अपने अपने अतीत को भूलने का शपथ भी लिया है। जयन्ती को शादी के दिन कास्केट देनेवाले शंकर के प्रति जो शंकाये केवल के मन में उत्पन्न हुई थीं वे उसे अशांत बना देती हैं। केवल की शंका ने ही विदेश से लौटे दामोदर के साथ जाने केलिए और उसका बुरा परिणाम भोगने केलिए जयन्ती को विवश कर दिया।

टूटे संबन्धों के शिकार

माता पिता के ऐसे बर्ताव का फल भोगनेवाले बच्चे ही हैं। जयन्ती के बुरे व्यवहार का परिणाम है उसकी बेटी पीना। माँ की रीति से वह बहुत दुःखित है। वह यह भी नहीं जानती है कि उसके पिता कौन है ? माता के पास के फोटो से उसके साथ बैठनेवाले केवल को उसने अपना पिता समझा, बाद में उसने जान लिया कि उसके पिता दामोदर है। माता के साथ रोज़ घर आनेवाले कपूर से वह घृणा करती है। लेकिन वह कुछ नहीं कर पाती।

वीना में घृणामिश्रित विवशता है । वह निस्सहाय है । माता के जीवन का रहस्य वह समझ नहीं पाती । वीना ने माँ का जीवन देखा है और उसकी अभिशप्त यातनायें देखी हैं । इसी कारण वह सौन्दर्य को ज़िन्दगी में महत्व नहीं देना चाहती है । "उसे हमेशा अपनी माँ सुन्दर लगी थी । उसे ही नहीं उसको देखनेवाले प्राय: सभी व्यक्तियों ने उसके सुन्दर होने को स्वीकार किया था लेकिन अपने माँ की ज़िन्दगी चारों ओर कितनी विषाक्त तत्वों से घिरी थी वह देख चुकी थी ।" [1] दीपक वीना की स्थिति में परिवर्तन लाना चाहता है । वह उसे अच्छाइयों की ओर देखने केलिए प्रेरित करता है अपनी माता के अनुभवों को देखने के कारण ही वीना हमेशा हर बात को एक अस्वीकार से प्रारंभ करती है और स्वीकार के रूप में वापस ले लेती है । दीपक से उसकी शादी होने पर उसे इस अवस्था से मुक्ति मिली है ।

दामोदर भी टूटे संबन्धों का शिकार है । वीना के पिता होने पर भी उसे मानने केलिए वह हिचकता है क्योंकि वह पिता की भावना के बिना ही ज़िन्दगी बिता देना चाहता है । पिता के रिश्ते को वह व्यर्थ का मानता है । उसके पिता ऐसा एक आदमी था । कलकत्ते में पिता की आवारी ज़िन्दगी और माँ के अकेलापन से वह ऊब गया है । अभाव और तनाव की ज़िन्दगी में हाईस्कूल परीक्षा करने के बाद आगे न पढ़ने का निश्चय किया था । माँ ने पढ़ने केलिए विवश किया । वजीफा भी उसे प्राप्त हुआ है । पिता ने उस रूपये को शराब केलिए माँगा तो माता ने नहीं दिया । इस बात को लेकर हुए झगडे के बाद वह नाराज़ होकर चला गया । फिर कोई पता नहीं है । दामोदर को लगा कि उसके कारण ही पिता को घर छोडना

1. तीसरा प्रसंग - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 34

पडा । माँ उसकी प्रतीक्षा करती रहती है क्योंकि वह दामोदर के पिता है । लेकिन दामोदर उसे पशु मानता है । दामोदर के मुँह से पिता को अपना अभिशाप कहना सुनकर माँ बेहोश गिर पडी । पन्द्रह दिन बाद वह मर गयी । दामोदर को लगा कि माता का घातक भी वह है । फिर वह चुप चाप घर में पडा रहा । किसी पर ध्यान नहीं दिया । उसमें आत्महत्या करने की ताकत नहीं है । वह एक प्रकार की निर्ममता का जीवन जीने के लिए अभिशाप्त हो गया । उसके सामने दया, करूणा, क्षमा आदि निरर्थक हो गयी । हर एक कठोर प्रवृत्ति उसे एक प्रकार का संतोष देती है । वह हमेशा प्रतिहिंसा की भूख से तडपता रहता है । उसने निर्ममता से परीक्षायें पास की, प्रोफेसर बन गया । दामोदर के व्यक्तित्व का ऐसा बिगडा रूप धारण करने में परिवार के टूटे संबन्धों का बडा हाथ है ।

अनाथ मानसिकता की मर्मगाथा

"सफेद चेहरे"

पारिवारिक जीवन को सुदृढ बनानेवाले नैतिक मूल्य आज शिथिल हो गये हैं। आज के ज़माने में मूल्यों का स्थान अर्थ ले गया। अर्थ के सामने सारे संबंध टूटने लगे। एक ही छत के नीचे रहनेवाले लोग आपस में दुश्मनी निगाह रखते हैं। एक ही परिवार के सदस्यों के बीच में आत्मीयता नष्ट हो रही है। मनुष्य की दायित्वहीनता बढ रही है। घर, घर नहीं रह गया, घर में किसी को भी किसी की चिन्ता नहीं। परिवार की पवित्रता नष्ट हो गयी।

मनुष्य प्यार केलिए तडपता रहता है। प्यार के अभाव में उसे ज़िन्दगी ऊसर सी लगती है। हर एक व्यक्ति हमेशा यही चाहता रहता है कि कोई उसे प्यार करें और वह अपना प्यार देने केलिए किसी को चाहता है। ऐसे प्यार से वंचित व्यक्ति की मानसिकता बुरी तरह बिगड जाती है और वह गुमराह बन जाता है। प्यार की खोज में भटकते भटकते वह कई राहों से गुज़रता है, कई अजनबी व्यक्तियों से उसकी मुलाकात होती है। मनुष्य की इनसानियत सूख जाती है। उनमें प्रतिहिंसात्मक भावना सिर उठती है। वह सारे रिश्तों को ठुकरा देने केलिए तैयार हो जाता है उनका लक्ष्य मात्र नारी के जिस्म का आस्वादन करने और मानवीय मूल्यों का गला घोंटते हुए संपत्ति के नशे से चूर होने में सीमित रह जाता है।

कभी कभी स्त्री - पुरुष संबंधों की टूटन का कारण आत्मीयता का अभाव हो जाता है। पति पत्नी के बीच जो पारस्परिक लगाव होना चाहिए उसके न होने पर दोनों अपनी राह ढूँढकर निकल जाते हैं। दोनों के ऐसे व्यवहार का फल भोगनेवाले निरीह बच्चे हैं। एक ओर प्यार के अभाव में जीनेवाले बच्चे हैं तो दूसरी ओर सुख सुविधाओं के पीछे भटककर अपनी दायित्व भावना से विमुख होनेवाले माँ-बाप हैं। ऐसे वातावरण में रहनेवाले बच्चों का मन भी कलुषित हो जाता है और वे समाज का शाप बन जाते हैं। प्यार केलिए तरसनेवाले ये बच्चे जल्दी ही बिगड जाते हैं। उनके यान्त्रिक जीवन में उदासी, ऊब और ठंडा ठहराव बडी जल्दी आ जाता है, ऐसी स्थिति आने पर जीने का सारा उत्साह और इच्छा मर जाती है। इस एकरसता को मिटाने केलिए वे नये नये साथियों को ढूँढने केलिए विवश हो जाते हैं। किसी से भी प्यार एवँ आत्मीयता न मिलने पर वे निराश हो जाते हैं। उन्हें अपनी ज़िन्दगी बेमतलब और फिज़ूल लगती है।

यान्त्रिक जीवन के ऊब, कुंठा, संत्रास आदि के शिकार बने बी.के. नामक व्यक्ति के जीवन को केन्द्र बनाकर वर्माजी ने "सफेद चेहरे" का प्रणयन किया है। मूल्यशोषण की वर्तमान दुनिया में माता पिता विहीन "बी.के." अपनी अस्मिता की खोज में इधर उधर भटकता है। वह नहीं जानता कि उसके माँ-बाप कौन कौन हैं? वह स्वयं मानता है कि वह किसी की वासना का उच्छिष्ट है। बीच में जिस नारी से उसे माँ का सा स्नेह मिला वह भी किसी युवक के साथ कहीं चली गयी। जब तक माँ

न मिली थी तब तक वह माँ का दर्द नहीं जानता । परंतु एक बार पा लेने के बाद फिर सदा के लिए खो देना उसके लिए बडा दु:खदायक है । माँ की खोज में बंबई आये निराश बी.के. की मुलाकात स्मग्लिंग में मि. भटियानी की सहायता करनेवाली ममता से हुई । नशे में अपने को भूलने का प्रयास करनेवाले बी.के. निस्सहाय नारी की दयनीय स्थिति जानने के लिए तैयार हो गया । लेकिन ममता को भटियानी के साथ चलना पडता है । छ: वर्ष के बाद फिर उससे भेंट होने पर वह सिंघल की पत्नी बन गयी है ।

कलकत्ते में उसका परिचय डाली (मिसेज़ सैमुसन) से हुआ । शराब के नशे में पत्नी से झगडा करनेवाले सैम्सन और बी.के. एक ही मुहल्ले में रहते हैं । एक दिन कोलाहल बढ जाने पर बी.के. ने वहाँ जाकर दोनों को हटा दिया । उसी दिन सैम्सन घर छोडकर चला गया । बी.के. ने डाली को अपने आफीस में क्लर्क की नौकरी दिलवा दी । बी.के. और डाली का संबन्ध भी स्थायी न रहा, दो महीने बाद डाली भी उसे अकेला छोडकर चली गयी । तब उसे महसूस होने लगा – "आज वह फिर एकदम अकेला हो गया था – – – अकेला ठीक वैसा ही अकेला जैसा वह जन्मा था – – – कूडे पर फेंका हुआ, गलीजों के बीच । ठीक वैसा ही जैसा उसने अनुभव किया था जब उसकी माँ उसे अकेले छोडकर बंबई भाग गयी थी । ठीक उसी प्रकार जैसे उसने उस समय अनुभव किया था जब बंबई के.सी बीच पर कस्टम्स आफिसर्स के बीच छोडकर ममता चली गयी थी – – नितान्त अकेला, – – – निरीह – – – निराधार ।" [1]

1. सफेद चेहरे – लक्ष्मीकांत वर्मा – पृ. 60

प्यार की तलाश में फिर बी.के. पडोसिन मीनाक्षी के पास पहुँचता है । वहाँ उसके अस्तित्व की शंका उठने पर वह चला गया । फिर धोबिन रामी से उसका संबंध धीरे धीरे बढ गया । लेकिन एक दिन रामी उसकी ज़िन्दगी से गायब हो गयी । रामी के चले जाने के बाद उसके जीवन में हंसा देवी का आगमन हुआ ।

प्यार की तलाश में बी.के. निराश हो गया । हमेशा उसका अस्तित्व उसे सताता रहता है । किसी समाज ने, किसी धर्म ने या व्यवस्था ने भी उसे नहीं अपनाया है । हर कहीं उसे अकेलापन स्वीकार करना पडता है । उसने स्पष्ट किया "मनुष्य होने पर भी मेरे साथ किसी ने मनुष्यता का व्यवहार नहीं किया है क्यों मेरे नाम में, मेरे व्यक्तित्व में, मेरे जन्म के साथ न तो कोई घर संबद्ध था और न कोई परिवार ।" [1] इसलिए समाज उसे व्यंग्य सा लगा । अपने अस्तित्व की खोज करके उसने स्वीकार किया "मनुष्य का अस्तित्व उसकी संभावित कल्पना में है, अन्य किसी भी रूप में संभव नहीं है ।" [2]

इसी बीच बी.के. का परिचय इलाहाबाद में अपने पडोसी डॉ. सेठी से भी हुआ । इस सेठी के षड्यन्त्रों के कारण झूठी दवाओं के नाम पर बी.के. को गिरफ्तार किया गया । उसे अपना जीवन झुठलाया हुआ सा लगता है ।

1. सफेद चेहरे - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 249

2. - पृ. 251

जेल में उसकी मित्रता ऐसे लोगों से हुई जो प्यार के अभाव में जीवन बिताने के लिए मजबूर हो गये हैं । बी. के. की तरह पुरुषोत्तम भटियानी कैदी नं. 13, शंकर और झुम्मन मियाँ भी प्यार की खोज में अपने जीवन को अंधकार में डालनेवाले हैं । झुम्मन मियाँ अपनी पत्नी के बुरे व्यवहार का शिकार है । झुम्मन ने पडोसी आमीन खाँ के साथ पत्नी का संबंध देखकर एक दिन आमीन खाँ को मारने बन्दूक चलाना चाहा । बन्दूक चलाने पर गोली पत्नी पर पडी । वह सीधे पुलिस थाना गया । जेल में बी. के. का परिचय शंकर से भी हुआ जिसकी फाँसी निकट में होनेवाली है । वह अपने बच्चों की देखभाल बी. के. पर छोडना चाहता है । वह रेलवे में गार्ड था । एक दुर्घटना में पैर कट जाने से नौकरी से अलग हो गया । जब तक रेलवे का दिया हुआ मुआविजा था तब तक पत्नी साथ रही, बाद में वह भाग गयी । फिर उसका पता चलने पर शंकर ने उसकी हत्या की । अपनी बीवी की हत्या के कारण उसे भी जेल में आना पडा । भटियानी दो रूपवती लडकियों - ममता और विनती - की माँसलता का जायका लेना चाहता था और इसके बीच बाधा उपस्थित करनेवाले उस बूढे की हत्या उसने की जो उन लडकियों का पिता था ।

डाली और ममता के प्रयास से बी. के. की जमानत रद्द की गयी, हवालत से छुट्टी दी गयी । लेकिन जेल से छूटने की स्वीकृति उसने नहीं दी है । उसे जेल या बाहर रहने में कोई अंतर नहीं है । उसने जेल जाना स्वीकार कर लिया । उसे लगा कि शायद जेल के भीतर ही उसे अधिक शांति मिलेगी ।

इलाहाबाद जेल में फाँसी होनेवाले कैदी नं. 13 बच गया । बी.के. की फाँसी हो गयी और फाँसी की सजा से बच निकला भटियानी आत्महत्या कर लेता है ।

<u>अवैध मानव संबंधों की कथा</u>

मूल्यच्युति होने के कारण समाज में अवैध संबंध पुराने समय की अपेक्षा अधिक स्थान पा रहा है । मानव - मानव का पवित्र संबंध टूट गया । स्त्री पुरुष के सोच समझने के ढंग में भी बदलाव आ गया है । पारस्परिक प्रेम मात्र एक मिथ्या बन गया है ।

डॉ. नत्थनसिंह के अनुसार, "इस उपन्यास की कथा अवैध मानव संबधों का विवरण प्रस्तुत करती है ।" [1] उपन्यास के बहुधा पात्र अवैध संबंधों से जुडे हुए हैं । बी.के. स्वयं अवैध माँ - बाप का बेटा है । उपन्यास में हर कहीं उसका अवैध संबंध भी देखने को मिलता है । बी.के. के साथी और प्रशंसक अनुज शर्मा नारी के प्रति विशेष आकृष्ट है । वह नारी और उसके संबंध को जीवन में अधिक महत्व देता है । परकीया - प्रेम में उसकी बडी आस्था है । हंसा देवी के साथ उसके अवैध संबंध का दुष्परिणाम है प्रकाश । पुरुषोत्तम भटियानी तो ऐसा एक शैतान है जो अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए एक निरीह आदमी की हत्या करते हिचकता नहीं । मीनाक्षी, रामी धोबिन, मिसेज़ सैम्सन आदि बी.के. के प्रति अवैध संबंध रखती हैं । झुम्मन

1. प्रकर - 1972 - पृ. 13

मियाँ की पत्नी का पडोसी अमीन खाँ से अनैतिक संबंध है । बी.के. पर प्राण देने पर भी मीनाक्षी प्रकाश से यौन संबंध रखती है । ममता भटियानी को वासना का शिकार और सिंघल की पत्नी होने पर भी बी.के. से भावनात्मक इच्छा रखती है । रामी धोबिन रोज़ रात को बी.के. का घर आती जाती है । मिसेज़ सैम्सन भी बी.के. के सामने ही शांति पाती है । दमयन्ती हमेशा पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों की अर्थवत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाती है और संबंध विघटन का समर्थन करती है ।

व्यक्ति के निर्माण में परिवार का स्थान

समाज में व्यक्ति की हैसियत को नापने के कुछ मापदण्ड होते हैं । ये मापदण्ड हैं परिवार, परिवार की आर्थिक स्थितियाँ, माता - पिताओं की हैसियत आदि । एक अवैध संतान समाज के तीखे - कटु अनुभवों का शिकार इसलिए होता है कि उपर्युक्त मापदण्डों से उसका नापतौल किया जाता है तो उसकी हैसियत, नहीं के बराबर हो जाती है । दूसरों से मिलने वाली निन्दा, उपेक्षा की भावना, आत्मीयता रहित व्यवहार आदि से उसका मन तिलमिला उठता है । नर और नारी के क्षणिक मोह का शाप ढोनेवाली जारज सन्तान दूसरों के अमानवीय व्यवहार से बहुत तंग आ जाती है । उसका मन विद्रोह कर उठता है । उसे ऐसा लगता है कि खुद अपनी ज़िन्दगी एक बोझ है । बी.के. की ज़िन्दगी का सबसे बड़ा अभिशाप यही था । जिन जिन राहों से वह आगे बढता है वहाँ इस उपेक्षा की भावना उसे घेरती है । वह खुद सोचता रहा कि उसे किधर जाना है, उसकी दिशा

कौन सी है, उसकी यात्रा या उसकी मंजिल कौन सी है । "इस दुनिया में वह बिलकुल एक प्लेटफार्म पर चलनेवाले यात्री के समान है - जो इतने असंख्य आदमियों से अपरिचित होने के बाद चलने, उतरने और यात्रा में एक होते हैं ।" [1] क्योंकि इस दुनिया में कोई भी किसी का नहीं है । सब तीव्र गति से अपनी अपनी इच्छा पर चलनेवाले हैं ।

वह समझता है कि जिस व्यक्ति की माँ का पता न हो, बाप का पता न हो वह समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता । उसे लगता कि किसी भी आदमी के लिए बाप एक कीमत है जिसके आधार पर ही वह अपनी कीमत लगा सकता है और अपना मूल्यांकन कर सकता है । जहाँ जहाँ वह आगे बढता है और जिन जिन व्यक्तियों से मुलाकात होती है, इस यकीन के साथ कि उनसे प्यार मिलेगा, वहाँ उन्हें धोखा ही खाना पडा । एक असली चेहरे को उन्होंने कहीं न देखा । मुखौटों में छिपे हुए हर एक चेहरे की असलियत से परिचित होते ही वह चौंक पडता है । उसकी सबसे बडी कमजोरी यही थी कि ऐसे बेवफादार चेहरों की दुनिया से दूर वापस चले जाने की इच्छा होते हुए भी वह चल नहीं सका ।

जो समाज उसकी अवहेलना करता रहता है बी.के. की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं है । उसे न किसी समाज ने, न किसी धर्म ने, न किसी व्यवस्था ने ही अपनाया है । उसके जन्म के साथ किसी घर परिवार के संबंध न होने के कारण मनुष्य होने पर भी उसके साथ किसी ने मनुष्यता का

1. सफेद चेहरे - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 132

व्यवहार नहीं किया है । संस्कारबद्ध समाज के व्यंग्य के रूप में उसका जन्म हुआ है और वह उस समाज का व्यंग्य भोगता जीवित रहा है । इसलिए उसने कभी किसी भी संस्कार का आदर नहीं किया और उसे समाज के संस्कार व्यंग्य लगते रहे हैं । संस्कार के नापतौल करनेवाले कानून कायदे के प्रति बी.के. के मन में तनिक भी आदर नहीं है । जीने और मरने तक को अस्वतंत्र बनानेवाले नियमों के प्रति उन्होंने कभी भी श्रद्धा नहीं दिखायी है । उनकी दृष्टि में, "संसार जो शायद इतना क्रूर सत्य है कि पचाया नहीं जा सकता, या जिसमें जीने से लेकर मरने तक की स्वतंत्रता नहीं, नियम है, औपचारिक विशिष्टतायें हैं और जीवन, चाहे वह जिसका भी हो वह केवल उन्हीं औपचारिक विशिष्टताओं का एक रिहर्सल मात्र रह गया है ।"[1]

मृत्यु बोध के भार से आक्रान्त मानव पीढी

जीवन की अतृप्त मानसिकता मनुष्य को मृत्यु तक पहुँचाती है । उपन्यास में मृत्यु के अनेक दृश्य चित्रित किये गये हैं । मरण के दृश्यों के साथ मृत्यु दण्ड पाये अपराधियों की मानसिक अवस्था का भी चित्रण है । भटियानी अपने यौन संबन्धों की शिकार ममता तथा पत्नी विनती के पिता की हत्या करके फाँसी का दण्ड पाता है । लेकिन उस के लिए बी.के. फाँसी पर चढ जाता है । फाँसी से बच निकलने पर भी वह आत्महत्या करता है । झुम्मन मियाँ पत्नी की हत्या करता है और उसे भी मृत्यु दण्ड स्वीकार करना पडता है । रतन कार दुर्घटना द्वारा

1. सफेद चेहरे - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 131

पत्नी की हत्या करने का प्रयास करता है, लेकिन इस प्रयास में वह स्वयं मर जाता है । मीनाक्षी से झगडा करके गुस्से में जानेवाले प्रकाश मानसिक संघर्ष से हुई कार दुर्घटना में मर जाता है । बी.के. तथा प्रकाश का जीवन वृत्त जानकर जाते वक्त हुई कार दुर्घटना से मीनाक्षी की मृत्यु हो जाती है । इस उपन्यास में यत्र तत्र दुर्घटना और मृत्यु के दृश्य दिखायी पडते हैं ।

कथ्य के विभिन्न आयाम

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यासों पर सरसरी दृष्टि डालने पर मालूम हो जाता है कि उन्होंने महानगरीय जीवन के उच्च मध्यवर्गीय परिवार की ज़िन्दगी की एक झाँकी उपस्थित की है। ऐसी ज़िन्दगी की झाँकी ही हमें मिलती है जो परंपरा से चली आ रही ज़िन्दगी से बिलकुल भिन्न धरातल की है। रिश्तों की शिथिलता का मार्मिक चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है। रिश्तों में ऐसी शिथिलता के आने का कारण भी व्यक्त किया गया है। अनाम और निशि, केवल और दीप्ति, मि. खन्ना और मिसेज़ खन्ना, केवल और जयन्ती, मि. शर्मा और मिसेज़. शर्मा, मेहरोत्रा और मधु, झुम्मन मियाँ और उसकी पत्नी, भटियानी और उसकी बीबी, अगम पंडित और पत्नी, डॉ. संतोषी और उसकी पत्नी आदि के दाम्पत्य जीवन का रास्ता डगमगाते हुए दीख पडता है। बरसों एक साथ रहने के बावजूद भी एक दूसरे को समझने में असमर्थ निकलते हैं। समझौते का यह अभाव पारिवारिक विघटन का कारण बन जाता है। असहज दाम्पत्य संबंधों का तिक्त फल उनके बच्चों को ही भोगना पडता है। माता - पिता के तनाव पूर्ण संबंधों का असर बच्चों पर अवश्य पडता है। नन्हे बच्चे सिमी और विकी, वीना, मोना सब माता पिता के अहं की टकराहट में अस्त्र बनते हैं।

उन्होंने एक अछूते विषय के एक अछूते पहलू को अपने उपन्यासों में उभारा है। समाज से उपेक्षित, अपमानित अवैध संतानों का मानसिक उलझन ही यह पहलू है। अवैध संतानों को समाज हमेशा हेय दृष्टि से देखता है। समाज के

हर कोने से मिलनेवाली उपेक्षा लावारिस बच्चों के दिल का सबसे बडा जख्म है । इस जख्म को भरने केलिए प्यार और ममता का मरहम ही लगाना है । आत्मीयता और अंतरंगता के अभाव से ही इनकी ज़िन्दगी रेगिस्तान बनती जा रही है । इसके अभाव में ऐसे बच्चे समाज केलिए अभिशाप बन जायेंगे । एक लक्ष्यहीन ज़िन्दगी बितानेवाले ये बच्चे भविष्य में समाज विरोधी बन जायेंगे । ऐसे बच्चों को समाज के हितैषी बनाने की सख्त ज़रूरत है । लक्ष्मीकांत वर्मा यही कामना करते हैं । बी के, मोना, बेबी, वीना, जिम, प्रकाश आदि अवैध संतान होने का तनाव जीवन भर भोगते रहते हैं । अवैध संतान की इस समस्या के अंकन के द्वारा वर्मा ने यही प्रश्न उठाया है कि यदि एक बच्चा जिसे पैदा करके कूडे के ढेर पर फेंक दिया जाय जिसे कुत्ते और बिल्ली पालें और उस बच्चे को केवल दूसरों की दया पर जीने का व्यंग्य भोगना पडें तो उसकी मनोवृत्ति कैसी होगी ?

पूरे उपन्यासों में नारी - पुरुष के संबंधों के बदलते हुए स्वर गूँज उठता है । एक दूसरे के प्रति आकर्षण के धरातल पर उत्पन्न राग भाव का कोई स्थायित्व नहीं । वह धीरे धीरे विरक्ति और उदासीनता के धरातल पर पहुँचता है । समाज की सारी नैतिक मान्यताओं को ठुकराते हुए, समाज के नैतिक प्रतिबंधों को ललकारते हुए, बिना विवाह के सूत्रों में बँधे बिस्तर बाँटनेवाले युवक युवतियों की काममूलक संवेदना के नये आयाम पूरे उपन्यास में उभरते हैं । मिति, मोना, नोरा, जयन्ती, ममता, विनती, मधु, जीवन, जिम, प्रो. चाटर्जी, मिसेज़ शर्मा, उपरेती, अनुज शर्मा, हँसा देवी, बी के,

रामी धोबिन, डॉ संतोषी, दिव्या देवी आदि सेक्स की भूख से पीडित हैं। इसके साथ साथ लक्ष्मीकांत वर्मा ने यह भी दिखाया है कि आधुनिकता की आँधी में बहनेवाले ये पात्र टूटी, हारी हुई और विक्षिप्त मानसिकता के शिकार बनते हैं।

आधुनिक भौतिकतावादी, भोगवादी जीवन दृष्टि में अर्थ और काम का बोलबाला लोगों में दिखाई देता है। अक्सर काम अर्थ प्राप्ति का एक साधन बन जाता है, लेकिन वर्मा के उपन्यासों के पात्रों में काम का जो बोल-बाला है उसके पीछे अर्थ कमाने की ललक नहीं, लेकिन सभी पात्रों के मन में एक प्रकार की रिक्तता, शून्यता घरकर बैठती है और इससे मुक्त होने केलिए वे संबंधों के नयेपन को चाहते हैं। डॉ मीना, डॉ नीरा, बडे उद्योगपति मेहरोत्रा की पत्नी मधु, बडे व्यवसायी केवल की पत्नी दीप्ति, एडवकेट और कलाकार उपरेती, प्रिन्सिपल जयन्ती, ये सब आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं, लेकिन मन की रिक्तता को भरने केलिए ही नये नये संबंधों के पीछे भटकती हैं

पारिवारिक सीमाओं में जकडी निम्न मध्यवर्गीय शिक्षिता एवं नौकरी पेशा नारी की सामाजिक, आर्थिक विवशता से उपजी यन्त्रणाओं को लक्ष्मीकांत वर्मा ने गहराई से परखा है। अपनी आय पर घिसटकर चलनेवाले घर परिवार के बीच और अपने कुम्हले हुए कोमल सपनों के बीच मिति और ममता अक्सर अपने को अकेली और उपेक्षित महसूस करती हैं।

उनके उपन्यासों में अस्तित्ववाद के सूत्र सरलता से खोजे जा सकते हैं, अपने परिवेश से जब व्यक्ति किसी भी प्रकार का रागात्मक संबंध विकसित कर पाने में असमर्थ हो जाता है तो इस असमर्थता से अजनबीपन का बोध पनपता है और वह अनुभव करने लगता है कि वह समाज से उपेक्षित और बहिष्कृत है । समाज के नियमों और परंपराओं को प्रभावित करने में वह असमर्थ बन जाता है । सामाजिक जीवन की अर्थहीनता, आदर्शहीनता और मूल्यगत खोखलेपन का अनुभव उसके जीवन में एकाकीपन, अजनबीपन, संत्रास, आत्मनिर्वासन आदि भर देते हैं । जब मनुष्य की संवेदनायें और उसकी भावनायें बुरी तरह कुचल दी जाती है तब व्यक्ति को ऊब और बेचैनी का एहसास होता है । यांत्रिक ज़िन्दगी की तेज़धारा में बहकर आदमी के जीवन की लय और ताल टूटती हैं । तब भी वह अलगाव और अजनबीपन से घिरा रहता है । मन की इस रिक्तता से मुक्त होने केलिए वह अपने जीवन से ही पलायन करने की बात सोच बैठता है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने उपन्यासों में महानगरीय परिवेश के संभ्रान्त, बुद्धिजीवि वर्ग के जीवन के बिखराव, खालीपन, संत्रास और बोरियत को बाँधने का प्रयास किया है । "एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़", "सफेद चेहरे", "खाली कुर्सी की आत्मा" आदि उपन्यासों का मूल स्वर विसंगति बोध का है । बी के, अनाम, डॉ. संतोषी और महिम को अपनी अपनी ज़िन्दगी वहम सी निरर्थक और निष्प्रयोजन लगती है । बी के को यहाँ तक लगता है कि ज़िन्दा न रहना बेहत्तर है । वह सारी ज़िन्दगी प्यार प्यार चिल्लाता है किन्तु उसे कहीं प्राप्त नहीं होता है । बी के को प्रतीत होता है, "इस दुनिया में कोई भी

अपना नहीं होता । सब एक तेज़ गति से अपने ही इंगित पर चलनेवाले हैं -- आदमी और ज़िन्दगी दोनों में से कोई भी अपना नहीं होता । शायद सब अलग अलग हैं - अकेले हैं - अपनी अपनी यात्रा में लीन, डूबे हुए, अकेले, निर्मम, निर्मोह ।"[1] विवाह के बाद डॉ. संतोषी को लगता है उसकी ज़िन्दगी में गहरा खालीपन है जो उसके समूचे व्यक्तित्व को नोच रहा है । वह दूसरों पर विश्वास करना खो देता है । उसे शंका होती है कि आदमी आदमी से अपरिचित हो गया है । उसके लिए ज़िन्दा रहना उतना कठिन हो जाता है जितना कि मरना । डॉ. संतोषी स्वयं अनुभव करते हैं, "यद्यपि भीतर का खालीपन इतना भयंकर है जो - - - एकाकीपन में - - - मस्तिष्क में सुइयाँ - सा चुभो देता है । लगता है यह मोटी-मोटी किताबें, यह प्रयोग, यह जिज्ञासा इनमें कोई तत्व नहीं है - - सब निरर्थक है - - तत्वहीन और सार-हीन है - -।"[2] निशि की मृत्यु के बाद अनाम को अकेलापन बुरी तरह सताता है । उसे लगता है, "यह अकेलापन, अनवरत अकेलापन और यह अंधेरी रात और उसकी गहरी नीलिमा जैसे उसे कहीं अपनी ही परिधि में शव सा बना देती है ।"[3]

सारे उपन्यासों में लक्ष्मीकांत वर्मा व्यक्ति मन के यथार्थ और उसके उलझनों का ही विश्लेषण करते रहते हैं । एक सीमित दुनिया के इर्द गिर्द ही उनके उपन्यासों का कथ्य घूमता रहता है । स्त्री-पुरुषों के आत्मीयता रहित

1. सफेद चेहरे - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 93
2. खाली कुर्सी की आत्मा - पृ. 256
3. एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 47

रिश्तों और उससे उपजे तनाव पर ही उनकी दृष्टि अधिक टिकती है। इसका एकमात्र अपवाद "खाली कुर्सी की आत्मा" में ही मिलता है जहाँ उन्होंने मौजूदा व्यवस्था पर करारी चोट की है।

शिल्पगत विशेषतायें

शैली

लक्ष्मीकांत वर्मा के अधिकतर उपन्यासों में कथ्य किसी पात्र के चिन्तन मनन से शुरू होता है। पिछली घटनायें उस सोच के आसपास तैरती रहती है। "एक कटी हुई जिन्दगी एक कटा हुआ कागज़" में अनाम मौन रहकर आन्तरिक विचार प्रवाह में डूबता रहता है। आधे से अधिक, उपन्यास में अनाम अपने अतीत की स्मृति में जीता है। दीप्ति के चेतना प्रवाह के अंश में से ही हमें केवल के चरित्र और केवल और केवल तथा दीप्ति के संबंधों के दरार का पता मिलता है। "सफेद चेहरे" में कथा बहुत उपशीर्षकों से होकर गुज़रती है। ये शीर्षक हैं - मेज़ का वक्तव्य, एक लेटरबक्सनुमा आदमी का परिचय, झुकी हुई अल्पीननुमा आदमी, आदमीनुमा आल्पीनों की सिम्फनी, आदमी की थरथराती हुई आत्मा, काफी हाउस की पहली शाम से लेकर आठवीं शाम तक। बी.के. ने मरने के पहले सात आदमियों के नाम जो खत लिखे थे उसे उनके मित्र काफी हाउस में बैठकर शाम को पढ़ते हैं - इससे होकर ही कथ्य की गति आगे बढ़ती है। दरअसल उपन्यासों में शीर्षकों और उपशीर्षकों की भरमार उपन्यास को रचनात्मक अन्विति को खंडित करती है। नवल किशोर की राय में लेखक के

द्वारा दिये गये दिलचस्प शीर्षक, उपशीर्षक और उसका प्रयत्न साध्य गद्य एक मज़बूत आधार के अभाव में ढह जाते हैं - एक मलबा रह जाता है।"[1] हिन्दी काव्य की प्रयोगवादी शैली के रचनाकार होने के नाते उनका यह प्रयोगवादी दर्शन उपन्यास के कथा संगठन में भी दीख पडता है। "कोयला और आकृतियाँ" में प्रो. जीवन ने अपनी बेचैनी से मुक्त होने केलिए अपनी जो जीवनी लिखी, वह कथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है। "तीसरा प्रसंग" भी फ्लेश बैक शैली में लिखा गया है। जयन्ती के चेतना प्रवाह में जो यादें तरंगायित होती हैं उससे कथा की परतें खुली जाती हैं। "खाली कुर्सी की आत्मा" भी एक प्रयोगात्मक उपन्यास है। "शिल्प की दृष्टि से इस उपन्यास में जो साहसिक कदम उठाया गया है वह लेखक की प्रयोगशीलता का परिचायक है।"[2] चन्दनपुर रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम में रखी गई कुर्सी के माध्यम से कथानक प्रस्तुत किया गया है। रेलवे स्टेशन में पहुँचने के पहले जिन जिन व्यक्तियों के साथ उनका जो संबंध था उन लोगों की कथा प्रस्तुत करती है। साथ ही साथ वेटिंग रूम में ठहरते वक्त अपने चारों ओर के परिवेश में जो कुछ वह देखती है उसकी स्वतंत्र और निर्भीक अभिव्यक्ति देती हैं। वह तटस्थ रूप से सारे यथार्थ का बोध कराती है। मनुष्य को उसके सच्चे स्वरूप का परिचय जैसे उसने देखा है उसे कहना चाहती है। "टेराकोटा" में कथानक को चेतना प्रवाह में नहीं प्रस्तुत किया गया है। इसमें भी उन्होंने एक नये शिल्प के ढाँचे में डालने की कोशिश की है। इसकेलिए उन्होंने कथ्य को तीन धरातलों में बाँट दिया है। पहला धरातल रोहित - मिति के आपसी रिश्ते का है,

....

1. हिन्दी साहित्याब्दकोश - 1971

2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन - डॉ. विद्याशंकर राय - पृ. 83

दूसरा व्यास व गणेश द्वारा मंच पर अवतरित होकर कथा के नये संदर्भों, घटनाओं के घात प्रतिघातों तथा पात्रों की प्रकृति एवं नियति की टीका टिप्पणी करनी है, तीसरा महाभारतोत्तर शांतिपर्व के ऋतुमिता और रोहिताश्व के आपसी रिश्ते का है । उपन्यास को एक आकर्षक और रोचक शिल्प के ढाँचे में ढालने की वर्माजी की कोशिश पूर्ण रूप से सफल न हुई है । महाभारतोत्तर परिस्थितियाँ और अधूरे पात्र उपन्यास की घटनाओं और पात्रों से पूर्ण रूप से मेल नहीं खाती । पारिवारिक प्रतिबद्धता के कारण अपनी वैयक्तिक आशा आकाँक्षाओं को बलि देने में जीवन की धन्यता समझनेवाली आधुनिक पात्र मिति और पौराणिक पात्र ऋतुमिता समान धरातल पर खड़ी नहीं रह जाती है । इसके अतिरिक्त अतीत में वर्तमान का आरोप करने की लेखक की कोशिश खरी न उतरती ।

चरित्र

लक्ष्मीकांत वर्मा विशिष्ट परिस्थितियों के घेरे में पात्रों को रखकर उसके अन्तर्रूपों को उभारकर तराशता है । अधिकांश पात्र सूनी दुनिया के द्रष्टा और भोक्ता हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा ने एकाकी व्यक्ति की एकांत अंतरंगता की पहचान और परख की है । सारे के सारे पात्र एक लक्ष्यहीन, दिशाहीन और विवेकहीन जीवन बिताते हैं । टूटे, विक्षिप्त और कुंठित पात्रों की बौखलाहट, असंतोष और भटकाव को पूरी सच्चाई के साथ उभार दिया है । पात्रों के अन्दर जो क्रोध घुटता रहता है वह आगे चलकर आत्म पीडन का रूप लेता है । परिवार से, समाज से जो उपेक्षायें उसे प्राप्त होती हैं वे इन पात्रों को इस हद

तक निराश कर देती है कि वे चाहते हैं - समाज की सारी नैतिक मान्यताओं को ठुकरायें ।

व्यक्ति को अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के साथ ही लक्ष्मीकांत वर्मा प्रस्तुत करते हैं । ऐसे व्यक्ति पात्रों के माध्यम से उसकी निजी समस्याओं, कुंठाओं, संत्रास तथा सूक्ष्म मन के अन्तर्व्यापारों को वे उभार देते हैं ।

पारिवारिक प्रतिबद्धता की मजबूरी से अविवाहित जीवन बिताने केलिए विवश मिति, अपनी गृहस्थी संभालने केलिए और एक नौकरी पाने केलिए अपनी मालकिन मधु मेहरोत्रा के इशारे पर नाचने को मजबूर बन पड़े मैनेजर पॉल, अनाथ मानसिकता का अभिशाप ढोनेवाला बी.के., मोना ये सब परिस्थिति के शिकार बन जाते हैं । बी.के., अनाम, मिति, मोना, प्रो. चाटर्जी, जीवन आदि विक्षिप्तता, संत्रास, कुंठा आदि से पीडित हैं । अनाम, और बी.के. को यही अनुभव होता रहा है कि ज़िन्दगी की बोझिल भटकन में शायद उसका आधार कुछ नहीं । ज़िन्दा न रहना ये बेहत्तर समझते हैं ।

अधिकांश पात्र चेतना प्रवाह में बहनेवाले हैं । पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने की अपेक्षा पात्रों की मानसिकता को प्रधानता दी जाती है । वर्तमान यथार्थ से कटकर मात्र अतीत की स्मृतियों में एक आस्थाहीन जीवन बितानेवाला अनाम, बीती हुई ज़िन्दगी के तीखे अनुभवों से पीडित जयन्ती, मोना, जीवन, उपरेती, जिम आदि पात्रों के चेतना प्रवाहात्मक अंशों से

होकर गुज़रते ही पाठक उनके चरित्र एवं अन्य पात्रों के चरित्र से परिचित हो जाते हैं। क्षण में जीने की ललक को तरजीह देनेवाले पात्रों में चाटर्जी, केवल, अनाम, बी.के., मोना, मिसेज़ अनुज शर्मा, मिसेज़ सैम्सन, भटियानी, मिति, नोरा, रोहित, खन्ना, मिस्टर और मिसेज़ मेहरोत्रा आदि उल्लेखनीय हैं। ये सब एक प्रकार के अंधकारमय जीवन ही जीते हैं। अतृप्त आकांक्षाओं के कारण उनके मन पर ऐसा आघात पडता है कि उनका स्वाभाविक रूप दब जाता है और उनका व्यवहार अजीब रूप धारण करता है। ये पात्र कुंठित अवश्य हैं। उनके आचरण के मूल में यह कुंठा ही काम कर रही है।

नारी पात्रों की नई मानसिकता को लक्ष्मीकांत वर्मा ने गहराई से परखा है। आधुनिकता की आँधी में बहने की इच्छा रखनेवाली मिति, मोना नोरा, उपरेती, जयन्ती, मिसेज़ सैम्सन, मधु मेहरोत्रा जैसे नारी पात्र परंपरागत मूल्यों को नकारनेवाले हैं। पर पुरुष से यौन संबंध रखते हुए भी ये नारियाँ किसी भी प्रकार के अपराध बोध का अनुभव नहीं करती। ये सारे पात्र अपने चरित्र की अस्थिरता लिये हुए आते हैं। मात्र एक पुरुष के साथ अपने आप को बाँधकर ये तुष्ट नहीं रह सकतीं। प्रगतिशीलता के नशे में ये विवाह जैसी पवित्र संस्थाओं को चुनौती देती हैं, परंपरागत मान्यताओं की सीमा तोडती हैं। सभी पात्रों के मन में एक प्रकार की रिक्तता, शून्यता घरकर बैठती हैं और इससे मुक्त होने केलिए वे संबंधों के नयेपन को चाहते हैं। ज़िन्दगी के अधूरेपन की पूर्ति केलिए पूर्णता की खोज में भटकते भटकते अपूर्णता ही उन्हें हाथ लगती है। जीवन की बेचैनी से अपने आप को मुक्त न करने का द्वन्द्व हमेशा उसे सताता है। नयेपन के प्रति आकर्षण, खंडित व्यक्तित्व, मोहभंग की स्थिति,

अस्थिरता, कुंठा आदि स्थितियों से गुज़रनेवाले सारे नारी पात्र उच्च मध्यवर्गीय परिवार से ही आते हैं। वे आर्थिक अभाव से पीडित नहीं, अधिकांश नौकरी-पेशा हैं। उपन्यास के नारी पात्रों में से कुछ ऐसे होते हैं जो कितनी भी आधुनिक क्यों न हो गयी हो परंपरा से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकी है। मोडेण बनने की चक्कर में पडकर परंपरागत सारी नैतिक मान्यताओं और मूल्यों को ललकार कर आधुनिक विचारधाराओं का समर्थन करने की लाखों कोशिश करने के बावजूद भी मिति, दीप्ति और निशि अंतत: अपनी परंपराओं की ओर लौटने की इच्छा रखती हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा के नारी पात्रों की अपनी कुछ अलग विशेषतायें भी दीख पडती हैं। नारी अपनी फूटी हुई किस्मत पर रोती नहीं, फूटी तकदीर को कोसती नहीं, जीवन की कठोरतम परिस्थितियों को झेलते हुए भी जीवन से पलायन नहीं करती, किसी के सामने सहानुभूति की भीख नहीं माँगती। अपनी इच्छा और भावनाओं का ख्याल न रखनेवाले पति से विद्रोह करने में भी वे नहीं हिचकतीं। परंपरागत नायिकाओं के समान उपन्यास के पात्र पति या प्रेमी की खुशी केलिए अपना बलिदान नहीं करते। उपरेती जैसे पात्र यहाँ तक कहती है कि "समर्पण मेरेलिए मृत्यु है।" [1]

समाज में होनेवाले नारी शोषण की ओर भी उपन्यासकार ने संकेत दिया है। महानगर की कामकाजी नारी मिति और ममता को अपने ऊपर के अधिकारी

1. कोयला और आकृतियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 76

के अशोभित तथा अनुचित व्यवहार चुपचाप सहना पडता है । पुरुष के ऐसे खतरनाक जाल में फँसनेवाली ममता जैसी नारी उसे कभी तोड नहीं सकती, पशु सरीखे पुरुष की कठोरता के शिकार बनी रहती है, उसके शर्तों को स्वीकार करने के लिए मजबूर हो जाती है ।

प्रतीक

लक्ष्मीकांत वर्मा ने बिंबों और प्रतीकों के रूप में पात्रों को लेकर कथ्य को प्रभावशाली बनाने की कोशिश की है । उपन्यासों के शीर्षक से हमें सांकेतिकता का परिचय मिलता है । "सफेद चेहरे" द्वारा मुखौटों में छिपे हुए हर एक चेहरे की असलियत से परिचय कराता है । वर्माजी यही कहना चाहते हैं कि आदमी आदमी को समझ नहीं पाता । "खाली कुर्सी की आत्मा" आज के युग में मानव की लघु हस्ती का परिचय करानेवाली आत्मा का प्रतीक है । खाली कुर्सी के समान आज का व्यक्ति भी अपने आप को खाली महसूस कर रहा है । जैसे कुर्सी नीलाम होती है वैसे व्यक्ति भी नीलाम हो रहा है । आज मनुष्य शरीर की रक्षा के लिए अपने आप को नीलाम कर रहा है । रेल दुर्घटना का उल्लेख करते समय भी प्रतीकात्मकता का सहारा लिया है । उन्होंने संसार के लिए वेटिंग रूम का प्रतीक अपनाया है । वेटिंग रूम के अजनबी लोग कुछ समय ठहरने के बाद लक्ष्य की ओर जाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य भी इस संसार में कुछ समय तक रहते हैं । वेटिंग रूम के लोग अजनबी हैं और उनका परिचय अपने घेरे में सीमित है । वर्तमान समाज के ढीले बंधनों की ओर वर्माजी यहाँ इशारा कर रहे हैं । लौह पुरुष और बन्दर, गीदड, रीछ के तीनों

खिलौने भी प्रतीक हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को सूचित करते हैं। "एक कटा हुआ कागज़ एक कटी हुई ज़िन्दगी" में कथा और चरित्र को अतीत के प्रसंगों और स्मृतियों के ताने बाने में प्रतीकात्मकता और कलात्मकता के साथ पिरोये गये हैं। अनाम का अतीत उसे कहीं गहरे में दबोचे हुए हैं जिससे वे आतंकित और आक्रांतित हैं। निशि की तस्वीर पर बैठनेवाली तितली में अनाम को निशि की रंगीन आत्मा की झलक मिलती है। लेकिन सहसा जब तस्वीर के फ्रेम के भीतर से निकली छिपकली उस तितली को अपनी ज़ुबान के बीच पकड लेती है तो वह नन्ही सी जान अपनी समस्त हलचल लेकर फटफटाती है। लेकिन मुक्ति न मिलती है। यह देखकर अनाम को भीतरी घुटन महसूस होता है क्योंकि अनाम को उस तितली की फडफडाहट में निरीह निशि की आत्मा की छटपटाहट और छिपकली की ज़ुबान में खुद अपनी क्रूरता का तीखा एहसास होता है। एक बडी टाँगोंवाले मकडे का एक बडी मक्खी को अपनी दोनों टाँगों में जकडकर पिछली टाँग से आघात करना, अंत में मक्खी का आत्मसमर्पण कर देना और उसे देखते ही अनाम का भीतरी घुटन महसूस करना, फिर पूसी बिल्ली की लाश को जिप्पी {कुत्ता} का खींचकर झाडी से निकल आना और यह देखकर अनाम को निशि की याद आना और झटका सा लगना प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि निशि की मृत्यु अनाम की लापरवाही से ही हुई है। अनाम की गहरी आत्मग्लानि का कारण भी यही है। उपर्युक्त प्रतीकों और बिंबों के ज़रिए लक्ष्मीकांत वर्मा ने उपन्यास में वातावरण की सृष्टि करने के साथ पात्र की मानसिकता का सही परिचय भी दिया है। समूचे उपन्यास में जो अनकहे छोड दिये हैं उसे उपन्यासकार ने बिंबों और प्रतीकों में आँका है। "तीसरा प्रसंग" में जयन्ती की मानसिकता को व्यक्त करने केलिए चिडिया का

प्रतीक अपनाया गया है । रोगग्रस्त जयन्ती के कमरे की खिड़की से वह चिड़िया रोज़ आती जाती है । ज़िन्दगी के पुरुषों से शरण न मिलने पर निराश होकर अपने घर लौटी जयन्ती की मदद के लिए बचपन का साथी शंकर आया है । उस दिन भी चिड़िया आयी, पर खून से लथपथ होकर वह गिर पड़ी और वहीं मर गयी । जयन्ती के मानसिक द्वन्द्व की समाप्ति चिड़िया की मृत्यु द्वारा सूचित की गयी है । "तीसरा प्रसंग" शीर्षक भी प्रतीकात्मक अर्थ लिया हुआ है । स्वयं लक्ष्मीकांत वर्मा के मत में "तीसरा प्रसंग वह प्रसंग है जिसे आदमी अपने अन्तर्जगत में जीता है किन्तु उसका वही द्रष्टा और वक्ता होता है ।"[1] इस उपन्यास की जयन्ती वह आदमी है जो अपने अन्तर्गत में जीकर स्वयं द्रष्टा और वक्ता बन जाती है । "टेराकोटा" में उपन्यासकार ने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है उसमें आंशिक सफलता ही उसे मिली है । "टेराकोटा" इटालियन शब्द है जो टेरा (Terra) और कोटा (Cotta) के योग से बना है । "टेरा" का अर्थ है मिट्टी और "कोटा" का अर्थ मूर्ति ।"[2] अत: "टेराकोटा" का अर्थ है मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी के खिलौने । पुरातत्वान्वेषी रोहित को खुदाई में मिली सात मृण्मूर्तियाँ महाभारतकालीन कल्पित की गयी है । उपन्यासकार कथा को युद्ध के तुरन्त बाद यातना भोगते हुए सात पात्रों तक ले जाते हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा इन पात्रों को आधुनिक मानव के प्रतिरूप ही मानते हैं । दिल्ली के संत्रस्त, टूटे हुए, क्षत विक्षत पंगु आदमी में वर्मा को अतीत के उन अभिशप्त पात्रों का प्रतिबिंब ही दीख पड़ता है । उनके राय में "फर्क केवल इतना है कि

1. लेखक के साथ हुए साक्षात्कार से

2. Concise Oxford Dictionary - Reprinted Vth Edition - 1972 - पृ. 1337 - 277

आज की पंगुता मानसिक है और आज से पहले हस्तिनापुर की पंगुता कायिक थी।"[1] लक्ष्मीकांत वर्मा स्वयं लिखते हैं - "ये अधूरे पात्र ही कलियुग की पूँजी हैं। इन्हीं के आधार पर कलियुग में कथायें लिखी जायेंगी और उन्हें कोई कलियुग का ही लिखेगा।"[2] जैसे यह कथा बिलकुल आज की है, आज के जीवन की है, उसकी विसंगतियों की है। लेखक की प्रतीक योजना में स्वाभाविकता की रक्षा नहीं हुई है। "कोयला और आकृतियाँ" में उपरेती जो चित्र खींचती है वे परिवेश के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का परिणाम है। उपरेती को हर हँसते हुए चेहरे के पीछे एक खौफनाक दर्द ही मिलता है। उपरेती महज दिल बहलाने के लिए ही पेइन्टिंग करती है। उसका विश्वास है रंगों में आन्तरिक संघर्षों को शान्त करने की शक्ति होती है, नस - नस की पीडा को निचोड कर जोड जोड मुक्त कर देते हैं। उसका प्रिय रंग वर्मीलियन था और उसका प्रयोग उन्होंने विभिन्न त्रिकोणों में किया था। उपरेती के जीवन में जो गहरी आग है, विद्रोह है वह दीवारों पर लगे हुए चित्रों पर भी दीख पडता था। एक निराश आदमी का जो पोर्ट्रेट उसने बनाया था उसके आँखों में जैसे मशालें जल रही थी और पृष्ठभूमि का नीला रंग जैसे उसके निश्चय को और भी घनीभूत कर रहा है, निराश आदमी के माथे, सीने, दोनों हथेलियों पर वर्मीलियन रंग ऐसा लगा हुआ था जैसे सारी वितृष्णा ही लाल चटक होकर व्यक्त हो रही थी।

1. टेराकोटा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 8
2. - पृ. 3

भाषा

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यासों की भाषा पात्रों की मानसिकता व्यक्त करने में सफल निकली है। जीवन की ऊब, पीडा और अवसाद से ग्रस्त अनाम, बी.के., मीना आदि की भाषा में भी एकरसता, निराशा और उदासी की झलक है। अपने अस्तित्व के सूत्र खोजनेवाले पात्रों की अपनी विचित्र मानसिकता है। वे सोचते हैं कुछ और कहते हैं कुछ। इसलिए उनकी भाषा में एक क्रमबद्धता का अभाव अवश्य है। अक्सर भाषा का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति केलिए ही होता है, लेकिन विचित्र मानसिकता के शिकार बने हुए जीवन, मिति, जयन्ती जैसे पात्र अपने भावों को छिपाने केलिए ही भाषा का प्रयोग करते हैं। बाह्य रूप से असंगत प्रतीत होनेवाले संवाद कहीं कहीं आन्तरिक अर्थ की व्यंग्यात्मकता और मार्मिकता के सहारे वर्तमान परिवेश पर प्रहार करते हैं जैसे - "मैं नहीं जानता - - सुना है स्टेशन मास्टर के यहाँ काफी समान आया है - - और किसका होगा - - उन्हीं लावारिसों का होगा - - इन मुर्दों के साज व सामान से आदमी कब तक अपने को सजायेगा - -" [1] यहाँ रेल दुर्घटना से ग्रस्त लोगों के जीवन पर किसी को भी आस्था नहीं। लोगों का ध्यान उनके सामान पर हैं। केवल के जीवन को यों भाषाबद्ध किया है, "कठोर कर्कश जीवन, हर चीज़ एक दौडती रील सी भागती हुई - - होटेल, रेस्ट्रों, बार, बाज़ार, हवा, बादल धुआँ, काजल, कन्धे से कन्धे मिलते हुए, पैर से पैर भिंचते हुए - - तेज़ भागती हुई शक्लें, बाबड, क्रिस्प, कटे - छटे, बढे - चढे, हाथ जो बस पर टंगे है, जो किसी के गले में पडे हैं।" [2] प्रतीक और बिंबों के प्रयोग से भाषा में एक प्रकार का निखार आ गया है। वेटिंग रूम की

....

1. खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 94
2. एक कटी हुई ज़िन्दगी:एक कटा हुआ कागज़ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 138

ज़िन्दगी, टाँगेवाले मकडी का फँस जाना, चिडिया का मरण आदि प्रतीकों से उपन्यास की भंगिमा बढ गयी है। प्रतीकों और बिंबों के अधिक प्रयोग से "एक कटी हुई ज़िन्दगी एक कटा हुआ कागज़" में कहीं कहीं पहाडियों, चट्टानों के वर्णन में काव्यात्मकता आ गयी है। लेकिन प्रतीकात्मकता के अतिमोह से निशि की मृत्यु को स्पष्ट करने में भाषा दुरूह बनकर असमर्थ हो गयी है। इस प्रतीकात्मकता का अतिमोह और भाषा की दुरूहता ने उपन्यास को पाठकों के एक विशेष वर्ग तक सीमित रख दिया है। लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यासों में कहीं कहीं इतनी कृत्रिमता आ गयी है कि बहुत सारे पात्रों की आपसी बातचीत मात्र बौद्धिक वाद-विवाद या शब्दों के खिलवाड रह जाती हैं। उनके उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग भी हुआ है। अधिकांश पात्र आभिजात्य वर्ग के होने के कारण भाषा में बोलचाल की हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी और उर्दू भाषाओं का प्रयोग भी हुआ है। रोहित, मिति, मि. खन्ना, मोना, जीवन, जयन्ती, वीना, आदि पढे लिखे लोगों की भाषा ऐसी हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू की मिली जुली भाषा है। अनपढ लोगों की भाषा में ग्रामीण भाषा की बोलियों का प्रभाव है। रामी धोबिन, वृद्ध पेइन्टर, नर्स आदि लोगों के बीच ऐसी भाषा का प्रयोग है। उनके उपन्यासों की भाषा जनजीवन की भाषा से संबंध न रहने के कारण उपन्यासों में जीवंतता न आ गयी है। इस प्रकार भाषा की संरचना में लेखक पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए है। इनमें खूबियों के साथ कमियाँ भी हैं।

अतः लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यासो का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने कथ्य और शिल्प के स्तर पर प्रयोगशीलता अपनाने की कोशिश की है।

पाँचवाँ अध्याय

लक्ष्मीकांत वर्मा की कहानियाँ

लक्ष्मीकांत वर्मा की कहानियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का इतिहास आन्दोलनों का इतिहास रहा जो इस विधा की रचनात्मक शक्ति का प्रमाण है। नई कहानी, अकहानी, सचेत कहानी, आँचलिक कहानी, नगर और कस्बे की कहानी, साठोत्तर कहानी, समान्तर कहानी आदि संबोधनों के पीछे कुछ न कुछ वैचारिक संघर्ष झलकता है और यह इस बात का सबूत है कि हिन्दी कहानी ज़िन्दगी की उथल पुथल के साथ बड़ी गहराई से जुड़ी हुई है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपनी कहानियों को किसी साहित्यिक आन्दोलन से पूर्ण रूप में संबंधित करने की कोशिश न की है। फिर भी उनकी कहानियों में नई कहानी की कुछ प्रवृत्तियाँ सीधे उतरी हैं।

नई कहानी - एक नई चेतना

नई कहानी की चर्चा पूर्ववर्ती कहानी परंपरा की चर्चा के बिना बिलकुल अधूरी ही रह जायेगी। नये कहानीकार कभी परंपरा और पिछली पीढ़ी के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दाय को कभी नकार नहीं सकते। दरअसल हिन्दी कहानी साहित्य का वास्तविक पुन:स्थापन और आधुनिक कहानी का विकास प्रेमचन्द से ही संभव हुआ है। प्रेमचन्द ने संवेदनात्मक स्तर पर जो परिवर्तन उपस्थित किया उसको अनदेखा करके नई कहानी को आन्दोलन का स्वरूप देना व्यर्थ व्यायाम ही है। प्रेमचन्द के बाद एक ओर जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय

और इलाचन्द्र जोशी की कहानियाँ और दूसरी ओर यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृत राय एवं बहुत से लेखकों की कहानियाँ बदले हुए परिवेश को बहुत कुछ बदले हुए ढंग से अंकित करती सी दीखती हैं । जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मनोविश्लेषण का अतिशय आग्रह है जो उन्हें प्रेमचन्द से अलगाता है । कथानक को लेकर बेहिसाब प्रयोग किये गये हैं । प्रेमचन्द के बाद कहानी बहुत सूक्ष्म और संकेत संपन्न भी हुई । यशपाल और अमृत राय ने बदलते हुए राजनैतिक परिवेश को चित्रित किया और अर्थहीन रूढ मान्यताओं और सामयिक अनिवार्यताओं के अन्तर्विरोध को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से सामने रखा । अश्कजी जो जीवन के बदलते हुए आयामों के प्रति पूर्ण सजग और चेतन रह सके हैं, कहानी के विकास के समानान्तर बहुत दूर तक चले । उनकी दृष्टि जीवन की समग्रता की ओर अधिक थी ।

देश की स्वाधीनता के होते ही कहानी के क्षेत्र में एक नई चेतना स्फुट हुई जिसे मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर ने मुखरित किया । कहानी में कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से नयी चेतना होने के कारण नई कहानी नाम पड गया । नई कहानी की कथ्य चेतना परिवेश से प्रेरित है । विचार बिन्दु, यथार्थ धरातल से उभरे हैं और अभिव्यक्ति में तटस्थता है । स्वाधीनता बोध ने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं भाषा चेतना के क्षेत्र में निजता बोध की सृष्टि की । विभाजन आघात ने भी कथ्य के स्तर पर जीवन यथार्थ का अंकन करने के लिए प्रेरित किया । स्वातंत्र्योत्तर मानसिकता की पृष्ठभूमि में भीषण राजनीतिक उथल पुथल, विश्वयुद्ध और महंगाई, मुद्रास्फीति, चोरबाज़ारी, देश विभाजन और शरणार्थी समस्या आदि

घटनायें हैं । परिवर्तित परिस्थितियों में नई पीढी संकट का अनुभव करने लगी । किसी भी सजग रचनाकार के लिए जिन्दगी की वास्तविकता से आँखें चुराना संभव न था । स्वतंत्रता के बाद मूल्य टूटे ही नहीं, उनके अस्तित्व का प्रश्न खड़ा हो गया । पुरानी पीढी के कथाकार जहाँ युग संवेदनाओं को मुखर करने में निष्फल जा रहे थे वहीं नई पीढी के रचनाकारों ने समय के रंग पकड़ने की अकुलाहट की । खुद राकेश ने इस पर प्रकाश डाला है, "दर असल 1950 के लगभग कुछ 10 - 12 लेखकों का एक ग्रूप था जोकि मुख्यत: कहानी लिखने का शौक रखता था उस समय हम लोगों में एक अजीब सी अकुलाहट थी, ऐसी तीव्र आकांक्षा लिये हुए थे, चाहते थे कि हम अपने समय के रंग को पकड़ पायें ।" §1§

नई कहानी आन्दोलन नाम कैसे पड़ा ? इसके संबंध में राकेश स्पष्टीकरण करते हैं, "नई कहानी आन्दोलन एक आन्दोलन के रूप में नहीं शुरू हुआ था । हममें से बहुत से लिख रहे थे और अदला बदली के इस माध्यम द्वारा जो कि आसपास के यथार्थ को व्यक्त करता था, हममें से बहुत से एक दूसरे के करीब आ गये अर्थात एक दूसरे में समानता सी स्पष्ट होने लगी और इसी को बाद में नई कहानी आन्दोलन नाम दे दिया ।"[2] राजेन्द्र यादव के शब्दों में, "नई कहानी का नामकरण नई कविता की तरह अपनी पिछली परंपरा से अलगाने के लिए हुआ था ।"[3] नई कहानी समय, विचार, बोध, कथ्य, अभिव्यक्ति

1. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - मोहन राकेश - पृ. 140
2. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - मोहन राकेश - पृ. 140
3. नई कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 43

आदि अनेक दृष्टियों से नयापन लेकर चली । नई कहानी में प्रामाणिकता उसकी पहली शर्त थी क्योंकि उससे पूर्व "जहाँ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सामाजिक संदर्भ थे वहाँ व्यक्तिगत प्रामाणिकता नहीं थी । और जहाँ व्यक्तिगत प्रामाणिकता का आभास था वहाँ ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि की दयनीय अनुपस्थिति थी । इसलिए प्रामाणिकता संदिग्ध हो उठी थी ।"[1]

नई कहानी - परिवेश

परिवेश के प्रति लेखक की प्रतिक्रिया को ही हम रचना मान सकते हैं । रचनात्मक संवेदना में परिवेश मूल होता है । परिवेशजन्य स्थितियाँ रचनाकार के कृतित्व पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है ।

"आज जब कि साहित्यकार की चेतना शतगुणित होती हुई परिवेश के समूचे फैलाव को अपने भीतर समाती जा रही हो, तब तो समकालीन परिवेश की बाँहों का सहारा लिये बिना एक कदम भी चल पाना असंभव नहीं तो कठिन और बेमतलब अवश्य लगता है ।"[2] परिवेश की परिवर्तनशीलता के मुताबिक साहित्यिक विधाओं के विषय वस्तु में और रूप बंध में बदलाव आता रहता है । परिवेश से कटकर लिखी जानेवाली रचना कभी प्रामाणिक नहीं होती । रचनाकार जिस परिवेश से जुडा रहता है और जिन सुख दु:खात्मक जीवन मूल्यों और संघर्षों से वह गुज़रता है उन्हीं को अपने निजत्व के साथ

1. नई कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 43
2. कहानीकार मोहन राकेश - डॉ सुषमा अग्रवाल - पृ. 24

अभिव्यक्ति देता है । इसलिए साहित्यिक कृति को रूप परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज कहा जाता है । आधुनिक कथाकार के संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते है, "उसने समय और परिवेश को संपूर्णता में इस हद तक आत्मसात कर लिया है कि उसके रचनात्मक व्यक्तित्व के माध्यम से ही युग की नब्ज पकड लेते हैं, समय की आत्मा उसके लेखन में बोलती है ।" [1] नये कहानीकारों ने अपनी परिस्थिति और अनुभूति के बीच संघर्ष करते हुए एक आधुनिक दृष्टि विकसित करने की कोशिश की है ।

नये कहानीकारों ने जीवन की सच्चाई को आन्तरिक जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उभारा । कमलेश्वर की राय में "पुरानी कहानी में व्यक्ति शारीरिक रूप से आता था और वैचारिक रूप से कथाकार। नई कहानी में यह विचार उसी शरीर में उपस्थित बुद्धि से उपजता है जिसे प्रस्तुत किया जाता है । तब विचारों को हाड माँस प्रदान किया जाता था । अब हाड माँस के इन्सान के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है ।" [2] नई कहानी की व्याख्या "आज की कहानी घटनाओं का संपुंजन या कथानक का मनोवैज्ञानिक विकास भर नहीं -- उसकी यात्रा घटनाओं या संयोगों में से न होकर प्रसंगों की आन्तरिक प्रतिक्रियाओं के बीच होती है और संवेदना के सूक्ष्म तन्तुओं पर धीरे धीरे आघात करती हुई वह एक संपूर्ण अनुभव से गुज़र जाती है, इसलिए वह

1. नई कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 51-52
2. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 70

कथा यात्रा नहीं, पाठक के उस अनुभव से स्वयं की यात्रा हो जाती है ।"[1] नई कहानी अपने समय के यथार्थ को पूरी तरह वहन करके निरन्तर परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश के संदर्भ में ही अपने को समायोजित करती है । इसलिए नई कहानी सामयिक सत्यों एवं यथार्थ परिवेश का वाहक बन जाती है । नई कहानी जीवन को एक संश्लिष्ट खंड में व्याप्त संवेदना की कहानी है । नई कहानी ने परिवेश की प्रामाणिकता की सही तलाश को लेकर रचनात्मक स्तर पर व्यक्ति के माध्यम से परिवेश की व्यापकता पकडने की कोशिश की । राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "नये कहानीकारों ने व्यक्ति को उसकी सामाजिक पीढी और परिवेश में रखकर देखा था और सामाजिक यथार्थ के बीच एक व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है ।"[2]

स्वातंत्रोत्तर ज़िन्दगी को यथार्थ रूप में उद्घृत करने के लिए नई कहानी परिवेश को मूल रूप से समय के साक्षात्कार के दृष्टिकोण को लेकर चली । बदलते पारिवारिक संबंधों, नये पुराने पीढी के संघर्षों, विसंगतियों, सामाजिक विषमताओं, कुंठित मनोवृत्तियों आदि के संदर्भ में नई कहानी ने युग सत्य को पहचानने की उद्घोषणा की है । राकेश ने लिखा है, "नई कहानी की दृष्टि अपने संदर्भों में रहकर उनके अन्दर से अपने समय और परिवेश को आँकने की दृष्टि है जो हर बार हर नये प्रयोग में यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की एक नई कोशिश करती है ।"[3] परिवेशगत संक्रमण से उत्पन्न जीवन की विसंगतियों, जटिलताओं एवं नवीन जीवन मूल्यों को नई कहानी ने यथार्थ

1. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 71-72
2. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 43
3. परिवेश - मोहन राकेश - पृ. 203

परिप्रेक्ष्य में देखा और सामाजिक संदर्भ में उत्पन्न नई स्थितियों को प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्ति दी । राजनैतिक स्तर पर जनता का आशावाद धीरे धीरे खतम होने लगा । निराशा, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता और दिशाहीनता को जैसा देश भोग रहा था उसी को समय से साक्षात्कार कर उत्कट बेचैनी के साथ नई कहानी व्याख्यायित करने लगी ।

नये कथाकारों ने पारस्परिक संबंधों की बदलती चेतना को अर्थपूर्ण ढंग से तलाशा और बदलते पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों को परिवेश के साथ मुखर किया । "व्यक्ति-व्यक्ति के बीच जो कुछ तेजी से भर रहा है, बन और बदल रहा है, नया जन्म ले रहा है वह सब को खोजना, समझना और व्यक्त करना नयी कहानी की बहुत बडी विशेषता है ।"[1] तनाव और टूटन के यातनामय संकट को भोगनेवाले दंपतियों की पीडा को भी नये कहानीकारों ने वाणी दी है । नई कहानी में प्रेम का बदला हुआ परिवेश दृष्टिगोचर होता है इसमें यौन का रूप अधिक है । और नैतिक मूल्यों को खंडित कर रहा है । नई कहानी की मूल चेतना अस्तित्ववाद से भी प्रभावित है, उसमें अस्तित्व के प्रति सतर्कता, जिजीविषा, शून्यता का अनुभव और मृत्यु का भय अस्तित्ववादी चेतना की ही देन है ।

जीवन की विसंगतियों के कारण उपजे व्यर्थताबोध, नैतिक मूल्यों के ह्रास आदि के चित्रण के साथ साथ आस्था का संबल नये कहानीकार कहीं भी नहीं छोड पाये हैं जिससे युगानुरूप नये मूल्यों की तलाश निरन्तर चल रही है ।

1. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 60

इस ओर भी नये कहानीकारों का ध्यान अवश्य गया है। आज की अर्थ व्यवस्था ने व्यक्ति के जीवन को व्यर्थ, असहाय और अजनबी बना दिया है जिससे पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत संबंध टूट फूट रहे हैं।

शिल्प - नई दिशायें

नई कहानी का शिल्प फोर्मुलाबद्ध नहीं है। नई कहानी आन्दोलन के प्रारंभ होने के पहले लिखी गयी कहानियों में विचार, धारणा अथवा सिद्धान्त विशेष की कोई अमूर्त सी कल्पना, रचना पर हावी होने लगती थी। नई कहानियों में कोई वैचारिक या सैद्धान्तिक खूँटी नहीं जिस पर आरोपित स्थितियाँ कपड़ों की तरह टाँग दी जाय। पुरानी कहानी में जहाँ एक प्लोट और चरित्र चित्रण की प्रणाली रहती थी वहाँ नई कहानी में प्लोट और चरित्र चित्रण काफी हद तक कम हुए। नई कहानी कथा कहने के परंपरागत आग्रह से मुक्त है। पात्र भी परंपरागत रूप में नहीं मिलते हैं। कहानी के शास्त्रीय तत्वों से भी कहानियाँ मुक्त हैं। नई कहानी में कथानक की धारणा बदल गयी है। किसी समय मनोरंजन, नाटकीय और कुतूहल पूर्ण घटना संघठन को ही कथानक समझा जाता था। आज घटना संघठन इतना विघटित हो गया है कि लोगों को अधिकांश कहानियों में कथानक नाम की चीज़ मिलती ही नहीं। इसी को कुछ लोग कथानक का ह्रास कहते हैं। "परंतु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं बल्कि कथा का हुआ है। और जीवन का एक लघु प्रसंग, प्रसंग खंड, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति चरित्र ही कथानक बन गया है। अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गयी है जो छोटी सी बात पुराने कहानीकारों केलिए अपर्याप्त थी उसी को नये कहानीकारों ने कहानी केलिए पर्याप्त मान लिया और फिर उसके भीतर से उन्होंने कहानी के कथानक की विभिन्न

सिम्तों का विकास किया । इस दिशा में नया कहानीकार कभी कभी इतना अंतर्मुग्ध हो जाता है कि आदि से अंत तक केवल एक बात से बातें निकलती चली जाती हैं और बातों में से बात का निकलते जाना ही इतना मनोरंजक होता है कि एक कहानी बन जाती है ।" [1]

पाठक की मानसिकता में भी बदलाव आ गया है । आज का जागरूक पाठक केवल कथानक की परम सीमा से चौंककर आह्लादित होनेवाला भावुक मनुष्य नहीं रह गया है । अतः नये कहानिकारों का ध्यान कहानी शिल्प की ओर नहीं और नाटकीय अंतवाले कथानकों की सृष्टि करने में अधिक दिलचस्पी नहीं रखते हैं ।

कहानीकारों ने कुछ नये साधनों की खोज की । उन्होंने अत्यंत मार्मिक प्रसंग खंड की संवेदनीयता का सहारा लिया तो कभी किसी झकझोर देनेवाले विचार स्फुलिंग का । इस तरह नये कहानीकार ने अपने अभीष्ट विचार की अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त प्रभावशाली तथा साभिप्राय घटना प्रसंगों का उपयोग किया । ऐसी कहानियों में अंत तक आते आते वह एक सारगर्भित विचार के रूप में झंकृत हो उठता है । जिन कहानीकारों के पास पैनी सामाजिक दृष्टि और जागरूक चिंतन की कमी थी उन्होंने अछूते जीवन क्षेत्रों का सहारा लेकर पाठकों को अपनी ओर खींचने की कोशिश की । अपने अपने अंचल या जनपद के लोकजीवन को कहानी में ले आने की प्रवृत्ति इसी का परिणाम है ।

आज किसी कहानी का शिल्प की दृष्टि से सफल होना काफी नहीं बल्कि वर्तमान वास्तविकता के सम्मुख उसकी सार्थकता भी परखी जानी चाहिए ।

1. कहानी नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ. 19

कहानी को कथानक, चरित्र, वातावरण, भावनात्मक प्रभाव, विषय वस्तु आदि अलग अलग अवयवों के रूप में विभाजित करनेवाली पूर्ववर्ती कहानी शिल्प संबंधी आलोचनाओं ने कहानी के अंदरूणी जीवन सत्य और भावबोध को देखने परखने की शुरूआत की ।

जीवन की छोटी सी छोटी घटना में भी अर्थ खोज लेना और उससे अर्थ प्रदान करना नई कहानी की अपनी विशेषता है । डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है, "एक समर्थ कहानीकार जिस प्रकार जीवन की छोटी सी छोटी घटना में अर्थ के स्तर स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय शक्ति की सीमा तक पहुँचा देता है ऐसे अर्थगर्भत्व को मैं सार्थकता कहता हूँ ।"[1] जीवन के प्रत्येक प्रसंग में निहित अंतर्विरोध को पकड़कर जागरूक कहानीकार उसे सार्थकता प्रदान करते हैं । हर घटना में अंतर्विरोध को लक्षित करना एक बात है लेकिन युग के मुख्य अंतर्विरोध के प्रभाव में सार्थक घटना को लक्षित करना दूसरी बात है । कहानीकार की सार्थकता इस बात में है कि वह अपने युग के मुख्य सामाजिक अंतर्विरोध के संदर्भ में अपनी कहानियों की सामग्री चुनता है ।

"पहले की तरह आज की कहानी आधारभूत विचार का केवल अंत में संकेत नहीं करती बल्कि नई कहानी का समूचा रूप गठन और शब्द गठन सांकेतिक है ।"[2] पिछली पीढ़ी के कहानीकार वातावरण का चित्रण कभी कहानी को सजाने केलिए करते थे तो कभी यथार्थ को रंग देने केलिए । नई कहानी में वातावरण अलंकरण मात्र नहीं, बल्कि अंतकरण है । वातावरण निर्माण में नये कहानीकार प्राय: बिंब-विधान का सहारा लेता है । नई कहानी के सजीव बिंब मन में संवेदनायें

1. कहानी नई कहानी - नामवर सिंह - पृ. 33

2. - पृ. 42

जगाते हैं । नये कहानीकारों ने शिल्प की साधना में अनेक नई पुरानी विधियों को कूट पीसकर एक मिली जुली शैली का निर्माण किया ।

"जिसे हम नई कहानी कहते हैं वह नये मनुष्य के परिवर्तित परिवेश और अनुभूतियों का परिणाम तो है ही इस परिणाम की अभिव्यक्ति ने शिल्प और शास्त्र की दृष्टि से भी उसे पुरानी कहानी से भी अलग कर दिया है । नई कहानी ने अपने कथ्य के दबाव से कहानी के संपूर्ण स्ट्रक्चर को भी बदलने का सामूहिक और क्रमबद्ध प्रयत्न प्रारंभ किया ।"[1] इस प्रकार नई कहानी ने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से पूर्ववर्ती परंपरा की कहानियों के फोर्मुलों को तोड़ा है, नये कहानीकारों ने अपने अपने दायरे में जिये हुए जीवन सत्यों को अनुभूति के स्तर पर तीव्रता से उभारा है ।

आगे लक्ष्मीकांत वर्मा की कहानियों का विश्लेषण करेंगे ।

नये पुराने मूल्यों की टकराहट -"परिवर्तन"

नारी स्वतंत्रता का शोरगुल आधुनिक युग में पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा अधिक गूँज उठता है । जीवन के हर एक पहलू में पुरुष के समान अधिकार हासिल करने की नारी की इच्छा सहज है । पुरुष मेधा समाज में युगों से पुरुष की क्रूर यन्त्रणाओं को झेलने के लिए अभिशाप्त नारी का प्रतिशोधी मन बंधनों के जंजीरों को तोड डालना चाहती है, अपनी अस्मिता को बनाया रखना चाहती है । उसकी यह चाह "नारी मुक्ति आन्दोलन" का रूप धारण करती है ।

1. समकालीन कहानी - दिशा और दृष्टि - सं. डॉ. धनंजय - पृ. 69-70

आधुनिकता के मोह में पड़कर "नारी मुक्ति आन्दोलन" के बहाने परंपरा से चले आनेवाले मूल्यों को नकारना नारियों के लिए कभी शोभनीय नहीं । नारी मुक्ति आन्दोलन के नाम पर विवाह पूर्व स्वच्छन्द यौन संबंध की स्वतंत्रता आधुनिक नहीं है । विवाह एक पवित्र बंधन है । आधुनिकता के पीछे भटकनेवाली आधुनिक नारी विदेशी सभ्यता के अंधानुकरण में इस पवित्र रिश्ते को एक बंधन मानती है । और वे यह सत्य भूल जाती है कि शादी दो जिस्मों के आपसी मिलन से भी परे एक लोकोत्तर सत्य है । पुरुष के सामने अपने व्यक्तित्व को या अस्मिता को गिरवी में रखना नारी के लिए असह्य होगी ।

आधुनिक विचारोंवाली, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, नास्तिक बिन्दु की मानसिकता शादी के बाद इतनी बदल गयी कि अपने बेटे कैलाश के पहले वर्षगाँठ पर पूजा की मोमबत्तियाँ जलाती है, रामायण का पाठ करती है । रामायण की चौपाइयों की लोरी गाने में सबसे निपुण अपनी भाभी की अनुपस्थिति में बिलकुल बेचैन और विवश हो गयी है । एक समय ऐसा था कि बिन्दु ने क्रांतिकारी विचारों की बहस की थी, महिला आन्दोलन में भाग लिया था, उसका नेतृत्व भी किया था, नारित्व से सार्थकता को मातृत्व में पानेवाली नारी की खिल्ली उड़ाई थी, परदा करनेवाली औरतों को फटकार सुनायी थी । मन्त्र-तन्त्र की भर्त्सना की थी । पुरुषों को क्रूर बताया था परिवार नियोजन की माँग की थी -- और स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी था । ऐसे हठधर्मी व्यक्तित्व को बिलकुल उलटफेर करने में उसकी अर्द्धशिक्षित भाभी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यों आधुनिकता की वक्ता बिन्दु के अन्तर्मन में सुप्त पड़े नारीत्व का बहिर्गमन ही कहानी में हुआ है ।

भारतीय नारी चाहे कितनी भी फैशन परस्त हो, उसके अन्दर एक कोमल पक्ष रहता है। बाहर से हठी होते हुए भी वह अन्दर से प्यार, ममता चाहती है। नारी में कोमल, स्निग्ध, तरल आन्तरिकता होती है। भाभी ने बिन्दु के इस कोमल पक्ष को छू दिया। भाभी के सहयोग में आकर उसने अनुभव किया कि अकेलापन जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है और घर की व्यवस्था में, उसकी मधुर परिधि में कोई रस होता है। चाहे नारी कितने ऊँचे क्रांतिकारी विचारों का समर्थन करें फिर भी उसे अपने अन्तर्मन में सुप्त पड़ी नाजुक भावनाओं को दबाने की कोशिश न करनी चाहिए। भाभी से बिन्दु ने यह भी समझ लिया कि नारी की भिन्न भिन्न भूमिकायें होती हैं और एक गृहस्वामिनी की भूमिका कम महत्त्व की नहीं। भाभी की मौन साधना का असर उस पर खूब पड़ा। उच्च शिक्षा प्राप्त बिन्दु ने अर्द्धशिक्षित नारी भाभी से यह मूल्यवान सबक सीख ली है कि नारी नारी ही रहती है। वह गहरे से गहरे दर्द को भी सहलाकर प्यार से मिटा सकती है। बेटे के वर्षगाँठ में इतनी ममतापूर्ण भाभी की अनुपस्थिति बिन्दु को बहुत खलती है। भाभी की इन्तज़ार में राह जोहती जोहती रही बिन्दु की सारी प्रतीक्षाओं पर पानी फेरते हुए दादा का एक्सप्रेस डेलिवेरी आता है, उसमें लिखा था, "भाभी आने की तैयारियाँ कर रही थी कि सहसा बेहोश हो गयी और परलोक सिधारी।" उन्होंने यह भी जोड़ दिया था, "भाभी मरी नहीं, बिन्दु में जीवित है।"
यहीं कहानी समाप्त होती है।

इसे एक भावुक कहानी कह सकते हैं। लेकिन इस कहानी की भावुकता की अपनी एक अलग विशेषता है। इसकी भावुकता किसी आदर्श की चरमसीमा दिखानेवाली नहीं। कहानी का भावुक पक्ष नारीत्व के सामने निर्भय व्यक्तित्व के झुकाव में है।

मौजूदा व्यवस्था की साजिश की शिकार बनी नारी - धर्मशाले की एक रात

कहानीकार पाठकों को एक तंग गली की ओर ले चलते हैं जहाँ रक्त मांसधारी मनुष्य के पुतलों के पिचके हुए पीले गालों, शुष्क उरोजों, पीले गन्दे दांतों का मोल भाव होता है। उस गली की एक वेश्या के प्रति लेखक की सहानुभूति के इर्द गिर्द कहानी घूमती है। जब लेखक धर्मशाला में समय बिता रहा था तभी पहली बार इस वेश्या से उसकी भेंट होती है। कम समय में ही लेखक उसका मोल आंक लेता है कि वह एक असाधारण स्त्री है। अपने पास बैठे भाई से उसकी जो बातें हो रही थीं उससे लेखक को पता मिला कि उस वेश्या को तपेदिक की बीमारी है। वह खून के जुर्म में बारह साल जेल काटने के बाद बाहर आयी है। दरअसल वह निर्दोष थी, रुपये पैसे के बल पर कानून से बच निकले वास्तविक खूनी का अपराध ही वह ढो रही थी। वेश्या बनने के पहले वह गायिका थी। अपने उस्ताद के मर जाने के बाद वह बिलकुल बेसहारा हो जाती है। और तुरंत ही वह यह सत्य समझ लेती है कि संगीत को समझनेवाले दुनिया में कम है, नारी जिस्म को समझनेवाले ही अधिक है। तपेदिक के मरीज़ होने के कारण जेलवालों ने उसे छोड दिया है। वह प्रति-हिंसात्मक रूप में समाज के अपवादों का बदला लेना चाहती है। उस वेश्या की हर बातचीत में एक ऐसा कठोरपन था जिसे शायद वह अपने जीवन का एक अंग बना चुकी थी। उसे मौत प्रिय थी और वह ज़िन्दगी से ऊब चुकी थी। उसको आस पास का वातावरण उसे खाया जा रहा था। उसके प्रत्येक शब्द में समाज के हाल के प्रति बगावत थी। अपने कमरे की चारपाई पर लेटते वक्त

लेखक के कानों में पासवाले कमरे से उस वेश्या की आवाज़ गूँजती थी ।
"मैं यह मानती हूँ मेरे रोग से समाज के न जाने कितने लोग बिना मौत के मरेंगे, पर मैं बदला लूँगी, समाज से नहीं, समाज के व्यक्तियों से ।"[1]
उसके हरेक शब्द में अपनी ज़िन्दगी में प्राप्त तिक्त अनुभवों की कडुवाहट थी ।

जेल में रहते हुए भी उसने अनुभव किया कि जेल के अन्दर और भीतर की ज़िन्दगी में कोई अन्तर नहीं । जेल में जेलर से लेकर मामूली वार्डर तक से व्यवहार करते हुए उसने यह नंगा सत्य समझ लिया । उसकी गालों पर दीख पडनेवाले, हत्यारे मनुष्यों के लंबे दांतों के दाग जेल के उसके कटु अनुभवों के स्पष्ट प्रमाण है । जेलर के प्रति उसके मन की प्रतिशोध भावना उसके शब्दों से स्पष्ट है "....... जिस दिन मैं सुनूँगी कि जेलर मर गया है शायद उस दिन मुझसे ज़्यादा खुश व्यक्ति और कोई नहीं होगा ।"[2]

उस वेश्या के संपर्क में आने के बाद लेखक के दिमाग में रह रहकर यही बात गूँजती रही कि ऐसे व्यक्तियों के जीवन का हल क्या समाज के पास है ? यदि नवयुवक वेश्याओं से विवाह करके समाज के इस कोढ को दूर करने की कोशिश करेंगे पर भी समस्या का हल नहीं हो पायेगा क्योंकि जिस वातावरण में ये लोग अपना जीवन बिता रहे हैं उसके संस्कार से इन्हें छुटकारा मिलना नामुमकिन है । उनके जीवन में उदारता होना असंभव है । विशाल दृष्टिकोण का हो सकना कठिन है । और राष्ट्र की आनेवाली संतान निकम्मी होगी ।
लेखक की राय में इस समस्या आसान से सुलझी नहीं जा सकती क्योंकि वर्षों के संस्कार आसानी से नहीं बदलते । अपनी इस विचारधारा को वे यों शब्दबद्ध

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 37

2. - पृ. 38

करते हैं - "किसी पत्थर पर पड़े हुए दागों को उठाने के लिए उस दाग की बराब गहराई तक काट देना पड़ेगा, नहीं तो उसमें उस चिकनाहट का आना असंभव होगा, जिसके बगैर शायद वह अंतर भी न मिट सके ।"[1]

बहुत सस्ते में अपने शरीर का व्यापार करनेवाले वेश्या वर्ग को समाज का अभिशाप माना जाता है । लेकिन यह सत्य समझने की कोशिश कम लोग ही करते हैं कि उनके पास और कोई चारा न होने के कारण ही इस वर्ग को यह अभिशाप ढोना पड़ता है । पीले गालों पर क्रीम पाउडर लगाये और ओंठों को लालिमा लगाये अपने जिस्म के मोलभाव करनेवाली बेचारी वेश्याओं की दर्दनाक दास्तान है ।

रूमानी भावुक परिकल्पना में भटकती नई पीढ़ी - दो जिन्दगी दो राहें

उडती जवानी में लड़के लड़कियाँ उन्मुक्त आचरण करती हैं । यौवन के जोश में वे उचित अनुचित की तनिक भी चिन्ता नहीं करते । खूबसूरत युवतियों के उन्मत्त यौवन का मधुपान करने के लिए युवक अक्सर आतुर हो उठते हैं । किन्तु मात्र किसी एक युवति के रूप में आत्म समर्पण करने की इच्छा पुरुष में नहीं । सीमित परिधि से मुक्त होकर अपने को स्वतंत्र घोषित करने के इच्छुक हैं । अपने आप को "मोडेण" मान बैठी पढ़ी लिखी लड़कियाँ बहुत जल्दी ऐसे पुरुषों के बहकाव में आ जाती है । शकुन ऐसी युवतियों में है जिसने एक से अधिक पुरुषों को अपना सर्वस्व दे दिया और उस महान समर्पण के बाद उसने अनुभव किया कि उसका सब कुछ लेकर भी कोई उसका अपना न हो सका । इस तीखे अनुभवों ने

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 37

उसके मन में प्रतिहिंसा और घृणा को पैदा किया । उसके जीवन में अजीत पहला व्यक्ति था जिसके लिए वह आवश्यकता से अधिक उत्सुक हुई थी । शकुन के यौवन का समस्त रस लेने के बाद उसने शकुन को झूठी प्याली की भाँति फेंक दिया । दूसरी बारी निशीथ की थी जो शकुन की ज़िन्दगी में एक तूफान सा आया । उन दोनों के बीच में राका के आगमन के साथ वह संबंध भी शिथिल हो गया । निशीथ के साथ उसका जो प्रेम प्रलाप चल रहा था उसे नगर के सभी लोग जान गये थे । इसलिए निशीथ के चले जाने के बाद उसे अपनी ज़िन्दगी में बहुत कुछ अपवाद भी सहना पड़ा । निशीथ विवाह को जीवन की ज़ुरूरी नहीं समझता । वह विवाह को बंधन ही मानता है । निशीथ से शादी की बातें करते ही शकुन से उसका कहना है, "मैं स्वतंत्र व्यक्ति हूँ और अपने जीवन की स्वतंत्रता को किसी भी मूल्य पर नष्ट करने को प्रस्तुत नहीं हो सकता । मैं बंधन को अपनी हत्या समझता हूँ और हत्या करना मनुष्य के लिए महान अपराध है ।"[1] जीवन से बिलकुल ऊब कर खुदकुशी करने के लिए एक रात शकुन उस बस्ती में अकेले चली जाती है जहाँ हिन्दु मुसलमान दंगा चल रहा था । उसका विश्वास था कि उस दंगे की मारधाड में लोग उसे भी मार डालेंगे और उसे जीवन से मुक्ति मिल जायेगी । लेकिन उसका विश्वास गलत ही निकला । मुकुल नामक एक युवक शकुन की बेवकूफी समझकर उस बस्ती से शकुन को अपने कमरे में ले आया । शकुन के लिए वह युवक मनुष्य के रूप में देवता का अवतार था । एक दिन का परिचय दोनों के बीच की आत्मीयता में बदल गयी । मुकुल, शकुन की ज़िन्दगी के अतीत की परवाह न करनेवाला था । शकुन को शादी के अटूट बंधन में बाँधकर उसे एक शाश्वत आधार देने का निश्चय भी लेता है ।

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 51

जीवन के प्रति हर एक का दृष्टिकोण अलग अलग होता है । कुछ लोगों केलिए ज़िन्दगी महज मौज उडाने केलिए है, आनन्द मनाने केलिए है । अजीत और निशीथ ऐसे दृष्टिकोण रखनेवाले पुरुष हैं, चन्द क्षणों की खुशी को जीवन का सर्वस्व मान बैठते हैं । ऐसे पुरुषों केलिए नारी वासना - तृप्ति का साधन मात्र है । विवाह जैसी पवित्र प्रथाओं में भी यकीन नहीं करते । नैतिकता संबंधी किसी मान्यता पर विश्वास नहीं । जीवन के प्रति कुछ लोगों का रुख इससे भिन्न है । वे जीवन को सकारात्मक प्रवृत्ति मानकर उसकी अवहेलना करना नहीं चाहते । मौत के पास जाने का निश्चय लेकर दंगे के शोरगुल और मारपीट में घुसनेवाली शकुन को इसलिए ही मुकुल बचाता है । ज़िन्दगी को क्षण भर में समाप्त करना आसान है । लेकिन किसी को नई ज़िन्दगी देना उतना आसान नहीं । जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखनेवाले ही इस प्रयास में सफल निकलते हैं । मुकुल ने शकुन को एक नई ज़िन्दगी की नई राह की ओर मोड दिया । ज़िन्दगी के चौराहे पर पहुँचा व्यक्ति जब महसूस करता है कि जिस किसी दिशा की ओर वह कदम रखें वह दिशा डगमगाती है तो आगे बढने से हिचकेगा । उसे ऐसा भी लगेगा कि वह दिशा खुद उसे निगलने केलिए आगे बढ रही है । ऐसे असमंजस में पडनेवाले व्यक्ति शकुन के समान मृत्यु का सहारा लेना ही चाहेगा । जीवन के यथार्थ का सामना करने के बजाय जीवन से पलायन करना सबसे बडी कायरता है । शकुन की इस कायरता को मुकुल उसकी सबसे बडी भूल मानता है और उसके निराश मन में ज़िन्दगी के प्रति कशिश पैदा करने की चेष्टा करता है । दूसरों से धोखा खाकर अपने को दुनिया में असफलता की प्रतीक माननेवाली शकुन में जीने की ललक पैदा करने की जो क्षमता मुकुल में है उसके पीछे उसके जीवन का व्यापक दृष्टिकोण ही निहित है ।

आर्थिक तंगी की शिकार बनती नारी - बीते दिन बिसरी बातें

मिसेज़ मजूमदार शादी के दो महीने के बाद ही से बीमार थी । उनकी बीमारी से प्रोफेसर मजूमदार का जीवन शुष्क और नीरस हो गया है । फालिज़ के रोग से ग्रस्त होने के कारण चारपाई पर पडे पडे वह घर का कामकाज देखने की कोशिश किया करती थी । मजूमदार केलिए अपनी पत्नी महज एक प्रतिमा थी, एक जीता जागता शव मात्र थी । ज़बान बन्द, आँखें निश्चल, वह टूट सी चारपाई पर पडी करुण दृष्टि से घर में आनेवालों को देख रही थी । अपनी बहन की देखरेख करने केलिए रेखा का उस घर में आना उसकी ज़िन्दगी के अभिशाप की शुरुआत थी । "इन्स्टिन्क्ट और इमोशनस" की थियरी पर डी. एस. सी. थीसीस की तैयारी में लगे प्रोफेसर मजूमदार अपनी दमित वासनाओं और यौन तृष्णाओं की पूर्ति करने केलिए अपनी बहनोई की गरीबी का अनुचित लाभ उठाना चाहता है । लेकिन रेखा उन लडकियों में से नहीं थी जो अपने को पतित करके अपने भविष्य को सुनहले बनाने की कोशिश करती रहती हैं । प्रिन्सिपल नायकर के सामने रेखा ने अपने जीजा जी के अमर्यादित आचरण की रिपोर्ट की और बिना बी. ए. की अपनी परीक्षा दिये ही चली पडी । और ज़हर खाकर मिसेज़ मजूमदार ने आत्महत्या की । मन की विक्षिप्तता के कारण प्रोफेसर भी पागल हो गया ।

कहानी में कथावाचक के रूप में प्रस्तुत विद्यार्थी आन्दोलन का नेता रेखा के व्यक्तित्व से बिलकुल प्रभावित था । रेखा के मन के उथल पुथल का कारण जानना वह चाहता था, उसके दुःख को कम करना चाहता था । लेकिन रेखा अपने मन की व्यथा को गुप्त रखना ही चाहती थी, दूसरों के सामने उसे प्रकट करना नहीं चाहती । एक बार जब रेखा से उसके रोने का कारण पूछा गया तो उसका झट उत्तर यही था "और क्या मैं आप से इस तरह का प्रश्न पूछने का

का कारण पूछ सकती हूँ ? आजकल के लोगों को शराफत मालूम ही नहीं ।"[1] इस घटना के बाद वह नेता छात्र आन्दोलन के सिलसिले में जेल चला गया । तीन साल बाद जेल से छूटते ही उसे अपने मित्र संतोष से रेखा की मृत्यु की खबर मालूम हुई ।

प्रेम की यादगार - काला फूल

जिन्दगी में प्रेम की पहली अनुभूति और उससे उपजी भावुकता नारी के लिए पुरुष की अपेक्षा एक अनमोल अनुभव है । परिस्थितियों से समझौता करने की मजबूरी से कभी कभी वह मन चाहे पुरुष को भूलकर घरवालों की मर्जी के मुताबिक दूसरे पुरुष की पत्नी बनती है । प्रेम के प्रथम कंपन से मतवाला उसका अवचेतन मन पुरानी स्मृतियों को संजोने में एक विशेष प्रकार की खुशी महसूस करता रहता है । उन स्मृतियों को ताज़ा बनानेवाले प्रेम की भेंटों को भी वह सुरक्षित अपने साथ रखती है ।

मि. हनुमानप्रसाद की पत्नी पुष्पा बीती हुई यादों को संजोनेवाली है । शादी के दिन अपने प्रेमी रोहित का भेजा शुभकामनाओं के तार के साथ रोहित के कुछ पत्र, एक कागज़ के छोर पर खींचा "काला फूल", प्रेमी रोहित का हँसता हुआ चित्र आदि वह अपने बॉक्स में सुरक्षित रखती है । रोहित की हँसी के जादू में वह खुद फँस गई थी । शादी शुदा होने पर भी उस अद्वितीय मोह से वह अपने आप को बचा न सकी । रोहित के हँसते हुए चित्र पर एकटक नज़र लगाये उसका बैठना इसका स्पष्ट प्रमाण है । उस चित्र पर नज़र फेरते फेरते

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 101

पुष्पा के मन में उन दिनों की याद दौड आती है जब वह रोहित के साथ स्वच्छन्द हर कहीं विहार करती थी। उसके जिस्म का रसास्वादन करते हुए रोहित उसके साथ घूम रहा था। अपनी हथेली पर रोहित ने कलम से बनाये जो काले फूल उसकी याद उसके मन को नोचती रहती है। उस फूल के खींचते ही उसने रोहित से कहा था "पता नहीं यह फूल इन भाग्य-रेखाओं को बाँध पायेगा या एक दब्बा रह जायेगा।" [1] उसकी आशंका सच ही निकली। शादी के तीन साल बाद भी उसे ऐसा लगता है रोहित का स्पर्श उसके सारे शरीर पर तैर रहा है। धीरे धीरे इंजिनीयरिंग पढने केलिए जाने के बाद पुष्पा के प्रति रोहित का आकर्षण लुप्त होता जा रहा था। यहाँ तक कि पुष्पा की चिट्ठियों का उत्तर देने तक उसे फुर्सत नहीं था। दो बार जब पुष्पा से मिलने आया तो वह पुष्पा से अपने प्रोफसर की छोटी साली का बखान ही कर रहा था। भावुकता और कल्पना की दुनिया में विचरण करनेवाला रोहित रोज़गार की बातें करने लगे। धीरे धीरे दोनों के बीच का संबंध उजडने लगा और पुष्पा अलग अपने घर बसाने केलिए लाचार हो गयी। रोहित और उस के प्रेम के असलियत से बिलकुल अवगत हो जाने के बाद भी पुष्पा के मन में उसके प्रति अब भी कुछ लगाव है। पति की इन्तज़ार में बैठते बैठते तबीयत उचडते ही अपनी ऊब मिटाने केलिए वह मेज़पोश उठाकर जो फूल काटने लगी वह काला फूल ही निकला। पुष्पा के भीतर की सारी भावुकता का झटका लगता है जब वह ससुराल आयी चिट्ठी पढती है जिसमें लिखा था, उसकी ननद शोभा की शादी तय की गयी है, इंजिनीयरी केलिए आखिरी साल में पढनेवाला रोहित

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 112

प्रतिश्रुत वर है और चिट्ठी के साथ भेजी गयी फोटो देखकर पुष्पा दंग रह जाती है। मेज़पोश का कढा काला फूल उसे पत्थर की चट्टान जैसा लगता था।

नारी की लिजलिजी भावुकता - नीली झील का सपना

रोमांटिक उपन्यास पढकर तथा फिल्म देखकर अपने आप को उपन्यास और फिल्म की नायिकाओं के निकट पानेवाली लडकियाँ एक अनोखी काल्पनिक दुनिया में अक्सर विचरण करती रहती है। कहानी की सुषमा "रैन बसेरा" उपन्यास की नायिका मधु के साथ अपना तादात्म्य करती है। अपने कमरे में बैठकर उपन्यास पढते पढते अक्सर उसकी नज़र सामनेवाली सडक से ठीक दस बजे गुज़रते घुँघराले बालों वाले एक युवक को ढूँढती थी। उसे ऐसा लगता था कि उपन्यास का नायक उस युवक के समान है। सुषमा उस युवक का नाम नहीं जानती थी, फिर भी उसे उपन्यास के नायक अजित के नाम से संबोधित करने में एक तरह की तुष्टि महसूस करती है। प्रेम को संसार का सर्वप्रधान गुण माननेवाली नायिका मधु सुषमा के लिए बहुत पूज्य है। उपन्यास को बार बार पढते सुषमा एक ऐसे स्वप्न लोक के सुदूर अनजान पहाडी पर स्वच्छन्द उडान लेती है जहाँ पर वह अपने मन चाहे युवक के साथ ही आगे बढ रही है। उस स्वप्न लोक में उसे अजीब सा अनुभव होता है। उसकी भावना यों उठती है कि पहाडियों से घिरी हुई नीली झील में उस युवक के साथ वह है। नीली झील के पानी में उसने अपना हाथ डाल रखा है, उसका दूसरा हाथ युवक ने पकड लिया है। कल्पना की दुनिया में भटकते भटकते वह अपनी सुध बुध खो बैठती है। कल्पना लोक से तभी जाग उठती है जब बोनी दीदी कमरे में आकर उसको बार बार पुकारने लगती है। जागने के बावजूद भी उस

रहस्यमय स्वप्न जगत् से उसका मन मुक्त नहीं था। बीनी दीदी को देखते ही एकदम अपने बाँहों में उसे कस लेना और वेदना विचलित स्वर में दीदी के कंधों पर सिर रखकर "मेरी प्यारी दीदी, दीदी" कहते रहना उसकी विचित्र मानसिकता की प्रतिक्रिया है, न की साल भर बाद अपनी दीदी से मिलने की खुशी। हर क्षण "रैन बसेरा" उपन्यास का दृश्य उसकी आँखों के सामने नाचता रहा। इस उपन्यास का नायक अजित नायिका मधु के मुक्त केशों को उसके मुख मंडल के दोनों ओर बिखेरकर उसके बीच घिरी उसकी आँखों में आँखें डालकर मन्द मुस्कान से कुछ कह रहा था तो सुषमा को लगता है सडक के गुज़रनेवाले युवक के दोनों हाथ उसके बालों को सहलाते हैं। सुबह दस बजे और शाम को साढे चार बजे खिडकी के सामने खडे होकर उस युवक की राह ताकने की वह आदी बन चुकी। उपन्यास के नायक अजित का पूर्ण साक्षात्कार उस युवक में देखती थी। रात को आँखें झपकते ही सुषमा को लग रहा था उसकी काया उस युवक के बाँहों में सिमट जाती है। अपने स्वप्न लोक से जागते ही सुषमा को निराशा होती थी। जागते वक्त भी उसे लगता है उसकी बाँहों में दर्द हो रहा है। उस युवक की बाँहों ने एक गहरा दाग उसके जिस्म पर छोड दिया है।

जितनी तीव्रता और भावुकता के साथ उसने अपना स्वप्न संजोया उतनी तीव्रता से स्वप्न टूट भी जाता है। उसके मकान के दूसरे हिस्से में आये नये किरायेदार एक पति और पत्नी थे। पति और कोई दूसरा नहीं था, वह घुँघराले बालोंवाला युवक ही था।

अचेतन मन में सुप्त पड़ा अतृप्त प्रेम - एक दर्द भरी आवाज़
==

एक अजनबी व्यक्ति से आनेवाले फोण कोल ने एक नारी के खुशी पारिवारिक जीवन को कितना नारकीय बना दिया है - दर्द भरी आवाज़ कहानी का तथ्य है । नरेन्द्र और इति सुखमय और शांत जीवन बिता रहे थे । लेकिन फोण से आनेवाली एक दर्द भरी आवाज़ ने उनके सारा चैन नष्ट कर दिया । इति की हालचाल पूछकर दर्द भरी आवाज़ की हँसी से फोण रखनेवाले अपरिचित के परिचित स्वर से वह बिलकुल बेचैन हो गयी । नरेन्द्र से भी वह बात स्पष्ट न कह देती । वह नरेन्द्र के निर्मल स्नेह के सामने एक बुरी बात भी कहने केलिए असमर्थ थी जो उसकेलिए वेदनाजनक हो । वह खुद उस विवशता भोग रही थी, वह हमेशा खोई हुई सी दिखायी पडती थी । नरेन्द्र ने इसी उद्देश्य से उसे अपने पिताजी के यहाँ भेज दिया कि वहाँ उसे शांति और सुख मिल जाय । वहाँ के स्वस्थ वातावरण में वह धीरे धीरे खुश होनेवाली थी कि अचानक एक दिन फोण आया । वह बहुत परेशान हो गयी । फिर बीच बीच में आनेवाली दर्द भरी आवाज़ से अवगत होने पर पिता डा. कमल ने पुलिस के यहाँ रिपोर्ट की । तो भी कोई पता नहीं चला । फिर नरेन्द्र उसे घर वापस ले गया । वे दोनों नये घर में रहने लगे । जीवन को नये सिरे से शुरू करने में वह लीन हो गयी । दो महीने के बाद भी वह दर्द भरी आवाज़ सुन न सकी तो फोण न आने का विचार उसे सताने लगा । उसकी मानसिक स्थिति दूसरे रूप में परिणत हो गयी । नरेन्द्र भी अपने आप अस्वस्थ थे, वह नहीं जानता था कि इति की खुशी केलिए क्या करना है ? इति की उद्विग्नता इतनी बढ

गयी कि फोण की घंटी न बजने पर भी वह कभी कभी विक्षिप्त होकर फोण तक जाती रहती थी । फिर फोण की आवाज़ आने पर वह बहुत विह्वल हो गयी । एक दिन रात को इति से फोण छीनकर सुनने पर नरेन्द्र को पता चला कि सोनार बाग के धर्मशाले से कोई बोल रहा है । तकलीफ केलिए नरेन्द्र से क्षमा माँगकर उसने बताया कि नरेन्द्र के किसी परिचित उसके धर्मशाले में आते रहते थे । वह स्वयं एक बरेली फर्नीचर का एजेन्ट बताता था । पिछले महीने से वह बीमार दिखायी पड़ता था । उस व्यक्ति के आदेश से ही फोण कर रहा है । वह नरेन्द्र से मिलने की इच्छा प्रकट करता था । वह बात ज्यादा बढ़ जाने के कारण किसी न किसी प्रकार उसे खतम करना चाहता था । नरेन्द्र और इति कुछ पुलिस लोगों के साथ धर्मशाला गये । इतने में कहानी फैन्टसी का नया रूप धारण कर लेती है ।

धर्मशाला मैनेजर ने कहा कि किसी ने फोण नहीं किया । सब स्तब्ध रह गये । तब पुलिस अफसर ने रमेश पाणिग्राही नामक एक व्यक्ति के होटल में ठहरने की बात पूछी । मैनेजर से मालूम हुआ कि वह पन्द्रह दिन के पहले आया था, एक रात रहकर चला गया है । उस कमरे को देखने की इच्छा प्रकट करने पर मैनेजर उन्हें ले गये । कमरा अन्दर से बन्द दिखायी पड़ने पर मैनेजर चकित हो गया । अनेक बार कहने पर भी दरवाज़ा नहीं खोला । अंदर से धुआँ निकल रहा था, लगता था कि अगरबत्तियाँ जल रही हो । उन्होंने बताया कि रमेश के बाद किसी को भी कमरा नहीं दिया गया है । और रमेश की आत्महत्या की अफवाह भी फैली हुई है । इतने में दरवाज़ा अपने आप खुल गया । कमरे में प्रवेश करके जाँच करने पर भी केवल एक प्लास्टिक पर्स के बिना कुछ नहीं दिखायी पड़ा । सुबह तक वहाँ रहने के बाद मैनेजर के

कमरे वापस आये तो वहाँ भी एक प्लास्टिक पर्स दिखायी पडा । उसमें पचास रूपये और एक चिट थे जिस पर केवल "दानखाते" लिखा था । सब लोग विस्मित हुए । पुलिस अफसर उनसे कुछ कहे बिना चले गये । नरेन्द्र भी इति को लेकर घर की ओर चली । इति की विह्वलता तीव्र हो गयी । उसे लगा था कि अगरबत्तियों से लिपटी हुई फोण की दर्द भरी आवाज़ उसे घेर रही है ।

घर पहुँचने पर इति ने सुना कि फोण की घंटियाँ अविराम बज रही थी ।

यथार्थ और फैन्टसी को जोडने के असफल प्रयास की कहानी है एक दर्द भरी आवाज़ । यथार्थता से शुरू होनेवाली कहानी बीच में फैन्टसी के नये रूप धारण करने से दुरूह बन गयी है । यथार्थ से उत्पन्न इति की मानसिक विह्वलता की चरम सीमा तक हमें पहुँचाकर कहानीकार ने अंत में एक मिथ्या-भ्रम में डाल दिया है ।

अधूरे अरमानों की दास्तान - अधूरा वाक्य

परिस्थिति के शिकार होने के कारण मनुष्य हर कार्य में सीमायें बाँधने केलिए विवश हो जाते हैं । विशेषकर नारी अपनी सीमाओं से घिरी हुई है, सीमा तोडकर जीने का साहस उसमें नहीं है । पारिवारिक ज़िन्दगी की आर्थिक तंगी इस सीमा को और भी संकीर्ण कर देती है । अपनी सीमाओं में बंधी जिन्दगी उसे अधूरा बना देती है । किसी भी मामले में हो, पूर्ण उत्तर देने केलिए वह असफल हो जाती है ।

कमला और उसके मृत भाई के अनाथ बच्चों हेतु विधवा ताईजी के संरक्षण में ज़िन्दगी बिताने के लिए विवश हो जाती है । मि. मेहरोत्रा ने सेक्रेटेरियेट में काम करनेवाले केवल को उनसे परिचय कराया और कुछ महीने वह उनके घर में पेइंग गेस्ट के रूप में रहता है । प्रथम दर्शन से ही वह कमला पर आकृष्ट हो गया था । उन्होंने कमला से जीवन में साथ न छोड़ने की शपथ खायी थी । लेकिन कमला ने व्यंग्य भरे स्वरों में कहा था - "ऐसी कसमें तो लोग खाया करते हैं केवल बाबू   कोई नई कसम निकालिए ।"[1] केवल उसका यह उत्तर और आँसु भरी दृष्टि समझ न सका । अपनी ज़िन्दगी की सीमाओं से वह बिलकुल अवगत थी । जो ज़िन्दगी वह जी रही थी वह उसकी अपनी ज़िन्दगी नहीं थी अपने संरक्षक ताईजी की शर्तों को तोड़ने का साहस उसमें नहीं थी ।

डायरी का खोना और वापस मिलना संयोग की बात निकली । पर इस छोटी सी घटना से केवल और कमला को आपस में समझने का एक अवसर मिला । अपने मित्रों से, कमला की शादी तय की जाने की बात जानने पर उसने कमला से मिलने की कोशिश की । लेकिन कमला ने उसे मिलने का अवसर नहीं दिया । एक दिन बस में केवल की डयरी नष्ट हो गयी । दूसरे दिन कमला ने बस में से मिली डायरी उसे वापस दे दी । कमला को अपनी जीवन संगिनी बनाने की इच्छा व्यक्त करने पर कमला की प्रतिक्रिया से विह्वल हो, उस विशिष्ट मान-मानसिकता पर केवल ने डयरी के अंतिम पृष्ठ पर लिख दिया था, "कमला तुम   ?" और उसके बाद कई प्रश्न चिह्न भी लगाये । अब उसके साथ ऐसा एक अधूरा वाक्य जुड़ा मिला, "हाँ, केवल मैं   केवल मैं ।" कमला के उत्तर में भी केवल को उसकी सीमा ही लक्षित होती है । केवल ने उस दिन भी कमला से मिलने की कोशिश की,

. . . .

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 150

पर वह न मिल पायी । फिर वर्षों बाद नैनीताल में बारिश में भीगी हुई कमला दिखायी पड़ी तो उसने यह प्रश्न दुहराया । "कमला तुम ....?" लेकिन उत्तर भिन्न था, "आपसे भूल हुई मैं हूँ मिसेज़ शर्मा ।"

डायरी में लिखा गया "केवल मैं वाला अधूरा वाक्य कमला की अधूरी ज़िन्दगी का ही प्रतीक है । इस अधूरे वाक्य में उसके भीतर की टूटन और घुटन साकार हो उठता है । इस वाक्य में उसकी ज़िन्दगी की समस्त वेदनायें छिपी हुई हैं । लेकिन उसकी लाचारी यह है कि मन की नफरत या क्रोध को वह बाहर प्रकट भी नहीं कर सकती । इसी लाचारी के कारण वह केवल के प्रणय निवेदन को अनसुना करती है, मिसेज़ शर्मा बनती है । कमला उन नारियों की प्रतीक हैं जो जीवन की सारी व्यथायें मौन रूप से पी लेती हैं । किसी से भी विद्रोह करने की क्षमता नहीं रखती । ऐसी निरीह नारियाँ परिस्थितियों की शिकार हैं । मन में शिकायतें बहुत हैं, लेकिन शिकायत सुनने के लिए या हल निकालने के लिए कोई भी नहीं । दो जून रोटी के लिए जिसका सहारा लेती है उसी की शर्तें माननी पड़ती हैं ।

रुग्ण मानसिकता की प्रतिक्रिया - कोमन सेन्स स्टोर

भूला भटका पुराना रोमान्स आदमी को एक बड़ी सीमा तक बेबस बना देता है । इस बेबसी में वह जो कुछ भी करता है उसकी प्रतिक्रिया कभी कभी दूसरों पर भी पड़ता है । कोमणसेन्स स्टोर के मालिक रत्नेश कुमार आर्य ऐसी विचित्र मानसिकतावाला आदमी था । वास्तव में उनका नाम पहले चोखेलाल था । चोखेलाल का अपनी नेतागिरी के ज़माने में एक भद्र महिला से एकांगी प्रेम हो गया । महिला का नाम था रतनजी ।

इसलिए उन्होंने चोखेलाल से बदलकर अपना नाम रत्नेशकुमार रख लिया । रतनजी अपने नाम के पीछे आर्य ललना लिखा करती थी । अपने एक मित्र की सलाह मानकर अपने नाम के पहले आर्य लगा लिया । किन्तु यह प्रेम और प्रणय बाद में काफूर हो गया । रतनजी की शादी के बाद भी रत्नेश का उसकी खोज खबर लेते रहना, बरेली में जाते ही दूर से रतनजी के घर को देखना, उसके पति को देखना, और चुपके से उनके आधे दर्जन बच्चों को लेमण ड्रोप या बिस्कुट का पैकट देना उनकी विक्षिप्त मानसिकता की ही प्रतिक्रियायें थी । नेतागिरी और प्रेम का नशा कुछ ढीला पड गया । तब से उन्होंने एक कोमणसेन्स स्टोर खोला, उस कोमण सेन्स स्टोर की सजावट और बनावट से उसके व्यवस्थापक का अच्छा खासा अन्दाज़ा लगाया जा सकता था । स्टोर के साइन बार्ड के साथ एक मझौले आकार के बोर्ड में लिखा था, "सामान बाज़ार भाव, सलाह मुफ्त" । सारी दूकान देखने में खाली रहती थी, बडी बडी अलमारी में कुछ भी नहीं था । केवल खानों पर साबुन मसाला, मेवा इत्यादि सफेदी से लिखा हुआ था । हर नये ग्राहक पर दूकान की बिक्री का रोब जम जाने के लिए एक प्लेट पर यह लिखकर टांग दिया गया था "सोमवार से माल बिकेगा, जितना था सेवा में जा चुका है, फ्रेश स्टोक कमिंग ।"[1] कई सोमवार बीते रहे, लेकिन रत्नेश के कोमनसेन्स स्टोर में कोई परिवर्तन न दीख पडा । उस दूकान में जिन जिन चीज़ों की बिक्री हो रही थी उसका वर्णन खुद दूकानदार के मुँह देख रहा था । उनकी राय में उल्लू छाप नील की अच्छाई यह है कि "गन्दे से गन्दे कपडे को भी अपने रंग में रंग लेता है, मैल छिप जाती है, साबुन का दोष भी गुण बन जाता है ।

गधा छाप साबुन काला होते हुए भी कपडे ऐसे साफ साफ कर देते हैं जैसे आत्मा जीवात्मा पर जैसे मैली माया चीकट सी पड़ी होती है और साधना तथा

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 121

तपस्या से वह निर्मल हो जाती है उसी प्रकार काला रंग भी कपड़े की आत्मा को स्वच्छ, सुन्दर और धवल बना देता है।"[1]

एक ज़माने में क्रांतिकारी योजनायें बनानेवाले, बम बनानेवाले, आर्य ललनाओं के उद्धार की बात सोचनेवाले रत्नेशकुमार ही आज एक चतुर दूकानदार बन गया है जो अपनी जीभ के जादू से ग्राहकों को अपने वश में कर लेते हैं। आँवले का तेल माँगकर दूकान में आनेवाला ग्राहक रत्नेश की सलाह सुनकर आँवले तेल के बदले आफताब छाप सुरमा लेकर चला जाता है। दरअसल दूकान में आँवले तेल के बिलकुल खतम होने के कारण ही उसने ऐसी चाल चलायी। गधा छाप साबुन खरीदकर घर चले गये ग्राहक इस शिकायत के साथ दूकान में लौट आता है कि धोने के बाद उसका कपडा और भी काला हो गया, इसलिए उसे पैसा वापस मिलना चाहिए। लेकिन रत्नेशजी ने पहले ही वहाँ लिखा था कि बिके हुए माल वापस नहीं लेंगे। शिकायत मात्र एक ग्राहक तक सीमित नहीं थी। बाल लंबा करने का वादा देकर जिस चूहा छाप तेल की बिक्री हुई थी उसके बोतिल खोलने में मरे चूहे की सी गंध आती थी। शिकायत लेकर जो भी आये उनसे रत्नेश का कहना है, "मैं लाख कहूँ, लेकिन तुमने लिया क्यों? मुफ्त की चीजें सब पसन्द हैं। साइन बोर्ड पर लिखा देख लिया कि सलाह मुफ्त और बस दौड पडे। सोचा, और कुछ नहीं तो सलाह ही मुफ्त लेते चलें। मैं तुम लोगों का सामान वापस ले लूँगा, लेकिन पहले तुम जो मुफ्त की सलाह ले गये हो, उसकी फीस दो। किसी वकील या डाक्टर के यहाँ जाते तो इसी सलाह के सौ-पचास देकर आते। लेकिन चूँकि मैंने परचून की दूकान खोली है, इसलिए 'माले मुफ्त, दिले बेरहम' की कहावत

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 123-124

सत्य साबित करने चले आये ।   सोचा, चलो, दो चार सलाह ही मुफ्त लेते चलें। भाग जाओ यहाँ से ! न तो मैं कोई सामान वापस लूँगा, और न पैसा वापस दूँगा ।"

रत्नेश अपने कॉमनसेन्स के अनुसार जो कुछ करते हैं, उसे समझने की क्षमता ग्राहकों में कम है । रत्नेश एक तरह प्रयोगवादी है । वह अपने कॉमनसेन्स स्टोर को एक प्रयोग मानते हैं और हर प्रकार का अगडम-बगडम शीर्षक ही उन्हें अच्छा लगता है - जैसे गधा छाप साबुन, उल्लू छाप नील, चूहा छाप तेल आदि । लोग विज्ञापन देख देखकर सामान ले जाते हैं । सारा पैसा दूकानों में खर्च करते हैं । बेचारे नहीं जानते हैं कि वे खुद क्या खाते होंगे और परिवार को क्या खिलाते होंगे । ऐसे लोगों के लिए ही उन्होंने गधा छाप साबुन, उल्लू छाप नील इत्यादि का व्यापार किया है । यहाँ लेखक ने विज्ञापन की ठगी की ओर संकेत किया है । एक बार खुद लेखक को एक ग्राहक के रूप में रत्नेश के कॉमनसेन्स का तीखा एहसास हुआ । अपनी पत्नी के बालों को सजाने के लिए मज़बूत चोटी पूछने पर जूते का फीता पाया तो लेखक ने इसे स्त्री जाति की अवहेलना समझी । अपनी कॉमनसेन्स से हर एक चीज़ को अर्थ का नया धरातल देनेवाले रत्नेश अपनी बेबसी के कारण अन्त में पुलिस की पकड में आता है जबकि अपनी पूर्व प्रेमिका के साथ उसे जो लगाव था उसमें फँसा हुआ उसका भावुक मन पूर्व प्रेमिका के बच्चों को अपने बच्चे समझकर उन्हें प्यार दुलार के साथ घर ले जाते हैं । बच्चों को हडपनेवाले दल का आदमी समझकर पुलिस उसे गिरफतार करता है । ज़ाहिर है इस कहानी में ऐसे एक आदमी का चित्रण हुआ है जो मोहब्बत और नेतागिरी

1. मेरी कहानियाँ - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 133

के बोलबाला शिथिल पडने पर अपनी विज्ञापनबाजी और कोमनसेन्स से आम आदमी को ठगता है, अपना उल्लू सीधा करता है ।

मौजूदा व्यवस्था का खोखलापन - आदमी आर ऑक्टोपस

स्वतंत्रता के बाद देश के पूरे महौल में कई प्रकार की विसंगतियाँ और विद्रुपतायें पनप रही है । पूँजीपतियों की स्वार्थ लिप्सा बढती जा रही है । आर्थिक उपलब्धियों के सम्मोहन में डूबा व्यक्ति सभी मानवीय मूल्यों को पैरों तले रौंदते हैं । राजनीतिक वातावरण बिलकुल विषैला हो गया है । यथार्थ को झुठलानेवाली राजनीति जनता की भलाई कभी नहीं करती, शोषण की चक्की में आम जनता बुरी तरह पिसी जाती है । व्यक्ति की स्वार्थ लिप्सा पूरे समाज की बुनियाद को खोखला कर देती है । देश की न्याय व्यवस्था बिलकुल हास्यास्पद बनती जा रही है । रक्षक के भक्षक बन जाने की प्रवृत्ति हर कहीं दीख पडती है । राजनीतिज्ञों के लिए आत्म सेवा ही मुख्य है, समाज सेवा बाद में है । नेता हो, पूँजीपति हो, न्यायाधीश हो, उद्योगपति हो कोई भी अवसर चूकना नहीं चाहता । जीवन की सुविधायें बटोरना ही उनका अपना लक्ष्य है । आत्म सुख की इस अंधी दौड में आदमी अपना सारा विवेक खो बैठता है और किसी भी अमानवीय कार्य करने से वह हिचकता नहीं । लक्ष्मीकांत वर्मा ने इन सामाजिक विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति "आदमी और ऑक्टोपस" में प्रतीकों के माध्यम से की है ।

झूठ, आडंबर, फरेब, दिखावा - ये सब नई सभ्यता की देन हैं जिसके पुरोधा समाज के सुविधा भोगी उच्च वर्ग हैं । नगर के बडे क्लब "ग्लोब" में

सप्ताह में एक बार सभा करके किसी बढ़िया यूरोपियन होटल में सख्त हड्डियों को छोड़कर गुदगुदे माँस को बड़े शौक से खानेवाले क्लब के सदस्य ऐसे सुविधा भोगी उच्च वर्ग हैं । सदस्यों में रिटायर्ड सिवीलियन्स और बाबा आदम के ज़माने से "साहब" कहलाने वालों की संख्या अधिक है । आज़ादी के बाद से कुछ देशी किस्म के नेता भी आने लगे हैं, लेकिन अब भी सदस्यता केलिए यह आवश्यक है कि प्रार्थी इसका प्रमाण पेश करें कि वह नगर का एक संभ्रान्त व्यक्ति है । और इसका प्रमाण केवल एक है - सिविल लाइन्स में उसके कितने बंगले किराये पर चलते हैं, अंग्रेज़ों के ज़माने से चली आने वाली परंपरा के अनुसार उसके पास अफसर न सही, अफसर की रखैल अफसरी रही है कि नहीं । अच्छा हो या बुरा इस संस्था का यह फैशन है कि यह महीने में एक या दो बार किसी माने हुए विद्वान को बुलाये और उससे कुछ वाद-विवाद करें । इस संस्था के चुने गये पदाधिकारी हैं सेठ बावनदास, दूसरा रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट जज शीतल और तीसरा महाशय भैरवीलाल । एक बार की बैठक में भाषण देने केलिए समाज शास्त्र के विद्वान शेखर बुला गया । शेखर एक क्रांतिकारी विचारधारा का अधिष्ठाता युवक है । शेखर के साथ उसकी सहयोगी रजनी भी आयी थी । भाषण शुरू होते ही तीनों पदाधिकारियों को ऐसा लगा कि उन्होंने एक बिगड़े दिमाग को ही बुला लिया है क्योंकि वह साहसी युवक शेखर अपने देश की ज़िन्दगी के अंतर्विरोधों की ओर तर्जनी उठा रहा था । अफसरी बाबुओं, विभिन्न दलों के राजनीतिज्ञों, पूँजीपति वर्गों की पोल खोल रहे थे । वहीं बैठकर सब सदस्य मजबूर होकर सुन रहे थे, पर शेखर की एक बात उन्हें विशेषकर उन तीनों पदाधिकारियों को घायल और विक्षिप्त करके छोड़ देती थी । शेखर की राय में, "आज समाज में तीन प्रकार के आदमी हैं   एक तो कांतर जैसे हज़ार टाँगों और हज़ार धन्धोंवाले, वे केवल चिपकना जानते हैं चाहे वह जर हो या ज़मीन

हो या जन हो ....ये केवल जोंक सा लगाकर रक्त चूस लेते हैं आदमी का उसे ठठर मात्र बनाकर छोड देते हैं.....तोड देते हैं...।"[1] उसने आगे बताया कि देश में पनिया साँपों की नसल बढती जा रही है । ये शार्क स्किन और स्नेक स्किनवाले बडे बडे आफिसर्स हैं जो बडे खतरनाक हैं । शेखर ने राजनीतिज्ञों को भी नहीं छोडा । उनकी तुलना ओक्टोपस से करते हुए कहा कि ये नेता लोग मित्र बनकर इन्सानियत का रक्त पीते हैं "जब शेखर ने कांतर का नाम लिया था, तो सेठ बाबनदास ने अपने कोट का बटन टटोलना शुरू कर दिया था । जब उसने पनिया साँप का नाम लिया था तो, पेंशनयाफ्ता सरकारी अफसर मिस्टर शीतल ने अपनी टाई संभालने की चेष्टा की थी । और जब उसने ओक्टोपस का नाम लिया था, तब एक ने अपनी टोपी उतार दी थी और पसीना पोंछने लगा था ।"[2] शेखर ने उस तीखी सच्चाई की ओर भी संकेत किया कि समाज के ये तीनों वर्ग परिवर्तन से भयभीत हैं । दूसरों को हमेशा दबाने की इच्छा रहनेवाले ये लोग विद्रोह का जन्म लेने न देते हैं । अपनी बातों के मिसाल केलिए शेखर कांतर की तुलना देश के एक सेठ से करते हैं, पनियाँ साँप के रूप में अफसर वर्ग को मानते हैं और सबसे खतरनाक राजनीतिज्ञों को शक्ल ओक्टोपस में देखते हैं । तीस साल पहले एक बॉक्स सिर पर लादे हींग बेचने केलिए आये सेठ अनुचित मार्गों से होकर किस प्रकार करोड पति बन गया, इस किस्से का एक एक परत शेखर वहाँ खोल देता है । यह तो सही है कि सेठ ने लक्ष्मी की सिद्धि की, लेकिन कम तोलने की वंश परंपरा अपनाते हुए, खूब चोर बाज़ारी करने एवं गेहूँ में मिट्टी तथा चावल में धून मिलाने का उपदेश

1 नीली झील का सपना - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 167

2 नीली झील का सपना - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 169

बेटों को देते हुए ही उसने लक्ष्मी को अपनाया ।

समाज के अफसर वर्ग ने शक्ति की सिद्धि की है । ये वर्ग इन्सान के विकास को और उसकी कल्पना को बाँधते हैं । ये लोग समाज की कोढ़ है ।

ऑक्टोपस रूपी राजनीतिज्ञ बड़ा भयानक है जिसने अपनी आठों टाँगों के बीच समाज को जकड़ रखा है ।

जब शेखर ने समाज के कुत्सित यथार्थ की भौंडी शक्ल दिखायी तो तीनों पदाधिकारियों को उस शक्ल में अपनी अपनी शक्ल का प्रतिबिंब नज़र आया । शेखर का भाषण सुनकर न्यायाधीश शीतल को अतीत की उन बहुत सारी घटनाओं की याद आयी जहाँ वह कानून का गला घोंट रहा था और अनैतिकता के बल पर ही रोटी तोड़ रहा था । आर्थिक लाभ के लोभ में उसने एक निरीह नौजवान को फाँसी की सजा भी दी थी । मि. शीतल को ऐसा भी लगा कि शेखर उस नौजवान की आत्मा ही ।

अपनी कूटनीतिज्ञता और चलाकी द्वारा जनता की अंध श्रद्धा और अज्ञता से खिलवाड़ करनेवाले स्वार्थी एवं चरित्रहीन राजनीतिज्ञों की सच्ची तस्वीर शेखर ने जब पेश की तो मिश्र को लगा उसके माथे पर किसी ने ज़ोर का घोंसा लगा दिया हो । दरअसल वह एक ऊपरी बनावट से समाज को बदलना चाहते थे लेकिन दिल में चोरी की वृत्ति थी । लोहे की परमिट से और सिमेन्ट की ब्लाक-मार्केट से जो रुपया उसने कमाया उससे मकान की तीसरी मंजिल बना रहे थे । शेखर की

कड़वी बातें किसी को भी पसन्द न आयीं। सबको वह एक बदतमीज़ आदमी ही मालूम पड़ा। किसी को वह आदमी रूस का लगा और किसी को कम्यूनिस्ट मालूम पड़ा। धर्म, न्याय, मनुष्य सब की मज़ाक उठानेवाले शेखर को सब ठोंगी ही समझते थे। लेकिन किसी में उनकी आलोचना करने का साहस नहीं था। मीटिंग समाप्त हुई तो उस समय तक वहाँ बैठे बैठे शेखर की बातों पर जो कुढ़ बुन रहे थे वे औपचारिक रूप से एक दूसरे को बधाईयाँ देने लगे और शेखर की निर्भीकता की तारीफ भी करने लगे। लेकिन दूसरे दिन अखबार में आयी खबर और उसके साथ छपे शेखर और रजनी की फोटो देखकर सारा शहर चौंक उठा। पुलिस के बयान के अनुसार रात को शहर के एक होटल में शराब के नशे में आकर शेखर रजनी के साथ बलात्कार करना चाहा, रजनी जब चीखने लगी तो शेखर ने चीख को बन्द करने के लिए पेपर वेट से खींचकर उसे मारा और वह बेहोश हो गयी, खुद उसने पुलिस को फोण किया और यों वह बन्दी बना। दरअसल यह पुलिस का एक झूठा बयान ही था। इस बयान के पीछे उन तीनों पदाधिकारियों की कूटनीतिज्ञता ही काम कर रही थी।

शेखर जैसे निर्भीक व्यक्तित्व का अंत में पुलिस के झूठे बयान का शिकार बनना एवं बन्दी बनना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि समाज के सुविधा भोगी वर्ग की साजिश के विरुद्ध अकेले व्यक्ति की प्रतिक्रिया और जागरण असफल ही सिद्ध होते हैं। यही नहीं विद्रोह करने में खतरा यह है कि यथास्थिति बनाये रखने और अपनी महंथी चलाते रहने के पक्षपाती उसे इस दुनिया से ही गायब कर दिया जाता है। बावनदास, शीतल, भैरवलाल ये तीनों मौजूदा व्यवस्था के उन खास खास चुने हुए लोगों के प्रतीक हैं जो चाहते हैं

कि हर एक क्षेत्र में सत्ता और आधिपत्य, जीवन का नियन्त्रण उनके हाथों में बना रहे । विद्रोह करनेवालों से ये लोग ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि उनके गिरोह में शामिल होकर उनके राग में ही अपना स्वर मिलाकर गीत गाते रहें । उनके दिये मंत्र रटने से इनकार करनेवालों की नियति शेखर की नियति जैसी होगी ।

समकालीन राजनीतिक, आर्थिक असलियत को रूपायित करने में यह कहानी बहुत सफल निकलती है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की ह्रासोन्मुख स्थिति पर कहानीकार यह खुला प्रहार ही करता है ।

कथ्य के विभिन्न आयाम

नई कहानी की कुछ विशेषतायें वर्माजी की कहानियों में सीधे उतरी हैं । नई कहानीवाली कुछ चीज़ें मिलती ही नहीं । उनकी कहानियों से गुज़रने के बाद ऐसा लगता है कि कहानियों का रचना संसार बहुत सीमित दायरे में बसा हुआ है । यह भी कहना अनुचित होगा कि उनकी सारी कहानियाँ पाठक को अपने से बाँधने में सक्षम हैं । उनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - "मेरी कहानियाँ" और "नीली झील का सपना" । कुल मिलाकर इनमें दस कहानियाँ संगृहित हैं । ये संग्रह अपनी कुछ खास विशिष्टतायें अगर रखते हैं तो सिर्फ "परिवर्तन", "धर्मशाला की एक रात", "आदमी और ओक्टोपस", "अधूरा वाक्य" आदि चार कहानियों के आधार पर है । "परिवर्तन" की बिन्दु में नये और पुराने मूल्यों के द्वन्द्व से उत्पन्न दोहरा संघर्ष है । उसके व्यक्तित्व के दो रूप हमारे सामने आते हैं । आधुनिकता के सम्मोहन में पड़कर वह अपने प्रेम संबंध में परंपरित मूल्यों, आदर्शों और लक्षित स्थितियों से भटकना

चाहती है, क्षण के महत्व में डूबना चाहती है । बिन्दु उस नारी की प्रतीक है जिस की चेतना पर पाश्चिमी विचार मूल्यों और आधुनिक शिक्षा ने अपना पर्याप्त प्रभाव अंकित किया जिस कारण वह रूढ संस्कारों का विरोध करती है । शिक्षा प्राप्त कर उसके भीतर की आकांक्षाओं ने उसे आर्थिक स्वालंबिता की ओर प्रेरित किया, स्वतंत्र, स्वच्छन्द जीवन का सम्मोहन जगाया, वह भी पुरुषों की भाँति क्लबों की संस्कृति के प्रति आकर्षित है, महानगरीय सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से उसके भीतर भी अस्तित्व की चेतना जागरूक हुई । धीरे धीरे बिन्दु को इन मूल्यस्थितियों की अतिवादिता और निस्सारता का आभास हुआ । ~~दरअसल उसे इस निस्सारता का आभास हुआ~~ । दरअसल उसे इस निस्सारता का तीखा अहसास करानेवाली उसकी अर्द्धशिक्षित भाभी, कहानी की धुरी है जिसके माध्यम से कहानीकार यह स्पष्ट करना चाहता है कि आधुनिकता की चकाचौंध में डूबी नारी को शनै शनै अपने ही विश्वास और आस्थायें झूठी लगने लगेगी । विवाह को बंधन मानकर घर परिवार और मातृत्व को नकारनेवाली युवतियाँ अपनी रूमानी भावुक परिकल्पनाओं के सहारे बहुत समय तक अकेला स्वतंत्र जीवन न बिता सकती । यही कारण है पुरुषों से शतप्रतिशत समानता का दावा करनेवाली बिन्दु को जीवन की मूलभूत स्वाभाविक आकांक्षाओं और अनिवार्यताओं के विरुद्ध संघर्ष अर्थहीन लगा । मातृत्व और नारीत्व की परितुष्टि की अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है । "दो जिन्दगी दो राहें" की शकुन जो एक से अधिक पुरुषों के साथ प्रेम और यौन सुख में कभी अपराध बोध न मानती थी, अंत में प्यार की स्निग्ध छाँह में भटकती है । मुकुल से शादी के बाद ही उसे शाश्वत शांति मिलती है । वेश्य जीवन से संबद्ध कहानी "धर्मशाला की एक रात" में वर्मा जी एक बेचारी नारी के दर्द को अधिक पैना कर पाए हैं । नारी की परवशता और छटपटाहट के कारण यह कहानी कलात्मक बन पाई । लेखक

जानता है कि वेश्या के पास देने के लिए माँस के सिवा और कुछ नहीं । लेखक उनको ओर न दया से देखता है न रूमानी वृत्ति से । वह उनको सही रूप में देखने की ईमानदार कोशिश करता है । हर कहीं लम्पट पुरुष की साजिश की शिकार बनी बेचारी "धर्मशाला की एक रात" की वेश्या अपने चारों ओर के समाज को परखती है, पहचानती है और आक्रोश से भर जाती है । दरअसल वर्माजी ने उस संपूर्ण व्यवस्था के प्रति पाठकों के मन में एक चिढ़ पैदा करने की कोशिश की है जिसने इन बेचारी नारियों की इतनी दुर्गति की है । वर्माजी के मन में नारी जीवन की विडम्बनायें, आशायें, निराशायें आदि के प्रति अवश्य सहानुभूति है । आर्थिक तंगी से पीडित हो मनपसन्द जीवन साथी को न चुन सकनेवाली एक निम्न मध्यवर्गीय नारी की विवशता और उसकी तड़प को "अधूरा वाक्य" कहानी बहुत प्रखरता से व्यंजित करती है । वर्माजी ने राजनीतिक आर्थिक परिदृश्य से आँखें मूँद ली है, यों कहना पूर्ण रूप से ठीक नहीं । क्योंकि "आदमी और ऑक्टोपस" में उन्होंने महानगरीय परिवेश के बाहरी दिखावा और राजनैतिक परिवेश के खोखलेपन की असलियत को उकेरा है ।

संग्रह की अन्य कहानियाँ - काला फूल, एक दर्द भरी आवाज़, कोमल सेंस स्टोर, नीली झील का सपना - प्यार के घेरे में कैद हैं। ये एक लिजलिजी भावुकता की रोमान्टिक कहानी मात्र रह जाती है । गहराई से परखने पर ऐसा लगता है कि नारी के दुःख दर्द के स्वरों से ये कहानियाँ भरी हुई हैं । पर दुःख दर्द तो इस बात की है नारी का जिसके साथ प्रेम हो उसके साथ विवाह न हो सकता और ज़िन्दगी घुटन, दर्द और मानसिक अशांति में व्यतीत होती है । भावुकता की दुनिया में भटकनेवाली नारी ही इन कहानियों में

मौजूद हैं। अपने आप को उपन्यास और फिल्म की नायिकाओं के निकट पानेवाली सुषमा भावुकता से सबसे बुरी तरह ग्रसित है। बीते दिनों की किसी दर्द भरी याद से उपजे अज्ञात भय से आहत "इति" भी इसी भावुकता के अभिशाप को ढोती है। इति के अवचेतन मन में अपना पुराना अभुक्त प्रेम सुप्त पडा है। साथ ही शादी शुदा नारी होने के नाते सामाजिक मर्यादा का भय भी है। उसकी अधूरी प्यास और अनजाना भय सदा उसे अंधकार ग्रस्त किये रहता है।

इन कहानियों में व्यक्त संवेदना पाठक को तनिक भी छूती नहीं। जीवन की छोटी सी छोटी घटना में अर्थ के स्तर स्तर उद्घाटित कर उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देने में वर्माजी पूर्ण रूप से सफल न निकले हैं। इसलिए हो हम यह नहीं बता सकते हैं कि वर्माजी की कहानियों में मानवीय जीवन को निकटता और गहराई से परखा गया है। जो भी हो प्यार की दुनिया के तापमान को पढने में जितनी सफलता वर्माजी को मिली है उतनी सामाजिक, राजनीतिक सवालों से जूझने में नहीं।

कहानी की संरचना में थोडा गहरे उतरने पर यह बात स्पष्ट होने लगती है कि उनकी कहानियों में परंपरित कथानक नहीं। अधिकतर कहानियाँ किसी चरित्र के चिन्तन मनन से शुरू होती है और पिछली घटनायें उस चिन्ता के इर्द गिर्द तैरती रहती है। वर्माजी पुरानी मान्यताओं के अनुसार कथानक केलिए घटनाओं को एकत्रित नहीं करते हैं, उनकेलिए कथानक घटनाओं के बीच का सूक्ष्म संबंध है। ये कहानियाँ घटनात्मक कम दीख पडती है। सारी कहानियाँ

शिल्प पर काफी टिकी हुई है । कथानक में कथावस्तु तो निहित है, पर पुरानी जैसी नहीं । कहानी का आरंभ किसी मनस्थिति या वातावरण के चित्रण से होता । यह स्थिति विकसित होने लगती है । फिर पाठकों को पात्रों के नाम, उसकी स्थिति अथवा संबंधों का एहसास होता है । कहानियों के केन्द्र में पात्रों की विशिष्ट मानसिकता है । पात्र उस विशिष्ट मनस्थिति को जीने लगता है, यह विशिष्ट मनस्थिति एक विशिष्ट ऊँचाई तक पहुँच जाती और वहीं कथा समाप्त होती हैं । व्यक्ति की मानसिकता और उसके आन्तरिक द्वन्द्व का वर्णन करने में वे सफल निकले । जीवन की छोटी छोटी बातों को विकसित करके भी कथानक बनाते हैं । "धर्मशाला की एक रात" में रात में हुई बातचीत से कथानक का विकास होता है । "एक दर्द भरी आवाज़" में कथा का केन्द्र-बिन्दु फोन की घंटी बजने का है । कुछ कथानक तो चरम सीमा पर ही स्पष्ट होते हैं जैसे परिवर्तन, दो ज़िन्दगी दो राहें आदि । कहीं कथानक की जगह केन्द्रीय भाव को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । "कोमन सेन्स स्टोर" में विज्ञापनबाजी का केन्द्रीय भाव है । कभी कभी उनकी कहानी फैन्टसी और यथार्थ की टकराहट में दुरूह बन जाती है । दोनों को साथ प्रयुक्त करने की कोशिश में "एक दर्द भरी आवाज़" की शुरूआत में जो भंगिमा है वह अंत तक आते नष्ट हो जाती है ।

शिल्प
=====

वर्माजी की कहानियों के अधिकांश पात्र विशेष भावुकता से ग्रस्त हैं । कल्पना की दुनिया में विचरण करनेवाले युवा पात्रों को ही वर्माजी ने स्वीकार

किया है । बिन्दु बड़े आधुनिक होने पर भी अंतर्मन में परंपरा के प्रति मोह रखनेवाली है । यही मोह उसे पारिवारिक संबंधों की पवित्रता पर सोचने केलिए मजबूर करती हैं । शकुन की मानसिक चंचलता उसे आत्महत्य की सीमा तक ले जाती है, लेकिन वह तो बच जाती है । इति की विह्वलता उसकी ज़िन्दगी का सारा सुख छीन लेती है । शशि जीवन की सारी सुविधायें मिलने पर भी वास्तविक चैन की खोज करनेवाली लगती है । उनके अधिकांश पात्रों में हमेशा एक तरह का अधूरापन महसूस होता है । लेकिन इसके अपवाद इने गिने पात्र हैं - वे हैं "परिवर्तन की भाभी" जो भारतीय नारी के वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिंब है । कमला भी जीवन की परिस्थितियों से समझौता करके ज़िन्दगी बिताती है ।

बदलते परिवेश में बदलते भाव के साथ उस भाव को व्यक्त करने का माध्यम भी बदलता रहता है । जीवन की सभी प्रवृत्तियों को कहानी भाषा-बद्ध करती है । जटिल स्थितियों को व्यक्त करने केलिए शक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति की आवश्यकता है । जीवन यथार्थ को संपूर्णता देने केलिए बिंबवादी पद्धति अपनायी गयी, नये प्रतीकों की योजना बनायी गयी । "यथार्थ और संपूर्ण चित्रण को सजीवता प्रदान करने केलिए नये बिंबों का सहारा लिया जाने लगा ।"[1]

वर्माजी ने सरल भाषा की अभिव्यक्ति की है । उनकी कहानियों में प्रतीकों का बाहुल्य है । उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्य का प्रयोग भी किया है ।

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री - पृ. 57

काला फूल, कॉमन सेन्स स्टोर, आदमी और ओक्टोपस आदि कहानियों का प्रतीकात्मक शीर्षक है। काला फूल, पुष्पा के विवाह पूर्व प्रेम की स्मृति का काला चित्र प्रस्तुत करता है। कॉमनसेन्स स्टोर विज्ञापनबाजी के पीछे भागनेवाली दुनिया का प्रतीक है। उस कहानी में गधा छाप साबुन, उल्लू छाप नील आदि प्रतीकों को अपनाकर उन्होंने मनुष्य को गधा और उल्लू बनानेवाले विज्ञापन पर व्यंग्य किया है। "आदमी और ओक्टोपस" में तीखा व्यंग्य है। इस में उन्होंने मनुष्य की तुलना कातर, साँप और ओक्टोपस से की है। इन प्रतीकों से उन्होंने मनुष्य के विभिन्न स्वभाव की ओर संकेत किया है।

वर्माजी ने उनकी कहानियों के लिए आत्मचरित शैली को अपनायी है जैसे परिवर्तन, दो ज़िन्दगी दो राहें, कॉमन सेन्स स्टोर। धर्मशाले की एक रात में संलाप शैली का प्रयोग है। परिवर्तन और दो ज़िन्दगी दो राहें में फ्लैश बैक शैली को भी अपनायी है, याददाश्त के रूप में पूरी कहानी कही गयी है।

वस्तुत: उनकी अधिकांश कहानियाँ भावुकता से भीनी गयी हैं और सामाजिक यथार्थ को उभारने में सक्षम नहीं निकलती हैं। सामाजिक यथार्थ को छूनेवाली कहानियाँ पाठकों को बाँधने में सक्षम हैं।

छठा अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग से प्रभावित होता है और युगीन परिवेश साहित्यकार के रचनात्मक व्यक्तित्व को स्थापित करता है। अपने चारों ओर की विभिन्न परिस्थितियों से कृतिकार किसी न किसी अंश को आत्मसात करता है और अपनी रुचि के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभूति के आलोक में विभिन्न ढंग से अभिव्यक्त करता है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश के भीषण यथार्थ ही लक्ष्मीकांत वर्मा की सर्जनात्मक पृष्ठभूमि बने। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता और विसंगतियों की बाढ से घिरा हुआ है। पश्चिमी औद्योगिक क्रांति, द्वितीय महायुद्ध तथा अपरिमित वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों की प्रखरता ने समस्त मनुष्य जाति की बौद्धिक, मानसिक एवं चेतना को कुंठित कर दिया। इस वैज्ञानिक युग में मानव लौकिक सुख सुविधाओं को जुडाने की होड में लगे हुए हैं, वह भी अपनी ज़मीन और अपनी जीवन पद्धति

को छोडते हुए । इसका बुरा परिणाम यह निकलता है कि ज्यों ज्यों मानव की लौकिक उन्नति होती जाती है उसकी आध्यात्मिक अवनति भी होती जा रही है । इस प्रकार जीवन में सारी भौतिक सुख सुविधाओं को प्रदान करनेवाले वैज्ञानिक, औद्योगिक, तकनीकी विकास ने परंपरागत मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाया है । मनुष्य और मनुष्य के बीच की पहचान तथा आत्मीयता नष्ट हो रही है । सारे ज्ञान और विज्ञान के बीच भी मनुष्य बर्बरता और हवस से पागल होता है । अराजकता, अव्यवस्था, निरंकुशता और अवसरवाद के वातावरण में पलनेवाली युवा पीढी एक भयंकर असंतुलन, मानसिक उद्वेलन तथा दिशा हीनता से ग्रस्त हैं । भ्रष्ट राजनीति ने देश के पूरे माहौल को विषाक्त बना दिया है । डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय[1] का कथन बिलकुल सार्थ लगता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल की युवा पीढी स्वतंत्रता संग्राम कालीन आदर्शों से परिचित नहीं - एक भ्रष्ट और भटके हुए समाज में ही वे पैदा हुई हैं - एक ऐसे समाज में जहाँ मूल्यों का अभाव है - जहाँ वैचारिक और सैद्धान्तिक स्तर पर अराजकता है ।

परिवेश की इस भयावहता ने पारिवारिक संबंधों को भी तोडकर विघटित कर दिया है । आधुनिकता और समानता की आड में आधुनिक नारियों में बढता स्वैराचार और यौन विकृतियों के परिणाम स्वरूप टूटता भारतीय गृहस्थ जीवन आज की एक बडी समस्या है । यों स्वातंत्र्योत्तर भारत में जीवन का हर क्षेत्र अराजकता और विसंगति से ग्रस्त है । ऐसे एक

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ. 36

परिवेश में जीनेवाले साहित्यकार नये क्षितिजों को खोजना चाहते हैं । उनकी रचना प्रक्रिया और संवेदना भी तेज़ रफ्तार में परिवर्तित होती रहती है । लक्ष्मीकांत वर्मा भी अपने चारों ओर के परिवेश की भयावहता के गवाह बने । वे अपने को तथा अपनी कृतियों को इस भयानक परिवेश से असंपृक्त तथा विमुक्त नहीं कर सके ।

कवि के रूप में लक्ष्मीकांत वर्मा ने समाज के अन्तर्विरोधों को खूब पहचानने का प्रयास किया है । उनकी कविताओं की पृष्ठभूमि अपने चारों ओर के परिवेश की दलित, पीडित, नंगी भूखी, बदनसीब लोगों की पीडा और दर्द हैं । इन बेचारे लोगों की ज़िन्दगी के खुर्दरे यथार्थ को पूरे तीखेपन के साथ उन्होंने अपनी कविताओं में शब्दबद्ध किया है और यों आज की सभ्यता के भोंडेपन पर चोट की है । कविताओं में करुणा की धारा व्यंग्य के सहारे ही उभर आती है । इस सप्तकेतर शिल्प की कविताओं में एक प्रकार की अव्यवस्था, बिखराव और विसंगति के दर्शन होते हैं । शिल्प के क्षेत्र में भी परंपरा का खंडन करते हुए कुछ नये प्रतिमानों को अपनाया है । एक आलोचक के रूप में भी उन्होंने काव्य के क्षेत्र में प्रचलित पुरानी प्रणालियों पर प्रहार किया । वर्गीकरण की पद्धति पर ज़ोर देनेवाली प्राचीन काव्य शास्त्रीय मान्यताओं से उन्हें सख्त नफरत था । आलोचक और कवि के रूप में हिन्दी साहित्य को उनकी देन महत्त्वपूर्ण हैं । कविता के धरातल से ही वे नाटक और कथा साहित्य के क्षेत्र में उतर आये ।

हिन्दी की विसंगत नाट्यधारा की एक प्रमुख हस्ती के रूप में लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपनी अलग पहचान बना ली है । नाट्य रचनाओं के कथ्य और शिल्प संबंधी पुरानी मान्यताओं को तोडते हुए उन्होंने एक नया ढाँचा खडा कर दिया कथ्यहीनता या कथ्य की बिखरी हुई कडियाँ उनकी नाट्यरचनाओं की एक अलग विशेषता है । उन्होंने अपने नाटकों में धार्मिक अनास्था और विसंगतियों की पोल खोल दी है । उनकी नाट्यरचनाओं में जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित आम जनता की व्यथा गूँज उठती है । अपने आप को सभ्य माननेवाले मानव की बर्बरता का चित्रण नाट्यरचनाओं में हुआ है, लेखकीय व्यक्तित्व के विघटन को तीव्रता से दृश्यांतरित किया है । दरअसल मुखौटे ओढे हुए आदमियों की अन्दरूणी हकीकत की कैफियत देने में उनकी नाट्यरचनायें काफी सफल हैं । अपने नाटकों और एकाँकियों में वे आम आदमी के समर्थक बनकर आते हैं । राजनीति की साजिशों की शिकार बनी आम जनता की ज़िन्दगी का सफल अंकन अपनी नाट्यरचनाओं में उन्होंने किया है । जीवन की विसंगतियों की अभिव्यक्ति करने केलिए उन्होंने अतीत - इतिहास - पुराण का सहारा लिया है, साथ ही समकालीन घटनाओं और पात्रों का भी । शिल्प की दृष्टि से भी उनके नाटकों तथा एकाँकियों में एक नयापन है । चरित्र सृष्टि के धरातल पर उन्होंने नई अवधारणायें अपनायीं । नायक संबंधी पूर्ववर्ती परिकल्पनायें उनकी नाट्यरचनाओं में आकर पूर्ण रूप से धराशयी हो जाती है । उनके नाटकों के पात्र ऊँचे वर्ग के न होते हैं । थके - हारे, विक्षिप्त और समाज द्वारा उपेक्षित पात्रों से हमारी भेंट होती है । जीवन की विसंगतियों की अभिव्यक्ति केलिए उन्होंने सशक्त प्रतीकों का प्रयोग किया है

प्रतीक और बिंब जो नाट्यशिल्प के अभिन्न अंग हैं इनको नाट्यरचनाओं को अपेक्षाकृत अधिक गहनता देते हैं । ऊल जलूल और बेतुके संवाद, हरकतों का प्रयोग, मूकाभिनय, शब्दों की पुनरावृत्ति, मुखौटों का प्रयोग, ध्वनियोजना और प्रकाशयोजना आदि नये प्रयोग उनके नाटकों तथा एकाँकियों को अर्थ की नई छवियाँ प्रदान करते हैं, मंचीयता की दृष्टि से भी उसे सफल बनाते हैं । ज़ाहिर हैं कि उन्होंने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी नयी ज़मीन तलाशने की कोशिश की है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने उपन्यासों में मुख्य रूप से बदलते हुए पारिवारिक स्वरूप और परिवर्तित मूल्यों को ही शब्दबद्ध किया है । उनके उपन्यासों में प्यार और आत्मीयता से वंचित पात्रों से हमारी भेंट होती है । वे अपने उपन्यासों में इस सत्य चेतना के बेहत्तर तस्वीर अंकित करते हैं कि प्यार और आत्मीयता का अभाव आदमी को निराश कर देते हैं,आपसी रिश्तों में ठंडापन और ऊसरपन घुसते ही व्यक्ति अजनबीपन और अकेलेपन से आक्रांत होता है । और अपनी लक्ष्यहीन ज़िन्दगी से पलायन करना चाहता है । मध्यवर्गीय जीवन में आनेवाली शुष्क और विनाशकारी रिक्तता को उभारनेवाले उनके उपन्यास मनुष्य के खोखलेपन, संबंधों के सतहीपन, जीवन आदर्शों व आस्थाओं के लडखडाते मानदण्डों को उद्घाटित करते हैं । समाज और मनुष्य के मुखौटों को परखकर यथार्थ को उभारनेवाली उनकी जो पैनी दृष्टि उपन्यासों में दीख पडती है वह सराहनीय है । शिल्प की दृष्टि से भी प्रयोगशीलता के नये आयाम दिखायी पडते हैं । परंपरागत उपन्यास के रूपबंध को तोडकर एक नये

मुहावरे की तलाश की है । इस तलाश में वे पूर्ण रूप से सफल नहीं निकले हैं ।

लक्ष्मीकांत वर्मा की कहानियाँ समान मूल्य की नहीं । उनके स्तर में अन्तर है । अधिकांश कहानियाँ नारी मानसिकता के ईद गिर्द ही घूमती हैं । ऐसी कहानियों में भावुकता के अतिरेक हैं । अत: पाठकों को बाँधने में सफल नहीं निकलती । लेकिन यह कहना न्याय संगत न होगा कि कहानियों को कलात्मक प्रभावशाली रूप देने की क्षमता उनमें नहीं । कहानीकार के रूप में उन्होंने समाज के राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में फैली हुई ह्रासोन्मुखता को भी उभारने का सफल प्रयास किया है । परिवर्तन, धर्मशाले की एक रात, अधूरा वाक्य, आदमी और ओक्टोपस आदि इसके स्पष्ट प्रमाण हैं । शिल्प की दृष्टि से परखें तो उनकी कहानियाँ परंपरागत अनुशासन को उतनी तरजीह नहीं देती ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के संपूर्ण सृजनात्मक लेखन पर विशेषकर उनके गद्य साहित्य पर सरसरी दृष्टि डालने के बाद ऐसा ही लगा है कि साहित्य की सभी विधाओं में लेखनी चलाने के बावजूद भी वे उन सभी विधाओं में समान रूप से सफलता हासिल नहीं कर सके । नाटक, एकांकी और उपन्यासों की अपेक्षा उनकी कहानियाँ कमज़ोर दीख पडती हैं । उपन्यासों में उनकी दृष्टि एक सीमित दायरे याने स्त्री पुरुष संबंध तक टिकी रहती है । उपन्यास की अपेक्षा नाट्यरचनाओं में ही लक्ष्मीकांत वर्मा की सर्जनात्मकता का निखार हुआ है आम आदमी की तकलीफ से जुडे हुए नाटकों में ही वे समाज के अन्तर्विरोधों को,

सामाजिक संबंधों की विच्छिन्नता को, व्यक्ति मन की अकुलाहट को सही ढंग से पहचानते हैं। इस प्रकार सर्जनात्मक उर्वरता की दृष्टि से उनके उपन्यास, कहानियाँ और नाट्यरचनायें यद्यपि विभिन्न स्तर के हैं तो भी इनको आपस में बाँधनेवाली एकसूत्रता भी दिखायी पडती है, वह है मूल्यों की पुनः स्थापना करने की लक्ष्मीकांत वर्मा की कोशिश।

=-=-=-=-=

संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ - सूची

क. लक्ष्मीकांत वर्मा की रचनायें

अ. आलोचना

1. नई कविता के प्रतिमान — प्र. सं. 1957, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
2. नये प्रतिमान पुराने निकष — प्र. सं. 1966, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।

आ. उपन्यास

3. एक कटी हुई ज़िन्दगी, एक कटा हुआ कागज़ — प्र. सं. 1965, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहर नगर, दिल्ली ।
4. कोयला और आकृतियाँ — प्र. सं. 1970, साहित्य भवन लिमिटेड, कामता प्रसाद रोड, इलाहाबाद ।
5. खाली कुर्सी की आत्मा — प्र. सं. 1958, किताब महल, इलाहाबाद ।

6. टेराकोटा — प्र. सं. 1971
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली ।

7. तीसरा प्रसंग — प्र. सं. 1972
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली ।

8. सफेद चेहरे — प्र. सं. 1971
साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद ।

इ. एकांकी संग्रह

9. अपना अपना जूता — प्र. सं. 1984
मुक्ति प्रकाशन,
इलाहाबाद - 31.

10. आदमी का ज़हर — प्र. सं. 1964
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
वाराणसी ।

ई. कविता संग्रह

11. अतुकांत — प्र. सं. 1968
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
वाराणसी ।

12. आधुनिक कवि (15) — प्र. सं. 1975
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग ।

13. कंचन मृग — प्र. सं. 1981,
लोकभारती प्रकाशन,
महात्मा गाँधी मार्ग,
इलाहाबाद ।

14. चित्रकूट चरित — प्र. सं. 1987,
अंकुर प्रकाशन,
शाहदरा, राम नगर,
दिल्ली ।

15. तीसरा पक्ष — प्र. सं. 1975,
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
दिल्ली ।

उ. कहानी संग्रह

16. नीली झील का सपना — प्र. सं. 1977,
राजीव प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

17. मेरी कहानियाँ — प्र. सं. 1982,
अनिल प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

ऊ. नाटक

18. ठहरी हुई ज़िन्दगी — प्र. सं. 1980
अनिल प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

19. तिन्दुवुलम — प्र. सं. 1958, किताब महल, इलाहाबाद ।

20. रोशनी एक नदी है — प्र. सं. 1974 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।

ख. आलोचनात्मक ग्रन्थ

21. अंग्रेज़ी - हिन्दी नई की प्रवृत्तियाँ — डॉ. राजेन्द्र मिश्र, प्र. सं. 1990, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली - 2

22. असंगत नाटक और रंगमंच — सं. डॉ. नरनारायण राय, प्र. सं. 1981, वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली ।

23. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य — डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र, प्र. सं. 1980, विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली ।

24. आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव — डॉ. दशरथ ओझा, प्र. सं. 1984 राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

25. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास — डॉ. रजनीकांत जैन, प्र. सं. 1988, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरिया गंज, नई दिल्ली ।

26. आधुनिकता के पहलू	डॉ. विपिनकुमार अग्रवाल, प्र. सं. 1972, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
27. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश	डॉ. गोविन्द चातक, प्र. सं. 1978, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली ।
28. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में	गंगाप्रसाद विमल, प्र. सं. 1978 दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि दिल्ली ।
29. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन	डॉ. विद्याशंकर राय, प्र. सं. 1985, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद
30. आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक	डॉ. नरनारायण राय, प्र. सं. 1979 भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली ।
31. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	लक्ष्मीनारायण लाल, प्र. सं. 1973, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद
32. आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता	डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, प्र. सं. 1991 राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी मार्ग, दिल्ली ।
33. आधुनिक हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियाँ	डॉ. विद्या चौहान, प्र. सं. 1987, संचयन, गोविन्द नगर, कानपुर ।
34. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान	डॉ. दंगल झालटे, प्र. सं. 1987, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ।
35. एब्सर्ड नाट्यपरंपरा	डॉ. रामसेवक सिंह, प्र. सं. 1970, अक्षर प्रकाशन, असारी रोड, दिल्ली

36. कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह, प्र. सं. 1968, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
37. कहानी नयी कहानी	नामवर सिंह, प्र. सं. 1973, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
38. कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल, प्र. सं. 1979, पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।
39. काव्य परंपरा और नयी कविता की भूमिका	डॉ. कमल कुमार, प्र. सं. 1987 प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली ।
40. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्र. सं. 1982, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
41. नया हिन्दी काव्य	डॉ शिवकुमार मिश्र, प्र.सं. 1962, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर ।
42. नयी कवितायें एक साक्ष्य	रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्र. सं. 1976, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
43. नई कविता मूल्य मीमांसा	डॉ. बैजनाथ सिंह, प्र. सं. 1981, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा ।
44. नई कविता में मूल्यबोध	शशि सहगल, प्र. सं. 1976, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली ।
45. नई कविता में युगबोध	डॉ. मंजु दुबे, प्र. सं. 1987, अनुपम प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना ।

46. नई कहानी की भूमिका — कमलेश्वर, प्र. सं. 1978, शब्दकार, तुर्कमान गेट, दिल्ली ।

47. नई कहानी स्वरूप और संवेदना — राजेन्द्र यादव, सं. 1968, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

48. नये पुराने परिवेश — डॉ. रामफेर त्रिपाठी, प्र. सं. 1975 आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

49. नाटक और नाट्यशैलियाँ — डॉ. दुर्गा दीक्षित, प्र. सं. 1975, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद ।

50. परिवेश — मोहन राकेश, प्र. सं. 1967, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।

51. पौराणिक संदर्भ कोश — डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै, प्र. सं. 1984, किरण प्रकाशन, हैदराबाद ।

52. मानवमूल्य और साहित्य — धर्मवीर भारती, प्र. सं. 1960, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वारणासी

53. रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक — डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, प्र. सं. 1979, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली ।

54. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि — डॉ. धनंजय, प्र. सं. 1970, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद ।

55. समकालीन हिन्दी कहानी में पीढ़ियों का अन्तराल — डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, प्र. सं. 1982, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

56. समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य विश्लेषण — डॉ. प्रेम कुमार, प्र. सं. 1983, इन्दु प्रकाशन, अचल मार्ग, अलिगढ ।

57. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच — डॉ. जयदेव तनेजा, प्र. सं. 1978, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

58. समकालीन हिन्दी नाटक कथ्य चेतना — चन्द्रशेखर, प्र. सं. 1982, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

59. समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध — डॉ. ज्ञानवती अरोडा, प्र. सं. 1989 सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली ।

60. साठोत्तरी हिन्दी नाटक — सं. डॉ. विजयकांत धर दुबे, प्र. सं. 1983, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली ।

61. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास — डॉ. पारूकांत देसाई, प्र. सं. 1984, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली ।

62. सातवें दशक के प्रतीकात्मक नाटक — डॉ. रमेश गौतम, प्र. सं. 1977, राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली ।

63. साहित्य और आधुनिक युग बोध — देवेन्द्र इस्सर, प्र. सं. 1973, जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर ।

64. साहित्य और सांस्कृतिक दृष्टि — मोहन राकेश, प्र. सं. 1975, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

65. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण — डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी, प्र. सं. 1974, संघी प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर ।

66. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी — कृष्णा अग्निहोत्री, प्र. सं. 1983, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली ।

67. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक – मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में — डॉ. रीता कुमार, प्र. सं. 1980 विभु प्रकाशन, ज्ञानी बॉर्डर, साहिबाबाद ।

68. हिन्दी उपन्यास उत्तर शती की उपलब्धियाँ : डॉ. विवेकी राय, प्र. सं. 1983, राजीव प्रकाशन, अलोपीबाग कॉलनी इलाहाबाद ।

69. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य — डॉ. मोहिनी शर्मा, प्र. सं. 1986, साहित्यागार, जयपुर ।

70. हिन्दी उपन्यास तीन दशक — डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, प्र. सं. 1983, कौशल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

71. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण — डॉ. राजमल ब्योरा, प्र. सं. 1972 नमिता प्रकाशन, आनंद नगर, महाराष्ट्र ।

72. हिन्दी उपन्यास में चेतना प्रवाह पद्धति — डॉ. मोहन लाल कपूर, प्र. सं. 198 साकेत समीर प्रकाशन, दिल्ली ।

73. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी — डॉ. राजरानी शर्मा, प्र. सं. 198 साहित्य मंडल, नई दिल्ली ।

74. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक — डॉ. जयश्री बरहाटे, प्र. सं. 1988, संचयन, गोविन्द नगर, कानपुर ।

75. हिन्दी के समस्या नाटक — डॉ. उमाशंकर सिंह, प्र. सं. 1978, ऊर्जा प्रकाशन, इलाहाबाद ।

76. हिन्दी नाटक और रंगमंच - पहचान और परख — सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, प्र. सं. 1975, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

77. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा — डॉ. चन्द्रशेखर, प्र. सं. 1979, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली।

78. हिन्दी नाट्य - प्रयोग के संदर्भ में — डॉ. सुषमा बेदी, प्र. सं. 1984, पराग प्रकाशन, दिल्ली।

79. हिन्दी साहित्याब्दकोश — 1968

80. हिन्दी साहित्याब्दकोश — 1970

81. हिन्दी साहित्याब्दकोश — 1971

82. हिन्दी साहित्याब्दकोश — 1974

83. हिन्दी साहित्याब्दकोश — 1975

84. Concise Oxford Dictionary - Reprinted Vth Edition - 1972-

ग. पत्रिकायें

85. कल्पना — नवंबर, 1966

86. ज्ञानोदय — जून, 1964

87. नटरंग — खंड 7, 1975

88. नटरंग — खंड 10, 1982

89. नया प्रतीक — जून, 1973

90. प्रकर — मार्च, 1972

91.	प्रकर	विशेषांक, 1973
92.	माध्यम	जुलाई, 1964
93.	माध्यम	दिसंबर, 1967
94.	तारिका	अप्रैल, 1987